आचार्य विनोबा भावे का राजनीतिक चिन्तन-एक समीक्षात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की पी०एच०डी०
(राजनीति विज्ञान) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2000

निर्देशिका :

डा० जयश्री पुरवार

विभागाध्यक्षा, राजनीति विज्ञान
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, उरई (जालौन) उ०प्र०

प्रस्तुति :

सुनीता सिंह

एम०ए० (राजनीति विज्ञान)

शत् शत् प्रणाम ....

हे ऋषि सन्त, तपस्वी जिनके,
कर्माखिल ब्रह्मार्पण है ।
कितनी सम्भावना प्रगति की,
इसके निर्मल दर्पण है ।

अहो महादृष्टा हे ऋषिवर,
हे सुशान्त, हे सन्त महान्।
हे भूदान यज्ञ के होता,
मानवता की एक उड़ान ।

अडिग विनोबा ऋषिवर,
दिखा रहा है अभिनव पथ
मानो पुनः देह धर आया,
सत्यलोक गत गाँधी सन्त ।

..... बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

सर्वोदय जगत 15 सितम्बर 1994

CERTIFICATE

It is certified that the thesis entitled "आचार्य विनोबा भावे का राजनीतिक चिंतन एक समीक्षात्मक अध्ययन" is being submitted by **Miss Sunita Singh** for the award of Ph.D. in Political Science of Bundelkhand University Jhansi (U.P.). This is a record of candidates work carried under my supervision and guidance . She has worked under me for the period, required under ordinance, (more than 200 days) .

It is also to certify that this is her original work and has never been submitted for the award of any degree in any University.

14.10.2000

(Dr. Jayshree Purwar)

Head of the department of Political science
D.V. Post Graduate College
ORAI (U.P.)

प्राक्कथन

आचार्य विनोबा भावे भारत के अद्वितीय राजनीतिक चिन्तक व दुर्दमनीय समाज सुधारक थे। मानवता के इस महान उपासक ने अपने बौद्धिक अनुचिन्तन एवं निष्काम कर्मयोग के अनूठे सामंजस्य से राष्ट्र की जीवनपर्यन्त सेवा की। जहाँ एक ओर निरन्तर पदयात्राओं के माध्यम से जनता में उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओ के प्रति चेतना जाग्रत की, वहीं दूसरी ओर इनके समाधान एवं समाज में स्थायी एवं वास्तविक परिर्वतन हेतु अहिंसा, प्रेम एवं करूणा पर आधारित अभिनव क्रान्ति का सूत्रपात किया।

गाँधी जी के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में उनकी मृत्यु के पश्चात उन्होनें सर्वोदय की मूलदृष्टि पर आधारित भूदान, ग्रामदान, संपत्तिदान, श्रमदान, जीवनदान, हरिजनोद्धार, कुष्ठ सेवा, सर्वोदयपात्र आदि रचनात्मक कार्यक्रमों एवं आन्दोलनों से अहिंसक एवं शोषणमुक्त समाज के निर्माण हेतु भागीरथ प्रयास किये। सर्वोदय को बसुधैव कुटुम्बकम् के सूत्र में बाँधकर 'जयजगत' का उद्घोष किया, वह एक ऐसे विश्वसमाज के निर्माण के प्रति सचेष्ट थे जहाँ अज्ञान, अभाव एवं शोषण के लिये कोई स्थान नहीं हो, और राष्ट्रों के मध्य प्रेम, विश्वास, सद्भाव, सहयोग भाईचारे की उच्च भावना निर्मित हो।

विनोबा जी का तत्वज्ञान, दर्शनशास्त्र, धर्म, आध्यात्मिकता, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों के बारे में गम्भीर चिंतन विद्वतापूर्ण है। इसी के माध्यम से इन्होनें जिन अवधारणाओं का विकास किया है, वह रचनात्मक एवं परिणाममय है अतः प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक पद्वति द्वारा विनोबा जी के समग्र राजनीतिक चिंतन एवं सर्वोदय विचारधारा एवं कार्यक्रम की प्रासंगिकता एवं सार्थकता का सामयिक सन्दर्भ में अध्ययन करने का प्रयास किया है साथ ही गाँधीय-चिंतन में विनोबा जी के उत्कृष्ठ योगदान का निष्पक्षता से मूल्यांकन का भी प्रयास किया गया है और अन्त में आधुनिक भारतीय राजनीतिक परम्परा में विनोबा जी के समग्र योगदान का मूल्यांकन किया गया है।

अतः प्रस्तुत शोध महान सामाजिक दार्शनिक, अर्थशास्त्री, एवं सर्वोदय आन्दोलन के प्रणेता एवं राजनीतिक चिंतक आचार्य विनोबा भावे के समग्र दर्शन को समाविष्ट करने की दिशा में एक छोटा सा प्रयास है। जिसका सर्वोपरि लक्ष्य श्रेयस्कर मानवीय सभ्यता के निर्माण परिपेक्ष्य में उनके दर्शन के महत्व एवं औचित्य का विश्लेषण करना है।

आभार प्रदर्शन

मैं **डा0 जयश्री पुरवार** अध्यक्षा राजनीति विज्ञान विभाग दयानन्द वैदिक महाविद्यालय उरई की हृदय से आभारी हूँ जिनके कुशल निर्देशन मे मैंने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध तैयार किया। शोध प्रबन्ध के निर्माण में उनके मूल्यवान निर्देश, उपयोगी सुझाव, तार्किक पद्धति एवं प्रेरणादायी प्रोत्साहन के कारण अभियोजित अध्ययन पूर्ण हो सका है।

मैं डा0 राजेन्द्र पुरवार जो कि स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं से ही मेरे लिये असीम प्रेरणा स्रोत रहे है, का सहृदय आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होनें इस शोध प्रबन्ध के सम्पादन में अपना महत्वपूर्ण समय निकालकर मेरा मार्गदर्शन किया है। मैं डा0 यतीन्द्रनाथ शर्मा सेनानिवृत अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग तिलक महाविद्यालय औरैया की विशेष आभारी हूँ, जिनके रचनात्मक सुझावों, सहयोग एवं मार्गदर्शन से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुयी। साथ ही डा0 आदित्य कुमार एवं डा0 रिपुसूदन सिंह का हृदय से आभार प्रकट करती हूँ जिनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से इस अध्ययन को पूर्ण करने का प्रयास कर सकी हूँ।

मैं अपनी पूज्यनीय माता जी एवं पिताजी की कोटि – कोटि वन्दना करती हूँ जिनके स्नेह, आर्शीवाद एवं सतत् प्रेरणा से यह प्रयासपूर्ण हो सका है। मैं अपने आदरणीय फूफाजी लाल जी सिंह एवं आर0 बी0 सिंह मामा परशुराम सिंह जी एवं जीजा जी डा0 के0 बी0 सिंह एवं श्री राजेश सिंह की विशेष आभारी हूँ जिन्होनें रचनात्मक सहयोग एवं प्रोत्साहन प्रदान किया है। मैं अपने भाई रवींद्र सिंह, सत्येन्द्र सिंह, शैलेन्द्र सिंह, बहन अनीता सिंह एवं रीता सिंह सहित पूरे पारिवारिक सदस्यों की ऋणी हूँ जिनके सक्रिय सहयोग एवं प्रोत्साहन के अभाव में प्रस्तुत अध्ययन की सफल परिणति मेरे लिये असम्भव थी। साथ ही में अपनी सहयोगी मित्र निशिमा शुक्ला का हृदय से धन्यवाद करती हूँ जिनका सतत् सहयोग मेरे लिये प्रेरणास्रोत रहा।

इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में दयानन्द वैदिक कालेज पुस्तकालय उरई के पुस्तकालय अध्यक्ष श्री हृदयकान्त श्रीवास्तव जी की विशेष ऋणी हूँ जिन्होनें शोध सम्बन्धी आवश्यक सामग्री प्रदान करने में आत्मीय भाव से महत्वपूर्ण सहयोग दिया। साथ ही गांधी विद्या संस्थान राजघाट वाराणसी के पुस्तकालय अध्यक्ष एवं समस्त कर्मचारियों का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होनें महत्वपर्णू सहयोग प्रदान किया। अन्त में अनस कम्पयूटर्स उरई की आभारी हूँ जिन्होनें अथक परिश्रम एवं निष्ठा से शोध प्रबन्ध कम्प्यूटरीकृत किया है।

सुनीता सिंह
सुनीता सिंह

दिनांक ...14.10.2000

अनुक्रमणिका

पृष्ठ - संख्या

भूमिका

भूमिका

आचार्य विनोबा भावे महानसन्त, दार्शनिक, धर्मशास्त्रकार, समाज वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, एवं राजनीतिक चिंतक थे। मानव जीवन के अभ्युदय और निःश्रेयस के बारे में ऐसा कोई विचार क्षेत्र नहीं है। जिसकों उन्होनें स्पर्श नहीं किया हो। व्यक्ति के नैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं पर उन्होनें समान रूप से विचार किया। उनका जीवन दो धाराओं में गतिशील हुआ है। प्रथम धारा साधना की हैं जिसमें उनका शाश्वत आध्यात्मिक चिंतन निसृत हुआ है जिसे हम उनका शान्ति दर्शन कह सकते है एवं दूसरी धारा समाज सुधार की हैं जिसमें उनके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विचार और रचनात्मक कार्यक्रम भूदान, ग्रामदान, कांचनमुक्ति, ऋषिखेती, गोबध निषेध, हरिजनोद्धार, स्त्रीशक्ति जागरण, अछूतोद्धार आदि शामिल है। इसे उनका क्रान्ति दर्शन कह सकते है। इस प्रकार दोनों मिलकर अहिंसक क्रान्ति का विकास करते है जो हृदय परिर्वतन एवं विचार परिवर्तन की प्रक्रिया पर आधारित है।

अतएव प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य उनके दर्शन के इन विविध आयामों का समीक्षात्मक अध्ययन करना है। क्योंकि विनोबा जी के सर्वोदयवाद पर तो अनेक अध्ययन हुये है परन्तु उनके समग्र दर्शन के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पहलुओं पर शोधपरक अध्ययन एवं वर्तमान सन्दर्भ में उसकी प्रासंगिकता के परीक्षण का अभाव सा रहा है। अतः प्रस्तुत शोध के द्वारा विनोबा जी के समग्र दर्शन का अध्ययन एवं मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। और इस प्रक्रिया में शोध के उद्देश्य के आध ार पर विविधक्षेत्रों के अन्तर्गत उनके दर्शन का विवेचन एवं परीक्षण किया गया है।

क्षेत्र

1. अ – विनोबा जी के जीवनवृत एवं कार्य के अन्तर्गत उनकी परिवारिक पृष्ठभूमि का एवं समाजीकरण के प्रथम अभिकर्ता के रूप में परिवारजन्य प्रभावों का अध्ययन।

ब – गांधी जी के मानस पुत्र के रूप में उन पर गांधी जी के प्रभाव, उनके नेतृत्व में राष्ट्र निर्माण कार्य में उनकी महती भूमिका का परीक्षण।

स– सत्याग्रही के रूप में सत्याग्रह के विविध आयामों – आन्दोलनात्मक, रचनात्मक एवं मूल्य परिवर्तानात्मक के सन्दर्भ में उनकी भूमिका का विश्लेषण साथ ही उनके द्वारा निर्धारित सत्याग्रह

के नूतन स्वरूप का परीक्षण।

द – उनके रचनात्मक कार्यक्रमों के उद्देश्य एवं स्वरूप का अध्ययन।

2. आध्यात्मिक दर्शन के अन्तर्गत धर्म, अध्यात्म, अध्यात्म एवं विज्ञान के समन्वय, ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, मोक्ष, तथा कर्मयोग, सामूहिक समाधि, साम्ययोग भक्तियोग ज्ञान योग की व्याख्या एवं विश्लेषण।

3.

अ – समाजवैज्ञानिक के रूप में उनके द्वारा सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण एवं एक सुधारक के रूप में इन के समाधान की प्रक्रिया का अध्ययन एवं परीक्षण।

ब – उनकी समाज रचना के विशिष्ट सन्दर्भो व्यक्ति एवं समाज, वर्णाश्रम, कायिक श्रम, स्त्रीशक्ति जागरण, अस्पृश्यता निवारण आदि का वर्णन एवं समीक्षा।

स – विनोबा जी के सामाजिक दायित्व एवं उनके समाज दर्शन के महत्व का परीक्षण।

4. आर्थिक चिंतन के अन्तर्गत –

I – पाश्चात्य अर्थ चिंतन के समानान्तर उनके अर्थचिंतन की मूलभूत विशेषताओं एवं स्वरूप का अध्ययन।

II – उनके अर्थचिंतन के नैतिक एवं मानवतावादी मूल्यों – अस्तेय, अपरिग्रह, त्याग संयम आदि का विवेचन ।

III – उनकी अर्थव्यवस्था के विविध आधारों विकेन्द्रीकरण, स्वदेशी, ग्राम्याधारित लघु कुटीर उद्योग एवं विवेकपूर्ण आर्थिक समानता की व्याख्या एवं विश्लेषण।

IV – एक अर्थशास्त्री के रूप में उनके अर्थचिंतन के महत्व का परीक्षण।

5. राजनीतिक चिंतन के अन्तर्गत –

I राज्य एवं शासन सम्बन्धी विचारों की व्याख्या एवं विश्लेषण।

II उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये 'स्वराज्य' एवं आत्मनुशासन के विचार का विवेचन।

III उनकी आदर्श शासन प्रणाली की मूलभूत विशेषताओं का अध्ययन।

IV लोकतंत्र के कल्याणकारी शासन, बहुमत के सिद्धान्त, दलप्रणाली एवं निर्वाचन पद्धति की उनके द्वारा की गयी आलोचना एवं इसी सन्दर्भ उनके रचनात्मक सुझावों का परीक्षण।

V दलविहीन लोकतंत्र के अन्तर्गत दलगत सत्तात्मक राजनीति के प्रभावों को क्षीण बनाने के सन्दर्भ

में उनके रचनात्मक उपायों का विश्लेषण।

VI ग्राम्यस्वराज्य की स्थापना के लिये उनके द्वारा रखे गये मूलभूत कार्यक्रमों की व्याख्या एवं विश्लेषण।

VII वर्तमान राजनीति के विकल्प के रूप में उनके लोकनीति के विचार का अध्ययन।

VIII उनके 'लोकशक्ति' के विचार का अध्ययन।

IX एक राजनीतिक चिंतक के रूप में उनके विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन।

6.

I सर्वोदय के दर्शन एवं धारणा का सैद्धान्तिक अध्ययन।

II सर्वोदय पर आधारित सामाजिक संरचना, अर्थव्यवस्था एवं राजव्यवस्था के स्वरूप का अध्ययन एवं विश्लेषण।

III सर्वोदय का साम्यवाद अराजकतावाद एवं उपयोगितावाद से तुलनात्मक अध्ययन।

7. सर्वोदय आन्दोलन के आधार के रूप में भूदान, ग्रामदान, संपत्तिदान, श्रमदान, जीवनदान एवं बुद्धिदान के उद्देश्य उपलब्धियाँ एवं विफलता एवं उसके कारणों का अध्ययन एवं विश्लेषण।

8. सर्वोदय आन्दोलन के व्यवहारिक क्रियान्विति के नैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संदर्भो की व्याख्या एवं विश्लेषण।

9. विनोबा जी के नेतृत्व में सर्वोदय आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन।

10. विनोबा जी के दर्शन का मूल्यांकन एवं औचित्य एवं प्रासंगिकता का परीक्षण।

महत्व

विनोबा जी ने प्रचलित धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में जो वैकल्पिक विचार दिये वह मूल्याधारित, एवं मानवीय अभियोजन से प्रेरित है। उनका मूल उद्देश्य हिंसा, अन्याय, शोषण, कटुता, वैमनस्य से पीड़ित मानवता के मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। क्योंकि उनके सामाजिक चिंतन का अभीष्ट ऐसे अहिंसक समाज की रचना करना है जहाँ व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं गरिमा की पूरी सुरक्षा हो। इसमें व्यक्ति समाज स्त्री पुरुष, ऊँच-नीच, शिक्षित एवं अशिक्षित के बीच कोई हित विरोध नहीं होगा। व्यक्ति और समाज के समबन्धों का आधार प्रेम विश्वास करुणा एवं

सहयोग होगा। निःसंदेह उनके द्वारा अहिंसात्मक नीति सम्मत समाज के निर्माण का प्रयास किया गया।

अर्थकेन्द्रित पाश्चात्य अर्थचिंतन की तुलना में उनके आर्थिक विचारों में मानवीय मूल्यों के प्रति अगाध श्रद्धा है। उनका अर्थचिंतन व्यक्ति केन्द्रित हैं। जहाँ आर्थिक क्रियाकलापों की शुरूआत व्यक्ति से होगी वस्तुओं से नहीं। एक पारम्परिक अर्थशास्त्री न होते हुये भी आर्थिक जीवन की विसंगतियों को दूर करने हेतु उन्होनें जो आधार विकसित किये वह महत्वपूर्ण है।

उनका राजनीतिक चिंतन मानवतावाद पर आधारित है। इन्होनें पश्चिम की राजनीति को सत्तात्मक मानकर अहिंसा, स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय को राजनीति में प्रस्थापित करने का प्रयास किया। उन्होनें वर्तमान राजनीति को शोषण, हिंसा एवं केन्द्रीकृत सत्ता का प्रतीक मानते हुये लोकनीति का विचार दिया इसका प्रमुख लक्ष्य जनकल्याण एवं सेवा है। वर्तमान लोकतंत्र में दलीय प्रणाली की कमियों एवं दलगत राजनीति के दुष्प्रभावों को दूसर करने की दृष्टि से उनके सुझाव निः संदेह महत्वपूर्ण है।

सर्वोदयी विचारधारा के अग्रणी प्रतिनिधियात्मक विचारक के रूप में विनोबा जी की भूमिका महत्वपूर्ण है। साथ ही उन्होनें गांधी जी मरणोपरान्त सर्वोदय दर्शन के व्यवहार में समाज व्यापी प्रयोग के लिये भूदान ग्रामदान संपत्तिदान श्रमदान एवं जीवनदान ऐसे कार्यक्रमों को क्रियान्वित करके अहिंसक समाज रचना के निर्माण हेतु भागीरथ प्रयास किये।

विनोबा जी का समस्त चिंतन एवं व्यवहारिक प्रयोगों का मानवतावादी मन्तव्य है अर्थात उनमें समस्त मानवता के उन्नयन का मूलभाव है। 'जगजगत' और विश्वमानव की उनकी भव्य कल्पना सभी संकुचित भेदों को समाप्त कर मानव – समाज को एकाकार करती है। वह क्षुद्र राष्ट्रवाद को अनर्थकारी और काल बाह्य मानते है कि यह दुनिया के टुकड़े करता है। अतः जयजगत का उद्घोष वह इस देश की संस्कृति के अनुकूल मानते है। उनके मत में हमें विश्वमानव बन के आज के अणुयुग में विश्वशान्ति की दिशा में रचनात्मक कार्य करने होगे। आज के परिप्रेक्ष्य में व्यापक चिंतन एवं विशिष्ट सेवा के द्वारा ही हम आगे बढ़ सकते है।

विनोबा जी के जीवन में संतों की करूणा, आचार्यो की तत्वनिष्ठा और ऋषि का आर्षदर्शन तीनों का समन्वयी करण हुआ है और इस समन्वय से उन्होनें मानवता की मुक्ति एवं उन्नयन का कार्य किया। बसन्त नरगोलकर ने अपनी पुस्तक 'दि क्रीड आफ सेन्ट विनोबा' में इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है –

" The significance of Vinoba's life and teachings to the modern world is exactly this, that persons like him illustrate there lives, the stage, the whole of mankind has to reach some day."

प्रासंगिकता

निः संदेह विनोबा जी ने एक व्यवहारिक चिंतक एवं प्रयोगी के रूप में अपने सिद्धान्तों पर आधारित जिन रचनात्मक कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया उनकी सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ में उपादेयता बनी हुई है।

आज के स्पर्द्धात्मक समाज में हिंसा कटुता, वैमनस्य एवं घृणा ने अनेक सामाजिक विकृतियों को जन्म दिया है। विनोबा जी का शाश्वत चिंतन एवं कार्यक्रम व्यक्ति और समाज दोनों की शुद्धि हेतु उपयोगी है एवं इन सामाजिक विकृतियों के समूल नाश हेतु प्रेम, सहयोग, करूणा, त्याग, एवं क्षमा आदि नैतिक मूल्यों को प्रस्तावित करते है। अतः आज उनके इन विचारों से सहयोगात्मक समाज के निर्माण की दिशा प्रशस्त हो सकती है।

वर्तमान आर्थिक जीवन में व्याप्त शोषण, असमानता एवं एकाधिकार की प्रवृत्तियों से अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ती जा रही हैं विनोबा के अपरिग्रह, संयम, एवं त्याग आदि विचारों से इस भोगवादी संस्कृतियों की विकृतियों को समाप्त करने में निश्चित रूप से सहायता प्राप्त हो सकती है। साथ ही स्वामित्व विर्सजन की मूल भावना पर आधारित उनके भूदान, ग्रामदान आदि कार्यक्रमों से आर्थिक विषमता को दूर करने में सहायता प्राप्त हो सकती है।

आज के राजनीतिक जीवन में सत्ताके अतिशय केन्द्रीकरण, भ्रष्टाचार, अपराधीकरण षडयंत्र एवं शोषण की प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही है। विनोबा जी ने राजनीति में नैतिक मूल्यों एवं उद्दश्यों को समर्थन देते हुये इसे सेवा और जनकल्याण के माध्यम के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। अतः वर्तमान समय में राजनीतिक जीवन के स्वस्थ स्वरूप के निर्धारण में उनके विचार उपयोगी सिद्ध हो सकते है।

इस प्रकार यदि विनोबा जी के चिंतन के शाश्वत मूल्यों एवं उन पर आधारित कार्यक्रमों को ह्रदय से आत्मसात करने की कोशिश की जाये तो निः संदेह आज की विभिन्न समस्याओं के निवारण में एक सीमा तक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

प्रथम अध्याय

विनोबाजी का जीवन वृत एवं कार्य

(क) जीवन परिचय एवं व्यक्तित्व

(ख) गाँधीजी के मानस पुत्र

(ग) सत्याग्रही के रूप में

(घ) यात्राओं के माध्यम से नवचिन्तन की खोज

(ड) विनोबीजी के रचनात्मक कार्यक्रम

(क) जीवन परिचय एवं व्यक्तित्व

आचार्य विनायक नरहरि भावे का जन्म महाराष्ट्र के कोलाबा जिले के गंगोदा ग्राम के सारस्वत ब्राह्मण परिवार में 11 सितम्बर 1895 को हुआ था। इनके पिता का नाम नरहरिभावे एवं माता का नाम रुक्मिणी देवी था। इनकी माँ इन्हे विन्या कहती थी एवं 'विनोबा' नामकरण साबरमती आश्रम के उनके साथी मामा फड़के ने महाराष्ट्र के संत परम्परा के अनुरूप किया [1]। बाद में गांधी जी ने भी विनायक को विनोबा नाम से सम्बोधित कर इसकी पुष्टि कर दी [2]।" इनके तीन भाई बालकृष्ण, शिवाजी, दत्रात्रेय थे एवं एक बहिन शान्ताबाई थी। इनके पिता बड़ौदा में नौकरी करते थे अतएव इनका प्रारम्भिक जीवन अपने दादा शम्भुराव भावे के पास गंगोदा में बीता। गंगोदा छोटा सा गाँव था, पर यहाँ के सामान्य जीवन शैली पर महराष्ट्र के महान सन्तों ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास, नामदेव एवं एकनाथ की शिक्षाओ का प्रभाव था। स्वयं विनोबा जी के शब्दों में "इस गाँव की महिलायें सुबह के कार्यो को करते समय अभंग (इन महान संतो के भक्तिपूर्ण गीतों) को गाया करती थी, मेरी माँ इन महान सन्तों की भक्तिपूर्ण रचनाओं के साथ-साथ कर्नाटक के पुरन्दर दास के भजनों को भी गाती थी [3]।"

विनोबा जी के आरम्भिक जीवन पर महाराष्ट्र के सांस्कृतिक वातावरण एवं समाजीकरण के प्रथम अभिकर्ता के रूप में परिवारिक पृष्ठभूमि का काफी प्रभाव पड़ा जिसका उल्लेख विनोबा जी ने बाद में समय-समय पर किया है।

विनोबा जी के दादा जी श्री शम्भूराव बहुत ही धार्मिक एवं श्रद्धालु व्यक्ति थे। पर उनमें धार्मिक कट्ट्रता नही थी। वह उदार हृदय के स्वामी थे। उनका मन्दिर हरिजनों के लिये भी खुला था और वह व्यक्ति जो उनके मन्दिर में भजन गाता था वह मुस्लिम था [4]।" जब कट्ट्रपंथी उनकी आलोचना करते तो वह कहते "ईश्वर की निगाह में सभी बराबर है न कोई हिन्दू न कोई मुसलमान है, न कोई ऊँचा एवं नीचा है अतः मै उनमें कोई बुराई नहीं देखता हूँ [5]। धार्मिक संस्कारों की शिक्षा

---

1. डा0 विश्वनाथ टंडन 'आचार्य विनोवा भावे' पृष्ठ - 1
2. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 20
3. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 3
4. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 4
5. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 4

विनोबा को अपने दादा से ही मिली। उनके शब्दों में "दादा के लिये चन्दन घिसना, गणेश चतुर्थी के समय दादा हम बच्चों से गणेश मूर्ति बनवाते, उसकी प्रतिष्ठापना सांगोपाग पूजा फिर उसका विर्सजन इस प्रकार आवाहन के साथ विर्सजन का प्रयोग करके सच्चा परमेश्वर आपके हृदय में है .... हमें शिक्षा दी है[6]।"

विनोबा जी के 'पिता नरहिरभावें बड़े स्वाभिमानी, टेकवालें, व्यवस्था के आग्रही, उद्यमशील और लगनशील पुरूष थे जीवन के प्रति उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण था [7]। पिता की स्वावलम्बी वृत्ति -संयम एवं सत्यनिष्ठा का विनोबा जी पर काफी प्रभाव पड़ा। उनका व्यक्तित्व एवं शिक्षाये उनके पुत्रों के लिये जीवन पर्यन्त प्रेरणा स्वरूप रही। विनोबा जी के अनुसार "दूसरों को दुःख न देना, पड़ोसियों की सेवा एवं वृद्धों की मर्यादा करना उनके पिता का जीवन था[8]।" वह देश की वैज्ञानिक प्रगति पर विश्वास करते थे। पर गांधी जी द्वारा 1935 में अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की कल्पना उन्हें पसन्द आयी। "गांधी जी के अनुरोध पर वे मंगलवाड़ी पहुँचे और निरीक्षण के बाद उन्होनें सलाह दी कि कागज का लुगदा बनाने के लिये मशीन का प्रयोग किया जाये बाकी क्रियाएं हाथ से ही हो। उन दिनों ग्रामोद्योग के सब काम हाथ से ही करने पर जोर दिया जा रहा था, इसलिये उनकी सलाह नहीं मानी गयी पर बाद में उनका विचार मान्य हुआ"[9] विनोबा की मां के निधन के बाद वह बड़ौदा में ही रहते थे। अन्तिम समय में अपनी बीमारी की सूचना अपने पुत्रों को भी नहीं थी। विनोबा को इसकी सूचना अपने मित्र से प्राप्त हुई । उन्होनें अपने भाई शिवाजी को वहाँ भेजा जो जिद्द करके उन्हे धुलिया लाये, जहाँ अक्टूबर 1947 में उनका निधन हो गया।

विनोबा की माँ धार्मिक सह्दय और घरेलू महिला थी। माँ का विनोबा जी के जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। स्वयं उन्होनें कहा है कि "मेरे मन पर माँ के जो संस्कार है, उसकी कोई उपमा नहीं है, मुझे अनेक सत्यपुरूषों की संसगति प्राप्त हुई है, अनेक महापुरूषों के ग्रन्थ मैने पढ़े है। जो अनुभव से भरे है उन सबको मै एक पलड़े में रखता हूँ और माँ से मुझे साक्षात भक्ति का शिक्षण मिला है उसे दूसरे पलड़े में रखकर तौलता हूँ, तो यह दूसरा पलड़ा भारी होता है[10]।" विनोबा एवं उनके

---

6. विनोवा साहित्य - खण्ड 19, 'धर्मामृत चरितामृत्म'
7. कांतिशाह - 'विनोबा : जीवन और कार्य', पृष्ठ - 10
8. विनोबा साहित्य - खण्ड 19, पृष्ठ - 198
9. कांतिशाह - 'विनोबा : जीवन और कार्य', पृष्ठ - 11
10. विनोबा साहित्य - खण्ड 19, पृष्ठ - 188

भाइयों को आचार धर्म एवं ब्रहमचर्य की शिक्षा अपनी माँ से ही मिली थी। उनकी माँ ने उनसे कहा था कि "विन्या गृहस्थाश्रम का अच्छी तरह से पालन करने से एक पीढ़ी का उद्धार होता है परन्तु उत्तम ब्रहमचर्य के पालन से बयालीस पीढ़ियों का उद्धार होता है[11]।" "अपने आखिरी पुत्र के जन्म के बाद 1912 से नरहरिभावे एवं रूक्मिणी देवी ने गृहस्थ जीवन में ही ब्रह्मचर्य व्रत को अपना लिया था[12]।" जीवन के विषय में मूलभूत आदर्शो की शिक्षा उन्हें माँ से ही प्राप्त हुयी। माँ के कुछ वचनों को उन्होनें 'विचारपोथी' में से सम्मिलित किया है-

"1. विनया ज्यादामत मांगो, ध्यान में रखो, थोड़े में मिठास है, ज्यादा में बदमाशी।

2. भरपेट अन्न और शरीर भर वस्त्र, इससे अधिक की जरूरत नहीं।

3. अंत्यज नीच नहीं होते" [13]

माँ के इन वचनों का उन पर जीवन पर्यन्त प्रभाव रहा। मराठी में गीता का 'गीताई' नाम से अनुवाद भी उन्होनें अपनी माँ की प्रेरणा से किया। विनोबा जी द्वारा चलाये गये विभिन्न आन्दोलनों पर उनकी माँ का प्रभाव एवं प्रेरणा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भूदान आन्दोलन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उनकी माँ ने कहा था कि "विन्या, देकर फिर खाना चाहिये, जो देता है वह देव है, और जो रखता है वह राक्षस है[14]।"

माँ का निधन 42 वर्ष की अवस्था में हुआ। माँ का अन्तिम संस्कार ब्राहम्णों के हाथ से कराये जाने का विनोबा जी ने विरोध किया। विनोबा जी ने कहा कि अन्तिम संस्कार मेरे हाथों से होने पर माँ को निश्चित रूप से शान्ति मिलेगी पर उनकी यह बात मान्य नहीं हुई। विनोबा जी शमशान नहीं गये। स्नान करके गीता उपनिषद और वेदों का अध्ययन शुरू किया जो 1969 तक लगातार जारी रहा।

विद्यार्थी जीवन एवं गृहत्याग :- 1903 में विनोबा के पिता परिवार को बड़ौदा में ले आये। विनोबा इसी वर्ष बड़ौदा के स्कूल में तीसरी कक्षा में भर्ती हुये। यही से उनकी विधिवत् औपचारिक शिक्षा शुरू हुई। वह शुरू से ही मेघावी छात्र रहे। सभी परीक्षाओं में अव्वल रहकर उन्होनें छात्रवृत्ति प्राप्त की। छठी

---

11. विनोबा साहित्य, खण्ड 19, पृष्ठ - 195

12. डा0 विश्वनाथ टंडन, आचार्य विनोबा भावे, पृष्ठ - 2

13. विनोबा साहित्य, खण्ड 19, पृष्ठ - 196

14. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 191

कक्षा के बाद पिता ने उनको स्कूल से निकाल और घर पर ही इनको स्वयं पढ़ाने लगे। वह विनोबा को "टैक्सटाइल विशेषज्ञ' बनाना चाहते थे, वह स्वयं अच्छी रंगाई जानते थे[15]। उन्होनें विनोबा को बड़ौदा के कलाभवन में भेजा पर वहाँ पर अन्य लोगों की तुलना में विनोबा जी की अंग्रेजी कमजोर थी। अतः वह प्रवेश से वंचित रह गये। उनके पिता उनको घर पर ही गणित व अंग्रेजी का अभ्यास कराने लगे। इसके उपरान्त उन्होनें बड़ौदा के हाईस्कूल में भर्ती कराया जहाँ से उन्होनें 1913 में हाईस्कूल पास किया एवं बड़ौदा कालेज से इण्टर मीडिएट हेतु प्रवेश लिया।

विद्यार्थी के रूप में न केवल विनोबा जी असाधारण प्रतिभा के धनी थे, वरन् बहुत ही आदर्श चरित्र वाले थे। गणित शुरू से ही उनका प्रिय विषय रहा। विनोबा ने स्वाध्याय से जो कुछ सीखा वह उनकी जीवन की अपूर्व निधि है। वह संस्कृत, मराठी, अंग्रेजी में निष्णात होने के साथ में अनेक भारतीय भाषाओं के ज्ञाता थे। महाराष्ट्र के संत साहित्य को कंठस्थ करने के अलावा विनोबा ने तुलसी दास की रामचरित मानस तथा विनय पत्रिका, शंकराचार्य के ब्रहम सूत्र भाष्य तथा श्रीमद भागवत गीता का गूढ़ अध्ययन किया था। उपनिषदों, स्मृतियों तथा योगादर्शन का ज्ञान उन्हें संतो की श्रेणी में खड़ा करता है"[16] बड़ौदा की सेन्ट्रल लाइब्रेरी में उन्होनें मिल्टन बडसविर्थ, ब्राउनिंग, लियोटालस्टाय एवं विलियम शेक्सपियर के साहित्य का भरपूर अध्ययन किया[17]।" लोकसेवा की इच्छा से 1914 में उन्होनें अपने कुछ मित्रों के साथ 'विद्यार्थी मण्डल' स्थापित किया[18]। शिवाजी जयंती एवं दास नवमी उत्सव उन्होनें विधिवत् मनाना शुरू किया । वहाँ अलग-अलग विषयों में अध्ययनचर्चा, संतसाहित्य, देशप्रेम, महान व्यक्तियों के चारित्रय, विकास एवं ज्वलंत राष्ट्रीय विषयों पर चर्चा होती। विनोबा के शब्दों 'में मेरा सार्वजनिक जीवन इसी विद्यार्थी मण्डल से शुरू हुआ।' बाद में ग्राम सेवा मण्डल (1935) की स्थापना का सूत्र भी इसी से जुड़ा था[19]।" बाद में विद्यार्थी मण्डल की सहायता से चरित्र, प्रवासवर्णन, इतिहास एवं विज्ञान पर आधारित 1600 पुस्तकों की एक अध्ययनशाला स्थापना की।

---

15. डा० विश्वनाथ टंडन, विनोबा भावे, पृष्ठ - 12
16. डा० सुरेशराम - विनोबा एण्ड हिजमिशन, पृष्ठ - 10-15
17. डा० विश्वनाथ टंडन, पृष्ठ - 11
18. पूर्वोक्त
19. विनाबा साहित्य, खण्ड - 19, पृष्ठ - 208

विनोबा जी को विश्वविद्यालय सम्बन्धी शिक्षा में कोई रूचि नहीं थी। उनका तर्क था कि यह हमारे जीवन के बुनियादी पहलुओं से जुड़ी नहीं है। विनोबा जी पर महाराष्ट्र के सन्तों का बहुत प्रभाव रहा। उन्होनें दस साल की उम्र से ही ब्रहमचर्य का संकल्प लिया और शुरू से ही सात्विक जीवन व्यतीत किया "वह जमीन पर बिना तकिया के चटाई बिछाकर सोते थें, शादी विवाह के भोज को ग्रहण नहीं करते थें"[20] गृहत्याग का विचार उनके मन में बचपन से ही था। इसकी प्रेरणा उन्हे तीन महापुरूषों से प्राप्त हुई। "गौतमबुद्ध, संतरामदास, जगतगुरू शंकराचार्य"[21] मार्च 1916 को इण्टर की परीक्षा देने के लिये बम्बई जाना पड़ता था। लेकिन सूरत में वह अपने दो मित्रों श्री बेडेरकर और तगारे के साथ उतर गये। और अपने मित्र गोपालराव काले को पिताजी के लिये पत्र दिया "मै परीक्षा देने बम्बई जाने के बजाए अन्यब जा रहा हूँ मै कहीं भी जाऊ विश्वास रखिये मेरे हाथों कोई अनैतिक कार्य नहीं होगा।" [22] गृहत्याग से पूर्व ही उन्होनें मेट्रिक के सारे सर्टिफिकेट जला दिये थे। विनोबा जी काशी आ गये। इसके पीछे दो कारण थेः प्रथम एक तो काशी संस्कृत अध्ययन का केन्द्र था, द्वितीय यह हिमालय और बंगाल दोनों के रास्तें में पड़ती थी। विनोबा ने कहा "मै छोटा था तभी से मेरा ध्यान हिमालय और बंगाल की और खिचा हुआ था बंगाल की बन्देमातरम् की क्रान्ति भावना और हिमालय के ज्ञान योग के प्रति आकर्षण था। हिमालय और बंगाल दोनों के रास्ते में काशी पड़ती थी कर्मयोग से मै वहाँ आ पहुँचा" [23] काशी पहुँचने पर बापू के उस व्याख्यान के सम्पर्क में आये जिसको पढ़ने के बाद उनकी जीवन की दिशा निर्धारित हो गयी।

बापू ने हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास उत्सव के अवसर पर भारतीय राजाओं को सम्बोधित करते हुये कहा था "देश तब तक आजाद नहीं हो सकता जब तक आप लोग इन हीरा जवाहरातों को छोड़कर, अपनी सम्पत्ति को देश की याती मानकर नहीं चलेगें। [24] गांधी जी के भाषण की प्रमुख बात जिसने विनोबा जी को सर्वाधिक प्रभावित किया था कि अंहिसा का अनुपालन भी शुद्व निर्भयता के

---

20. डा0 विश्वनाथ टंडन, आचार्य विनोबा भावे, पृष्ठ - 16
21. पूर्वोक्त
22. पूर्वोक्त
23. विनोबा साहित्य, खण्ड - 19, पृष्ठ - 217
24. डा0 विश्वनाथ टंडन, आचार्य विनोबा भावे, पृष्ठ - 19

बिना असंभव है" [25] इस भाषण को पढ़ने के बाद उनके मन में न जानें कितनी जिज्ञासायें उत्पन्न हुयी। उन्होनें बापू को पत्र लिखा। बापू का जबाव आया कि समस्या का समाधान पत्र से नहीं, जीवन से होगा" [26] इस पत्र के साथ बापू ने आश्रम का नियमपत्रक भी भेजा था जिसमें लिखा था। "इस आश्रम का ध्येय विश्वहित अविरोधी देश सेवा है और उसके लिये हम निम्नलिखित व्रत आवश्यक मानते है – सत्य, अंहिसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, एवं शरीर श्रम।" [27] विनोबा जी का मन आकृष्ठ हो गया है उन्हें लगा कि यह पुरुष ऐसा है, जो देश की राजनीतिक स्वतंत्रता और आध्यात्मिक विकास दोनों की साधना साथ-साथ चाहता हैं। 17 जून 1916 को वह बाप के पास कोचरब आश्रम पहुँचे। यहाँ बापू के सानिध्य में हिमालय की शांति और बंगाल की क्रान्ति दोनों के दर्शन हुये।" [28] गांधी जी ने विनोबा को पहचाना और विनोबा को सच्चा गुरू प्राप्त हो गया। [29] विनोबा जी ने गांधी जी के मार्गदर्शन को स्वीकार एवं उनके मरणोपरान्त समाज सुधार एवं राष्ट्रनिर्माण के लिये जीवनपर्यन्त उत्कृष्ठ कार्य किये। जैसा कि 'नारायन देसाई' ने रूपांकित किया है। –

"यहाँ एकादश व्रत का पालन कर योगी सा जीवन प्राप्त किया तो दूसरी ओर आजादी के लिये, सत्याग्रह दरिद्रनरायन के लिये तप-तितिक्षामय सादा जीवन बिता, ऋषि खेती, कांचन, मोह मुक्ति के प्रयोग कर भूदानादि यज्ञ द्वारा धर्म चक्र प्रर्वतन कर बागियों के आत्मसर्मपण द्वारा जुर्म के क्षेत्र में सामाजिक क्रान्ति का मंगलाचरण किया।" [30] "इस महान आध्यात्मिक संत ने अपने शरीर का एकमात्र उपयोग मानवता की सेवा एवं राष्ट्र निर्माण के लिये किया। अन्त में अपने गन्तव्य को प्राप्त कर मानव शरीर से पलायन कर परमसाम्य को प्राप्त किया।" [31] इन का निधन 87 वर्ष की अवस्था में 15 नवम्बर 1982 को पवनार में हुआ।

---

25. डा० विश्वनाथ टंडन, आचार्य विनोबा भावे, पृष्ठ – 19
26. विनोबा साहित्य, खण्ड – 19, पृष्ठ – 217
27. पूर्वोक्त
28. पूर्वोक्त
29. डा० सुरेशराम, 'विनोबा एण्ड हिज मिशन', पृष्ठ – 15
30. नरायन देसाई, 'सूर्य की रथयात्रा' गाँधीमार्ग, जनवरी 1983, पृष्ठ – 73-74
31. बसन्त नरगोलकर, 'द क्रीड ऑफ विनोबा', पृष्ठ – 182

(ख) गांधी जी के मानस पुत्र

आचार्य विनोबा भावे गांधीवाद के सच्चे प्रतिनिधि माने जाते है [1] । इन्हें गांधी जी की आत्मा एवं गांधीवाद के सच्चे भाष्यकार [2] एवं उन का नैतिक एवं आध्यात्मिक [3] उत्तराधिकारी कहा गया है।

सर्वोदयी संत ज्ञान, भक्ति, कर्म का संगम बनकर गांधीवादी परम्परा को निरन्तर गहराई प्रदान करते रहे। विनोबा जी द्वारा प्रयोग में लाये विभिन्न कार्यक्रमों सत्याग्रह, खादी प्रचार, गोवधनिषेध, भूदान, ग्रामदान, कुष्ठ सेवा, हरिजनोद्धार आन्दोलनों में गांधी जी की अन्तः ज्योति के दर्शन होते हैं स्वयं गांधी जी ने अपने बारे में कहा था कि –

वह भय, चिन्ताओं, पश्चातापों, परवाह रखने, अभिलाषाओं, अनुराग तथा मोह से मुक्त है [4] साथ ही उनके हृदय में छुआछूत की गन्ध तक नहीं है, साम्प्रदायिक एकता में उनको उतना ही विश्वास है जितना मेरा [5] वास्तव में गांधीमार्ग पर चलने के लिये इन्ही संकल्पित गुणों का प्रश्न था। विनोबा ने सत्य अहिंसा, ब्रहमचर्य, अपरिग्रह एवं सर्वधर्म समभाव को आत्मसात करके गांधी दर्शन को निरन्तर अभिव्यक्ति प्रदान की। विनोबा जी ने गांधीवादी दर्शन की सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों पहलुओं पर समान विचार किया [6] । सैद्धान्तिक क्षेत्र में गांधी के विचारों की व्याख्या एवं स्पष्टीकरण शास्त्रीय ढंग से करते है तथा कही–कही पर गांधी की अहिंसा के आधार नई–नई अवधारणाओं का निर्माण भी करते है। व्यवहारिक रूप से ये गांधी की अहिंसा का प्रयोग देश के नये आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में करते है, जिसके परिणामस्वरूप भूदान, ग्रामदान, प्रखंडदान, जिलादान, जैसी धारणाएं आती है" [7] ।

---

1. डा० दशरथ सिंह, गाँधीवाद को विनोबा की देन, पृष्ठ – 41
2. दिवान प्रभाकर, "गाँधी जीवन विषयक, तावज्ञान के एकमात्र भाष्यकार विनोबा भावे", तुरक जमालुद्दीन (सम्पादित), विनोबा दर्शन (वर्धा लोकोदय प्रकाशन 1948), पृष्ठ – 56
3. डा० विश्वनाथ टंडन 'द सोशल एण्ड पोलिटीकल फिलोसफी आफ सर्वोदय आफटर गाँधी', पृष्ठ – 4
4. वास्टो लाजेडील, गाँधी टू विनोबा, पृष्ठ – 149
5. गाँधीजी 'हरिजन सेवक' 25-11-1940
6. डा० दशरथ सिंह, गाँधीवाद को विनोबा की देन, पृष्ठ – 41
7. पूर्वोक्त, पृष्ठ – 42

विनोबा जी ने गांधीवादी मॉडल के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सभी पक्षों की विशिष्टताओं को न केवल आत्मसात किया वरन् जो रचनात्मक विचार एवं कार्यक्रम प्रस्तावित किये उसके पीछे पूरी गांधीवादी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि थी। गांधी जी के राजनीतिक पुनर्निर्माण में रामराज्य (अहिंसक राज्य व्यवस्था) विकेन्द्रित शासन, पंचायती राज्य एवं शान्ति सेना का विचार शामिल है। उन्होंनें राजनीति का आध्यात्मीकरण किया "उनका विश्वास था कि यदि राजनीति को मानव समाज के लिये वरदान होना है, तो उसे उच्चतम नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिये ....धर्म से पृथक राजनीति तो मृत्यु जाल है क्योंकि यह आत्मा का हनन करती है [8]।" विनोबा जी ने भी ग्राम्यस्वराज्य, विकेन्द्रित शासन व्यवस्था एवं लोकनीति का विचार दिया। विनोबा ने राजनीति एवं अध्यात्म के समन्वय के सन्दर्भ में कहा है " If the process of spiritualization of politics does not remain intact, it is destroyed " [9] विनोबा जी ने नये अहिंसक राजनीतिक व्यवस्था के निर्माण के लिये राजनीति की वैज्ञानिक व्याख्या दी जिसे स्वराज्यशास्त्र का नाम दिया। उन्होंनें राजनीति की जगह लोकनीति का विचार दिया। जो दलगत सत्तात्मक राजनीति का विकल्प है। [10]

गांधी जी ने अहिंसक सर्वोदयी समाज के निर्माण के लिये 'वर्णाश्रम अस्तेय अपरिग्रह, रोटी के लिये श्रम, स्वदेशी सर्वधर्म समभाव' को आधार बनाया [11] ।" जिसमें साध्य के साथ साधनों की पवित्रता का भी आग्रह है। गांधी जी की यह आध्यात्मिक समाज की कल्पना विनोबा जी के चिन्तन में विकसित हुई है। विनोबा ने यज्ञ, दान, तप और त्याग पर विशेष बल देकर इन्हें समाज का मौलिक सिद्धान्त मान लिया है। जो वस्तुतः आध्यात्मिक है[12]।" विनोबा जी ने भी आदर्श सामाजिक संरचना में सर्वधर्म समभाव स्त्री पुरूष समानता, अस्पृश्यता निवारण एवं स्वेदशी व्रत की आवश्यकता पर बल दिया। इस समाज में मालिक – मजदूर श्रमजीवी व बुद्धिजीवी एवं ऊँच–नीच का कोई भेद नहीं होगा। सर्वत्र प्रेम और सहयोग होगा। उन्होंनें कहा "वर्तमान समाज स्पर्द्धात्मक है, हम सहयोगात्मक समाज भविष्य में बनाना चाहते ह[13]।

---

8. डा0 बी0 एल0 फड़िया, 'भारतीय राजनीतिक चिन्तन' पृष्ठ – 185
9. K. Shah 'Vinoba on Gandhi' 2nd edn p. 26
10. डा0 दशरथ सिंह – 'गाँधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ – 415
11. गाँधीजी 'सर्वोदय'
12. डा0 दशरथ सिंह 'गाँधीवाद को विनोबा की देन', पृष्ठ – 379
13. सिलेक्शन फाम विनोबा (सम्पादित) विश्वनाथ टंडन – 1981, पृष्ठ – 111

गांधीवादी अर्थव्यवस्था में अर्थव्यवस्था और गाँधीवादी नैतिकता को पृथक नहीं किया हैं। उनका विचार था 'सच्चा अर्थशास्त्र नैतिकता के महान नियमों के प्रतिकूल नहीं हो सकता" (14) यह अध यात्म और नैतिकता के बीच का मार्ग है गांधी जी ने ग्राम्याधारित औद्योगीकरण, खादी का अर्थशास्त्र, मशीनों का विरोध, वस्तुविनिमय अर्थव्यवस्था एवं सहकारितापूर्ण भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल अहिंसक अर्थव्यवस्था का ताना बाना बुना था (15) । विनोबा जी के आर्थिक चिन्तन में भी नैतिक मूल्यों और मानव कल्याण अत्यधिक महत्व दिया गया है। उनके शब्दों में "अस्तेय और अपरिग्रह दोनों से मिलकर ही अर्थशुचित्व पूर्ण होता ....(16) ।"

30 जनवरी 1948 को गांधी जी की मृत्यु के बाद विनोबा जी के समक्ष नई जिम्मेदारियां उपस्थित थी। स्वंतत्र भारत में गांधी जी की विचारधारा को जीवित रखने के लिये उन्होनें अपरिग्रह, अंहिसा सत्याग्रह, खादी विचार समानभाव सामाजिक परिर्वतन एवं सर्वोदय की नवीन व्यवस्था की (17) इसी सन्दर्भ में उन्होनें गांधी दर्शन के तीन महत्वपूर्ण विचार ट्रस्टीशिप, सत्याग्रह और सर्वोदय को अपने रचनात्मक प्रयोगो द्वारा क्रियान्वित किया (18)। विनोबा जी ने गांधी जी ट्रस्टीशिप का विनियोग सामाजिक रचना के क्षेत्र में किया। "भूदान आन्दोलन ट्रस्टीशिप का महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी कदम है। यह जीवन शोधन की विस्तृत प्रक्रिया है जिसने साधनदान, सम्पत्तिदान, बुद्धिदान, श्रमदान, प्रेमदान, कूपदान, एवं जीवनदान के विचार को समुन्नत किया (19)। गांधी जी की सत्याग्रह प्रक्रिया, विनोबा के अनुसार विशेष परिस्थिति के कारण दबावपूर्ण और निषेधात्मक थी (20)। उसे पूर्ण नहीं माना जा सकता है। आज युग बदल गया है, देश आजाद हो गया है, लोकतंत्र की स्थापना हो गयी है .... ऐसी परिस्थिति में स्थूल, उग्र व तीव्र सत्याग्रह से काम नहीं चलेगा। ऐसी स्थिति

---

14. बी0 एल0 फड़िया ' भारतीय राजनीतिक चिंतन', पृष्ठ - 211
15. डा0 अलका अग्रवाल 'ग्राम पुनर्निर्माण का गाँधीवादी माडल' योजना अक्टूबर 1998, पृष्ठ - 28
16. विनोबा साहित्य, खण्ड 18, साम्योगी समाज, पृष्ठ 81
17. Devdutt - Vinoba and the Gandhian Tradition quoted from Vinoba - The Spiritual Revolutionary (ed. Divaker and Agrawal) p - 173
18. पूर्वोक्त
19. पूर्वोक्त
20. विनोबा चिन्तन (सत्याग्रह विचार) अंक- 34-35 1968, पृष्ठ - 472

में सत्याग्रह को सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम बनाना ही उसे अधिक प्रभावशाली बनाना है" [21] । विनोबा ने रचनात्मक सत्याग्रह को ही सत्याग्रह का वास्तविक रूप बनाकर नई परिस्थितियों में इनका प्रयोग किया [22] ।" "भूदान शांतिसेना आचार्य कुल खादी सर्वोदय पात्र आदि रचनात्मक सत्याग्रह के ही प्रकार है [23] । विनोबा जी के शब्दों में "पूरे भूदान आन्दोलन के दौरान हम लोगों में सत्याग्रह की शक्ति को जागृत करने की कोशिश कर रहे थे [24] ।"

विनोबा ने सर्वोदय को साम्ययोग कहा है। "साम्य का अर्थ है संतुलन स्थिरता, एकता, अथवा तादात्म्यता .... इसलिये साम्ययोग के आधार पर आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, मानसिक, वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक साम्य की प्राप्ति की जा सकती हैं। साम्य की प्रक्रियायें भिन्न भिन्न हो सकती है, परन्तु इन सभी प्रक्रियाओं का एक ही मिलन बिन्दु साम्य है।" [25] विनोबा जी ने "भूदान - ग्रामदान एवं ग्राम्यस्वराज्य आन्दोलन के द्वारा अहिंसक सामाजिक परिर्वतन की नई दृष्टि विकसित की, जो पूर्णतया सर्वोदय विचार के अनुकूल है।" [26] इनका सर्वोदय आन्दोलन बहुआयामी था इसके द्वारा इन्होनें लोगों का नैतिक उत्थान, सामाजिक जीवन में श्रम की प्रतिष्ठा एवं शारीरिक एवं मानसिक श्रम के बीच भेद का निषेध, आर्थिक जीवन में आत्मनिर्भरता एवं प्रत्येक प्रकार के शोषण से मुक्त अहिंसक समाज का आधार प्रस्तुत किया। समग्र व्यवस्था के लिये एक व्यवस्थित योजना के रूप में सर्वोदय में अर्न्तव्याप्त मूल प्रेरणा के सूत्रों को जगत में क्रियान्वित करने का श्रेय विनोबा जी को ही है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि विनोबा जी ने गांधी जी के सभी सिद्धान्तों को अक्षरसः नहीं स्वीकारा विनोबा जी मौलिक चिंतक थे। [27]उन्होनें स्वतंत्र भारत की परिस्थितियों के अनुसार उसमें संशोधन भी किया जैसे दादा धर्माधिकारी ने कहा है ..... "उत्तराधिकारी लकीर का फकीर नहीं होता। अपने पूर्वानुवर्ती लोकनेताओं के द्वारा निर्दिष्ट दिशा में नये मार्ग प्रशस्त करता है और नयी पगडण्डियाँ खोजता है।

---

21. पूर्वोक्त
22. डा0 दशरथ सिंह 'गाँधीवाद को विनोबा की देन', पृष्ठ - 537
23. Dr. Ramji Singh 'Acharya Vinoba Bhave'- Quest for Non-Violence, p - 5
24. Dr. Suresh Ram 'Vinoba and his mission', p - 211
25. विनोबा चिंतन, अंक - 10-11, पृष्ठ 38
26. Dr. Ramji Singh 'Acharya Vinoba Bhave' p - 3
27. डा0 विश्वनाथ टंडन, 'द सोशल एण्ड पोलिटिकल फिलोसफी आफ सर्वोदय आफ्टर गाँधी' पृष्ठ -4

गांधी जी ने लोकमान्य द्वारा प्रतिपादित साधनों को परिमार्जित किया और उन्हें अधिक परिणाम में सक्षम बनाया। निः शस्त्र प्रतिकार को सत्याग्रह में विकसित किया .... गांधी जी के उत्तराधिकारी विनोबा जी अपने को गांधी जी का प्रिय शिष्य मानते है, परन्तु उन्होनें भी गांधीमार्ग का संशोधित रूप प्रदान किया। उन्होनें गांधी जी की अहिंसात्मक सत्याग्रह की अधिक वैज्ञानिक व्याख्या की। क्रान्ति की प्रक्रिया को सौहार्द की साधना का आध्यात्मिक रूप दिया। और उसे अद्‌भुत ललितकला के स्तर पर लाकर बैठा दिया। वे केवल दार्शनिक और द्रष्टा ही नहीं प्रयोगी भी है"[29]।

विनोबा जी ने सत्याग्रह को व्यापक आशय प्रदान किया। विनोबा जी के अनुसार "ईशा मशीह का सन्देश था कि (Resist not evil) अनिष्ट का प्रतिकार न करो। इसका अर्थ यह भी लगाया गया कि अनिष्ट का प्रतिकार अनिष्ट से न करों। गांधी जी ने भी यही अर्थ लिया। पर आज सन्दर्भ भिन्न है आज दुनिया में आवेश के नहीं, परन्तु एक विचार के दूसरे विचार पर हमले होते हैं और उनके प्रचार के लिये शस्त्रास्त्रों का उपयोग किया जाता है। आज Non - Violent resistance के बदले Non - violent assistance in right thinking अर्थात सम्यक चिन्तन में अहिंसक सहयोग को समन्वित करना होगा[30]।" विनोबा ने गांधी की अहिंसा को सैद्धान्तिक दृष्टि से स्वीकार किया लेकिन इस सिद्धान्त के आधार पर नये-नये शोधों की आवश्यकता पर बल देतें हुये इन्होनें अहिंसा की जो व्याख्या प्रस्तुत की है उसमें अहिंसा के भावात्मक और रचनात्मक तथा मनोवैज्ञानिक स्वरूप पर विशेष प्रभाव पड़ता है" [31] विनोबा जी के अनुसार परशुराम विश्वामित्र, वशिष्ट की अहिंसा के साथ विवशता जुड़ी है। संतो की अहिंसा का प्रयोग केवल व्यक्तिगत मोक्ष के लिये हुआ है[32]। गांधी जी ने सामूहिक रूप से इसका प्रयोग किया अवश्य परन्तु उनकी अहिंसा में भी विवशता जुड़ी है[33]।" विनोबा जी ने भावात्मक अहिंसा को महत्वपूर्ण माना जो सत्य-प्रेम करूणा का अखण्ड रूप है[34]।" इसका सबसे महत्वपूर्ण अंग रचनात्मक कार्य में श्रद्धा रखना है ऐसी अहिंसा उत्पादक होती है। उनकी राय में

---

29. दादा धर्माधिकारी, गाँधीमार्ग (पत्रिका) 1983, पृष्ठ - 80-81
30. विनोबा 'लोकनीति' पृष्ठ - 129
31. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 237
32. विनाबे भावे 'अहिंसाः विचार और व्यवहार' पृष्ठ - 115 - 120
33. पूर्वोक्त पृष्ठ - 104
34. पूर्वोक्त - 67

"रचनात्मक कार्मो में मनुष्य के विकास करने वाली सेवा में तन्मय हो जाना ही अंहिसा का मुख्य रूप है ....[35]।" वह भावात्मक अहिंसा को सामूहिक समाधि का विषय मानते है[36]।" विनोबा जी ने अंहिसा के बाहरी स्वरुप से ज्यादा उसकी आन्तरिक क्रियाओं और निष्ठओं पर अधिक बल दिया इसी को स्थितप्रज्ञता और मनोवैज्ञानिक अहिंसा कहते है .... इसके लिये वह आत्मशोधन, आत्मशुद्धि, मुक्त सेवा, विश्वव्यापी प्रेम और निर्भयता की आवश्यकता पर बल देतें है[37]।"

विनोबा जी ने अपने समय की सामाजिक एवं राष्ट्रीय मांगो के अनुरूप एक ओर गांधीवादी मूल्यों की नवीन व्याख्या की वही दूसरी ओर आचार्य कुल तीसरी शक्ति , लोकनीति, सर्वोदयपात्र, स्त्रीशक्ति और जयजगत का उद्घोष आदि उनके मौलिक चिन्तन का परिणाम है। पर यह भी सत्य है कि उनके द्वारा नवीन परिस्थितियों में नये विचारों एवं धारणाओं का जो विकास किया गया वह मूलतः गांधीवादी विरासत पर ही आधारित है।

निश्चित रूप से विनोबा जी के समग्र प्रयासो से गांधी का दर्शन वैचारिक और व्यवहारिक रूप में सामने आया। उन्होनें गांधीवादी विचारों की प्रयोगधर्मिता को युग एवं परिस्थितियों के अनुकूल बनाया। जैसा महादेव देसाई ने लिखा है कि गांधी जी के व्यक्तित्व की न्यूनाधिक विभिन्न विशेषताएं उनके प्रमुख शिष्यों में मिलती है। परन्तु विनोबा में दो गुण विशेष रूप से परिलक्षित होते है। निर्णय लेने के साथ उसे कार्य में परिणत करना तथा सतत् विकासशील प्रयोजन महत्वपूर्ण माने गयें। विनोबा ने स्वीकारा कि उनकी अन्तर्आत्मा साक्षी है कि अहिंसा का जो मार्ग गांधी जी ने दिखलाया उस पर चलने को उन्होनें पूरी कोशिश की। गांधी जी के विचारों की प्राथमिकता को विनोबा ने स्वीकारा [38]। काकाकालेकर, आचार्यकृपलानी, मशरुवाला,राजगोपालाचारी तथा दादा धर्माधिकारी ने विनोबा को गांधी विचार का सबसे बड़ा प्रवक्ता माना है[39]। गांधी मार्ग पर चलने का सही अर्थ है संभव है – विवेकपूर्ण देशजचिंतन और उसका आचरण । निःसंदेह जीवन पर्यन्त इसका निर्वाह करके विनोबा जी ने गांधी जी के सपनों को साकार करने का भागीरथ प्रयास किया। वह सच्चे अर्थो में गांधीजी

---

35. पूर्वोक्त - 121
36. विनोबा 'गीता प्रवचन', पृष्ठ - 254
37. विनोबा 'अहिंसाः विचार और व्यवहार - 126
38. पूर्ण विवरण हेतु क्रांतिशाह, 'गांधी - जैसा देखा समझा विनोबा ने' पृष्ठ - 65 - 77
39. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 47

के मानसपुत्र थे। किशोरी लाल मशरूवाला के शब्दों में –

"हम यह विश्वास करते है कि बापू के सिद्धान्तों को सबसे अच्छी तरह विनोबा ने ग्रहा है ....[40]

आचार्य कृपालानी के शब्दों में –

"विनोबा गांधी दर्शन के महान व्याख्याकार है[41]।" विनोबा जी ने बापू द्वारा दिखाये गये सत्य, प्रेम, करूणा, एवं अहिंसा के मार्ग पर चलने के लिये जीवन पर्यन्त कठिन तपस्या की। स्वयं उनके शब्दों में – " There has not been a movement when I have been careless, now when Bapu is not present I have no doubt in my mind that it is Bapu's work that I am doing, this is a source of great happiness that I find Bapu is always with me"[42]

निश्चित रूप से यह सत्य उक्ति है –

"Vinoba have respresent the high mark of the Gandhian way of life and Gandhian technigue of rebuilding new Society"[43]

(ग) सत्याग्रही के रूप में

'सत्याग्रह' गांधी जी की सम्पूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन का मूल बिन्दु है। "सत्याग्रह गांधी जी के लिये संघर्ष का प्रमुख हथियार था इन हथियार को दक्षिण अफ्रीका में अपने संघर्ष में सत्य एवं अहिंसा की खोज करते हुये प्राप्त किया था[1]। "सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है सत्य के लिये आग्रह करना इसका आधार "सत्य से उत्पन्न होने वाले प्रेम तथा अहिंसा की शक्ति" है[2] गांधी जी ने सत्याग्रह को 'सत्यशक्ति' [3] के रूप में स्वीकार किया है। सत्य का अर्थ उन्होनें 'आत्मा'[4]

---

40. किशोरीलाल मशरूवाला 'दि रिपोर्ट आफ सम्मेलन' 1948 पृष्ठ – 70
41. डा0 विश्वनाथ टंडन ' दि सोशल एण्ड पोलिटीकल फिलासफी आफ सर्वोदय आफ्टर गाँधी से उद्धृत पृष्ठ – 5
42. 'Moved by love : The Memories of Vinoba Bhave Paunar Paramdham Prakashan 1964 preface by Kalindi P - 2
43. डा0 विश्वनाथ टंडन 'द शोसल एण्ड पोलिटीकल फिलासफी आफ सर्वोदय आफ्टर गाँधी से उद्धृत पृष्ठ – 5
1. डा0 एस0 पी0 वर्मा 'आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत', पृष्ठ – 378
2. डा0 बी0 एल0 फड़िया 'भारतीय राजनीतिक चिन्तन' पृष्ठ – 196
3. Gandhi - Satyagrah, p - 3
4. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 3

से लिया है। अतः सत्याग्रह का अर्थ है "आत्मशक्ति"[5] प्रेम शक्ति[6] और सत्य शक्ति का आग्रह। "सम्पूर्ण मानव इतिहास में गांधी को छोड़कर किसी ने इसका प्रयोग इतने व्यापक क्षेत्र (आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक) में नहीं किया था[7]।"उन्होनें राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष के साथ सामाजिक-आर्थिक न्याय औद्योगिक संघर्षो, साम्प्रदायिकता एवं अश्पृश्यता जैसी बुराइयों के विरूद्ध संघर्ष करने में भी इसका प्रयोग किया।

गांधी जी की सत्याग्रह की प्रक्रिया के तीन आयाम है। प्रथम आन्दोलनात्मक तथा संघर्षात्मक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सत्याग्रही अन्याय का प्रतिकार अहिंसक प्रक्रिया से करता है। इसके अर्न्तगत सत्याग्रही समाज में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में प्रचलित बुराइयों के विरूद्ध अहिंसक संघर्ष प्रारम्भ करता है। उपवास हिंसा का प्रतिकार, आत्मपीड़ा, असहयोग और हड़ताल एवं सविनय - अवज्ञा[8] इसके आधार है। श्री दिवाकर ने इसे " Aggressive Satyagraha"[9] कहा है। दूसरी प्रक्रिया भावात्मक है जिसमें समाज रचना का कार्य होता है। इसे श्री दिवाकर ने " Constructive Satyagraha"[10] की संज्ञा देते है। तीसरी मूल्य-परिवर्तनात्मक प्रक्रिया है जिसके अनुसार सत्याग्रही और समाज का मूल्य-परिर्वतन होता है।

सत्याग्रही के रूप में विनोबा जी ने सत्याग्रह के आन्दोलनात्मक, रचनात्मक एवं मूल्य परिर्वतनात्मक के विस्तार में उत्कृष्ट योगदान दिया। साथ ही लोकतंत्र में सत्याग्रह का क्या स्वरूप हो? इस सन्दर्भ में उन्होनें नवीन धारणाओं का विकास किया। सत्याग्रही के रूप में विनोबा जी की समग्र भूमिका के परीक्षण के लिये उपरोक्त बिन्दुओं का सम्यक एवं स्पष्ट विवेचना करना आवश्यक हैं।

(क) *सत्याग्रह की आन्दोलनात्मक प्रक्रिया -*

विनोबा जी 17 मार्च 1916 को कोचरब आश्रम पहुँचे। तभी से गांधी जी के सानिध्य और

---

5. Gandhi - Satyagrah, p - 3
6. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 8
7. Bose, N. K. 'Studies in Gandhism' 2nd edn., p - 126
8. Bandopadhaya J. Social and Political thaught of Gandhi p - 228
9. Diwakar, R. R., 'Satyagraha' p - 47
10. पूर्वोक्त

मार्गदर्शन में स्वराज्य की अहिंसक लड़ाई में पूरी तरह समर्पित हो गये। वास्तव में प्रारम्भ में विनोबा ने अपने जीवन को गांधी जी के विचारों के अनुरूप एक सत्याग्रही के रूप में ढ़ाला था। "प्रथम भेंट के औपचारिक परिचय के बाद ही दोनों एक दूसरे के निकट पहुंचते गये थे"(11) "सांसारिक संबधो की डोर दृढ़ होती गयी। गुरू और शिष्य के रूप में दोनों का व्रत एक अटूट साधन बन गया था। प्रारम्भ से ही विनोबा जी की अध्यवसायी, परिश्रमी और लगनशील जीवन का गांधी जी पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। दोनों व्यक्तियों ने एक दूसरे को समान रूप से सराहा तथा विनोबा आश्रम में पूर्ण सदस्य के रूप में भर्ती कर लिये गये"(12)

गांधी जी ने 1940 में अपने व्यक्तिगत सत्याग्रह में विनोबा जी को प्रथम सत्याग्रही के रूप में चुना। वास्तव में गांधी जी ने शुद्वतम अहिंसा की दृष्टि से जिस सत्याग्रह अभियान शुरू किया उसका प्रथम सत्याग्रही बनने का सम्मान सही व्यक्ति को मिला क्योंकि गांधी जी ने कहा था कि "ईमानदारी तथा मनसा, वाचा, कर्मणा निवैरता के अभाव में सत्याग्रही कल्पना असम्भव है"(13)

विनोबा जी तक आदर्श चरित्र के साथ-साथ सच्चे सेवक भी थे। महात्मा गांधी ने राष्ट्र के समक्ष उनके गुणों को अभिनन्दित करते हुये कहा था -

"उनके हृदय में छुआछूत की गन्ध तक नहीं हैं, साम्प्रदायिक एकता में उनका उतना ही विश्वास है जितना मेरा। इस्लाम धर्म को समझने के लिये उन्होंनें एक वर्ष तक कुरान शरीफ का मूल अरबी में अध यन किया है - "उनका विश्वास है कि गाँव वालों को रचनात्मक कार्यक्रम के बिना सच्ची आजादी नहीं मिल सकती। उनके रचनात्मक कार्यक्रम का केन्द्र है खादी। उनका विश्वास है कि चरखा अहिंसा का उपयुक्त चिन्ह है। उन्होंनें सत्याग्रह की लड़ाइयों में भाग लिया है। वह राजनीतिक मंच पर कभी लोगों के सामने आये ही नहीं। उनका यह विश्वास है, कि सविनय अवज्ञा के अनुसंधान में राजनैतिक भाषणों की अपेक्षा रचनात्मक कार्यक्रम ही ज्यादा प्रभावकारी है। उनका पूर्ण विश्वास है कि चरखें में हार्दिक श्रद्वा रखे बिना रचनात्मक कार्य में सक्रिय भाग लिये बिना अहिंसक प्रतिकार संभव नहीं है।"(14)

उल्लेखनीय है कि सत्याग्रह से विनोबा जी का नाम 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह से जोड़ा

---

11. वीरेन्द्र शर्मा 'सर्वोदय विचार और आकाक्षायें एवं उपलब्धियाँ, पृष्ठ - 748
12. पूर्वोक्त
13. गाँधी 'हरिजन' 22, 10, 1938, पृष्ठ - 238
14. गाँधीजी 'हरिजन सेवक' 25, 11- 1940

जाता है परन्तु इससे पूर्व ही झंडा सत्याग्रह वायकोम सत्याग्रह आदि ने विनोबा को सत्याग्रही के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। "नागपुर के झंडा सत्याग्रह (1923) में विनोबा जी ने सर्वप्रथम भाग लिया[15]। वे जेल भेजे गये उन्हें पहले नागपुर जेल में रखा गया फिर अकोला जेल में भेजा गया। अकोला जेल में राजनैतिक कैदी कार्य नहीं करते थे। विनोबा जी ने उन्हें गीता का सन्देश दिया कि "बिना परिश्रम करके रोटी खाना पाप है"[16]

विनोबा को दो महीने बाद रिहा कर दिया गया।

द्वितीय सत्याग्रह वाइकोम (केरल) सत्याग्रह था। जो मन्दिरों में हरिजनों के प्रवेश को लेकर था। 1925-26 में लगभग 16 महीने चला। हरिजनों को मन्दिर से निकलने वाले मार्ग से गुजरना भी निषिद्ध था। उन दिनों विनोबा वर्धा आश्रम में थें। गांधी जी साबरमती आश्रम में थें। उन्होनें विनोबा को दो उद्देश्यों के साथ वहाँ भेजा। प्रथम वहाँ के लोगों से विचार विमर्श करना द्वितीय वहाँ की परिस्थितियों के सन्दर्भ में सत्याग्रह के प्रयोगार्थ कुछ संशोधन आवश्यक हो तो प्रस्तुत करना[17]।" विनोबा जी गये पर अपने प्रथम उद्देश्य में सफल नहीं हुये, हालांकि उन्होनें पण्ड़ितों से काफी चर्चा की पर उनके ह्दय परिर्वतन में असमर्थ रहे। द्वितीय उद्देश्य के सन्दर्भ में कहा कि "यदि वह शुद्ध दृष्टि से चलता है तो कार्य अवश्य सिद्ध होता है"[18] ।

17 अक्टूबर 1940 को विनोबा ने पवनार में व्यक्तिगत सत्याग्रह के सन्दर्भ में पहला भाषण दिया, तब सरकार ने उन्हें गिरफ्तार नहीं किया। उसके बाद सुरगॉव, सेलु और देवली में भाषण दिये। उन्होनें उसी दौरान युद्ध सन्दर्भ में अपना पक्ष रखते हुये कहा। "चौबीस साल पूर्व ईश्वर की खोज में अपना घर छेड़ा था। तब से मेरा जीवन लोगों की सेवा में बीता क्योंकि मेरा विश्वास है कि यह ईश्वर की प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है .... मैं अहिंसा में पूर्ण विश्वास रखता हूँ और मै मानता हूँ कि इसमें मानवता की सभी समस्याओं का हल है। युद्ध मानवता के हित में नहीं है। .... आज के मशीनी युद्ध में अमानवीय तत्व शिखर पर पहुँच गये है। इसने मनुष्य को पशुवत् बना दिया है। भारत में स्वराज्य की साधना केवल अहिंसा

---

15. डा0 विश्वनाथ टंडन, 'आचार्य विनोबा भावे', पृष्ठ - 25
16. पूर्वोक्त
17. पूर्वोक्त - 26
18. पूर्वोक्त

से ही हो सकती है .... गांधी जी के व्यक्तिगत सत्याग्रही के रूप में सरकार जब तक मुझे गिरफ्तार नहीं करती है तब तक मै लोगों से प्रार्थना करूगां कि वह युद्ध में किसी प्रकार की सहायता न करे मै लोगों को अहिंसा का दर्शन समझाता रहूंगा[19]।"

"सरकार ने युद्ध विरोधी भाषण देने के कारण उन्हे गिरफ्तार कर लिया। तीन महीने की सजा काटने के बाद विनोबा जी छोड़ दिये गयें। परन्तु पुनः सत्याग्रह किया और छः महीने की सजा हुई। रिहा होने के बाद फिर सत्याग्रह किया फिर एक साल की सजा हुई। और इसी दौरान जेल में उन्होनें 'स्वराज्यशास्त्र' नामक पुस्तक लिखी[20]।" सन् 1942 के 'भारत छेड़ो आन्दोलन के दौरान विनोबा पहले ही दिन गिरफ्तार कर लिये गये। "तीन वर्ष नजरबन्द रहे। प्रारम्भ में वे वेलोर (दक्षिण भारत) और बाद में शिवनी (मध्य प्रदेश) के जेल में रखे गये" [21] 1945 में अन्य के साथ इनको भी रिहा किया गया।

विनोबा जी ने स्वतंत्र भारत में 'गोवधनिषेध हेतु सत्याग्रह किया। विनोबा जी का मानना था कि भारत के जनजीवन में गाय का आध्यात्मिक सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। "वेद का वचन है सहस्र धारा पयसा मही गॉः (ऋसा-4-3-10) वैदिक ऋषि कहते है गॉंवों विश्वस्यमातरः गाये कुल दुनिया की मातायें है"[22] उनके अनुसार गाय भारत की ग्रामीण अर्थ रचना का केन्द्र है"[23]

विनोबा जी ने कहा कि गोवंश की रक्षा करना हमारा पुनीत कर्तव्य है। गाय बिना किसी भेदभाव के सारे समाज की रक्षा करती है अतः समस्त जनता हिन्दु-मुस्लिम ईसाई आदि सभी पक्ष गोबध- निषेध हेतु सहयोग करे। उन्होनें कहा पश्चिम बंगाल, केरल में जो गौ हत्या हो रही है उससे उनका ह्दय व्यथित हुआ है। उन्होनें समस्त देशवासियों से गो-बधनिषेध हेतु सत्याग्रह करने का आवाहन् किया-

1. "पं0 बंगाल और केरल छेड़कर सभी प्रदेशों में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय की मर्यादा में गौ हत्या बंदी कानून बने है। अतः सभी प्रदेश की सरकारें जनता द्वारा चुने हुये प्रतिनिधि सांसद एवं विधायक को भी चाहिये कि वे अपने प्रदेशों से पं0 बंगाल और केरल में गाय बैल जाने से रोक दे।
2. जिन प्रदेशों के कत्लखाने में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के बाहर गाय और बैलों का कत्ल होता है

---

19. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 39
20. श्रीमन्नायरायन 'ऋषि विनोबा', पृष्ठ - 6
21. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 7
22. विनोबा साहित्य खण्ड 18 'साम्ययोगी समाज', पृष्ठ - 395-396
23. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 386

उन सभी कत्लखानों पर सत्याग्रह कर गाय बैलों को कत्ल से बचाया जाये।

3. स्थानीय समिति के मार्गदर्शन में अनुशासनबद्ध तथा शांतिपूर्वक सत्याग्रह हो।

4. 21 अप्रैल 1979 तक पं0 बंगाल और केरल में अन्य प्रदेशों की तरह गौ हत्या बंदी कानून नहीं बनता है तो 22 अप्रैल से वह आमरण अनशन करेगें[24]।" विनोबा जी ने 22 अप्रैल को आरब्धम जयजगत कहकर अनशन प्रारम्भ किया। 26 अप्रैल को प्रधानमंत्री और कांग्रेस जन ने बाबा को आश्वासन दिया कि सारे भारतवर्ष में गौहत्या बंदी के व्यापक प्रयास किये जायेगे। और पाँच दिन बाद यह आमरण अनशन समाप्त हुआ। 1982 में देवनार (बम्बई) के कसाई खाने में किसी भी उम्र की गाय और बैल न काटने के लिये उन्होनें कार्यकर्ताओं को सत्याग्रह करने का आदेश दिया यह सत्याग्रह आज भी चल रहा है।"[25]

(ख) सत्याग्रह की भावात्मक अथवा रचनात्मक प्रक्रिया -

रचनात्मक कार्यक्रम सत्याग्रह का सृजनात्मक पक्ष है। गांधी जी ने स्वयं खादी प्रचार, मधनिषेध, हिन्दु मुस्लिम एकता, कुष्ठ सेवा, महिला उद्धार, ग्रामीण कुटीर उद्योग, समग्र ग्रामसेवा एवं आदिवासियों की सेवा आदि रचनात्मक कार्यक्रमों को नई समाज रचना हेतु प्रस्तुत किया था। रचनात्मक कार्यक्रम सत्याग्रह को पूर्णतः अहिंसक और सृजनात्मक बनाता है। "रचनात्मक कार्यक्रम गांधीवादी सत्याग्रह रूपी आत्मा का शरीर है यह सत्याग्रह का सहवर्ती और पूरक तत्व है"[26] विनोबा जी स्वयं मानते है कि सत्याग्रह के लिये रचनात्मक कार्यक्रम आधारभूत है फिर इससे स्थूल सत्याग्रह की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके शब्दों में - "रचनात्मक कार्य के आधार पर खड़ा हुआ सत्याग्रह सामनें वालों की विचार शक्ति को जागृत करता है, कुंठित नहीं। सत्याग्रह आत्म शुद्धि का प्रयास हैं जिसका अनिवार्य परिणाम सामने वालें की हृदय शुद्धि से होता है[27]।" इस सन्दर्भ में उनका भूदान, ग्रामदान आन्दोलन उल्लेखनीय है। विनोबा जी ने भूदान के माध्यम से जहाँ भूमि समस्या के निराकरण का अहिंसात्मक प्रयास किया वहीं प्रेम, करूणा, सहयोग एवं अहिंसा, आदि को लोक जीवन में प्रतिष्ठित भी

---

24. पूर्वोक्त - 391

25. पूर्वोक्त - 393

26. वी0 पी0 सीतारमैया 'गाँधी एण्ड गाँधीज्य खण्ड - 1, पृष्ठ - 170

27. विनोबा साहित्य खण्ड - 16 'तीसरी शक्ति', पृष्ठ - 263

किया। विनोबा जी ने भूदान यज्ञ को सत्याग्रह की प्रक्रिया कहा है। उनके शब्दों में - "भूदान यज्ञ का कार्य एक अर्थ में सत्याग्रह ही है। हम लगातार जाड़े में, बारिश में, और गर्मी में हर हालत में घूमते है। निरन्तर लोगों को समझाते रहते है। दरिद्र लोगों से भी दान लेते है क्योकि हम सत्याग्रह की ताकत खड़ी करना चाहते है। जब छोटे लोग दान देगें तभी यह सिद्ध होगा कि मालिकी गलत है, फिर बड़े लोगों पर नैतिक दबाव आयेगा। फिर उनके ह्दय में प्रवेश होगा। नैतिक दबाव सत्याग्रह का ही अंग है ...[28] शान्ति सेना, आचार्यकुल, खादी सर्वोदय पात्र, हरिजनोपासना एवं कुष्ठ सेवा आदि सत्याग्रह के रचनात्मक प्रयोग है।[29]

(ग) *सत्याग्रह की मूल्यपरिवर्तनात्मक प्रक्रिया -*

विनोबा जी ने अपनी सत्याग्रह साधना से समाज के मूल्यपरिर्वतन पर जोर दिया। उनका मानना है "सत्याग्रह में एक शक्ति है .... जो सामने वाला मनुष्य सोचने के लिये भी राजी नही था या विपरीत सोचता था, वह सत्याग्रह दर्शन से सोचने लगा। उसका सोचना निर्मल हुआ उसकी बुद्धि के परदे खुल गये, मोह के आवरण दूर हो गये और उसके मन में अनुकूलता पैदा हो जाती है[30]। वह भूदान, ग्रामदान को मूल्य परिवर्तन का कार्य मानते है। उनके शब्दों में "पहले-पहले लगता था कि वातावरण पर इसका परिणाम क्या होगा। थोड़े से अमृत से सारा समुद्र मीठा कैसे होगा पर धीरे-ध ाीरे विचार बढ़ता गया परमेश्वर ने मेरे शब्दों में कुछ शक्ति भर दी। लोग समझ गये कि यह जो कार्य हो रहा है, क्रान्ति का काम है और सरकार की शक्ति से परे है क्योंकि यह जीवन परिर्वतन का काम है"[31] विनोबा जी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों से समाज विकृतियों एवं आर्थिक असमानताओं पर प्रहार किया। वही प्रेम, त्याग, करूणा, अपरिग्रह एवं शुचिता की प्रेरणा को सामाजिक बनाया।

लोकतंत्र में सत्याग्रह का स्वरूप -

विनोबा जी सत्याग्रह दर्शन को गांधी की आधुनिक युग को विशेष देन मानते है। विनोबा जी के अनुसार 'सत्याग्रह' एक मध्यपदलोपी समास से बना हुआ शब्द है जिसका अर्थ है 'सत्य के लिये

---

28. विनोबा साहित्य, खण्ड - 16, तीसरी शक्ति, पृष्ठ - 283
29. विनोबाजी के इन रचनात्मक कार्यक्रमों की विस्तृत चर्चा आगे है ।
30. विनोबा - लोकनीति, पृष्ठ - 13
31. विनोबा साहित्य खण्ड - 15 आरोहण, पृष्ठ 47

अहिंसापूर्वक आग्रह'[32] विनोबा के अनुसार सत्याग्रह एक आत्मसंशोधन या आध्यात्मिक संशोधन की पद्वति है। इस पद्वति के अनुसार न तो अन्यायियों के अन्याय को स्वीकार कर चुपचाप बैठा जाता है और न उसके प्रति विद्रोह का झंडा ही उठाया जाता है। इससे आत्मसंशोधन की तीसरी प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जिससे हम अपने दोषो और न्यूनताओं का निरीक्षण, परीक्षण, निराकरण तथा संशोधन करते है[33]।" अतः सत्याग्रह में सचमुच में आत्मबल का ही व्यापक प्रयोग है[34]। विनोबा का सत्याग्रह गांधी के बीच तत्वों का ही विकास है इनके सत्याग्रह सम्बन्धी विचार का मुख्य आधार गांधी के जीवन की अंतिम इच्छा तथा पूर्व के सत्याग्रह में हुई गलतियों की स्वीकृति है[35]।" उन्होनें गांधी के विचारों को ही नवीन परिस्थितियों के अनुकूल सम्यक रूप से प्रस्तुत किया हैं। उन्होनें कहा है कि "लड़का पिता के कंधो पर खड़ा है। इससे वह पिता की अपेक्षा दूर देख सकता है। लेकिन मैने उससे कोई वृद्धि नहीं की है। अगर की होती तो आपसे अवश्य कहता कि व्यर्थ विनय जैसी कोई चीज ईश्वर की कृपा से मुझमें नही है[36]।

स्वतंत्रता के उपरान्त जब देश में लोकतंत्र स्थापित हुआ तब तक प्रश्न स्वाभाविक रूप से जनसमुदाय के समक्ष था कि "सत्याग्रह की प्रक्रिया की सार्थकता केवल परतंत्र राष्ट्र या विदेशी शासन के सन्दर्भ में ही है या प्रजातंत्र में इसका कोई स्थान है[37]।" गांधी जी ने 1946 में कहा था "पूर्ण अहिंसक असहयोग कितना भी सुन्दर क्यों न हो परन्तु लोकप्रिय शासन में इसके लिये कोई स्थान नहीं है[38]।" विनोबा जी भी इससे सहमत है उनके शब्दों में "सत्याग्रह के लिये उस सत्ता में स्थान न होगा जिसमें हर निर्णय 'Unanimous' या एक राय से ही हो" पर वर्तमान डेमोक्रेसी में कुछ दोष है हिंसाधारित पद्धति में सारे फैसले सर्वसम्मति से नहीं होते"[39] अतः आज की लोकशाही में सत्याग्रह के लिये स्थान है ही लेकिन उसका स्वरूप क्या हो, यह विचार का प्रश्न है[40]।" उन्होनें कहा कि "सत्याग्रह का जो पुराना रूप है, उसके लिये डेमोक्रेसी

---

32. विनोबा - लोकनीति - 132
33. कांतिभाईशाह - गाँधी जैसा देखा समझा विनोबा ने, पृष्ठ 47
34. पूर्वोक्त - 50
35. डा० दशरथसिंह - गाँधीवाद को विनोबा की देन, पृष्ठ - 521
36. कांतिशाह (सेपा) गाँधी - जैसा देखा समझा विनोबा ने, पृष्ठ - 69
37. डा० दशरथ सिंह - 'गाँधीवाद को विनोबा की देन', पृष्ठ - 503
38. गाँधी - हरिजन 14 जुलाई 1946
39. विनोबा भावे, लोकनीति, पृष्ठ - 130
40. पूर्वोक्त

में कोई गुजाइंश नहीं है[41]।" क्योंकि गांधी जी के समय और आज की परिस्थितियों में महत्वपूर्ण अन्तर है[42]। "पहला उस समय हम आजाद नहीं थे और आज हम आजाद है। दूसरा उस समय हिन्दुस्तान में लोकशाही की स्थापना नहीं हुई थी अब लोकशाही स्थापित हो गयी है, तीसरा उस समय जितना विज्ञान था उससे हम आज आगे बहुत बढ़ गये है।

"वे (गांधी जी) अंग्रेजों को क्विट इण्डिया कह सकते थें। आज हम व्यापारियों, जमीन मालिकों सम्पत्तिमानों को क्विट इण्डिया नहीं कह सकते। हम सबको एक साथ रहने की युक्ति साधनी चाहिये[43]।" विनोबा जी ने लोकतन्त्रीय शासन में 'सत्याग्रह के प्रयोग हेतु कुछ आवश्यक संशोधन किये -

1. आज की परिस्थितियों में सत्याग्रह का स्वरूप नकारात्मक न होकर सकारात्मक होना चाहिये। विनोबा जी विधायक अथवा रचनात्मक सत्याग्रह का ही नवीन परिस्थितियों में प्रयोग करना चाहते थे, उनके शब्दों में "आज देश स्वतंत्र है, लोकतान्त्रिक पद्वति से देश का कार्य चलता है। जनता के पास जाकर अपने मत का प्रचार करके जनमत को अपने अनुकूल बनाने की स्वतंत्रता है। ऐसी परिस्थितियों में उपवास वगैरह तो आखिरी उपाय हो सकते है सत्याग्रह का अर्थ धाक धमकी नहीं इसका उपाय तो प्रेम का प्रकर्ष है।" आज सत्याग्रह शब्द से लोगों को भय नहीं होना चाहिये। "सत्याग्रह के श्रवणमात्र से लगना चाहिये कि बड़ा सुन्दर काम हो रहा है .... कल से मै सत्याग्रह करूगां तो इतना कहने से लोगों की सहानुभूति मेरे प्रति हजारो गुना बढ़ जानी चाहिये[45]। सत्याग्रह का स्वरूप अंडगा या संघर्ष का नहीं होना चाहिये वरन् करूणामूलक ही होना चाहिये।

2. विनोबा ने कहा कि सत्याग्रह की प्रक्रिया सौम्य, सौम्यतर, और सौम्यतम होनी चाहिये। उनके शब्दों में "यह विचार ही भूल भरा है कि दूसरों पर स्थूल दबाव जितना अधिक होगा सत्याग्रह उतना ही अधिक शक्तिशाली बनेगा वास्तव में देखा जाये तो दबाव जितना कम, प्रेम का अंश जितना अधिक,

---

41. पूर्वोक्त - 135
42. विनोबा भावे (लेख) 'सत्याग्रह-जीवन पद्धति, कार्यपद्धति, उपायपद्धति - मैत्री (पत्रिका) जून 1982, पृष्ठ - 454
43. पूर्वोक्त
44. विनोबा भावे - लोकनीति, पृष्ठ - 132
45. पूर्वोक्त - 134

सत्याग्रह उतना शक्तिशाली होगा[46]।

सत्याग्रह की इस प्रक्रिया में प्रतिपक्षी के ऊपर दबाव नहीं पड़ता बल्कि उसे सम्यक चिंतन में सहयोग मिलता है। उन्होनें कहा "हम सौम्य सत्याग्रह से कार्य आरम्भ करते है उससे भी काम नहीं चलता तो हमारा सौम्यतर सत्याग्रह होता है। उससे भी काम नहीं चलता तो उसे सौम्यतम बनाते है[47]।" इस प्रक्रिया के पीछे होम्योपैथी चिकित्सा पद्धति का दर्शन लागू होता है[48]। जैसे होम्योपैथी में दवाई की मात्रा कम परन्तु घोटाई की भावना की मात्रा अधिक होती है और उससे दवा की पोटेंसी बढ़ जाती है ठीक उसी प्रकार प्रतिकार कम और प्रेम की मात्रा बढ़ाये जाने से सत्याग्रह की प्रक्रिया में ताकत आती है।

3. सत्याग्रही को 'सत्याग्रही' होना चाहिये। "जीवन का स्वरूप है सत्यशोधन। सत्य का एक-एक अंश हाथ में आता हैं। और सत्य प्राप्त होता है। नम्रता, तटस्थता, अनाग्रह से इसलिये सत्याग्रही को सत्यग्राही होना जरूरी है। .... सत्य आचरण एवं आग्रह पूर्वक करना चाहिये। इसके लिये फिर चाहें जैसे त्याग की तैयारी हो यही सही सत्याग्र है। [49]

इस प्रकार सत्यग्रही के रूप में विनोबा ने सत्याग्रह के विविध आयामों प्रतिकारात्मक, रचनात्मक एवं मूल परिवर्तनात्मक के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। साथ ही लोकतंत्र में सत्याग्रह के प्रयोगार्थ नवीन मूल्यों एवं धारणाओं का विकास किया। सत्याग्रह में उन्होनें 'प्रतिकार' की जगह सहंकार को महत्वपूर्ण स्थान दिया। उनके समग्र सत्याग्रह दर्शन की व्याख्या से यह बात स्पष्ट होती है। "गांधी जी के सत्याग्रह को अधिक आध्यात्मिक, संगत, सूक्ष्म और रचनात्मक बनाने का श्रेय विनोबा को है[50]।"

---

46. विनोबा भावे (लेख) सत्याग्रह जीवन पद्धति, कार्य पद्धति, उपाय पद्धति - पृष्ठ - 471
47. विनोबा चिन्तन, अंक - 34-35 (नवम्बर दिसम्बर 1960), पृष्ठ - 68
48. पूर्वोक्त
49. कांतिभाई (संपा) गाँधी - जैसा देखा समझा विनोबा ने, पृष्ठ - 68
50. डा0 दशरथ सिंह 'गाँधीवाद को विनोबा की देन, पृष्ठ - 553

(घ) यात्राओं के माध्यम से नवचिंतन की खोज

विनोबा जी ने 1951 से 1969 तक लगातार अठ्ारह वर्ष तक सम्पूर्ण भारत वर्ष की यात्रा की। भूदान-ग्रामदान आन्दोलन के दौरान सत्य, प्रेम और करूणा का सतत् प्रवाह करती विनोबा जी की अनूठी क्रान्ति एवं शान्ति यात्राओं से जो वाकयज्ञ हुआ, उससे जीवन का हर क्षेत्र जुड़ता गया। सम्पूर्ण यात्राओं में एक समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ, भक्त, अध्यात्म एवं विज्ञान के साधक के रूप में उन्होनें निरन्तर विचार-शोधन का कार्य किया। और नवीन विचारों को जन्म दिया इन यात्राओं के पीछे गांधी जी के बाद उनके विचार 'सर्वोदय' के संस्थापन की प्रेरणा थीं। इसके लिये उन्होनें विद्यमान हिंसा प्रधान व्यवस्था को तोड़कर सामुदायिक अहिंसा की विश्वआकाक्षाओं की पूर्ति की। इससे निरन्तर गांधीवादी दर्शन का क्षितिज विस्तृत होता गया। इसी प्रक्रिया में सर्वोदय के बीच से पौधा और पौधे से परिपूर्ण वृक्ष बनने की साधना पूरी हुयी।

भूदान-ग्रामदान अभियान के निमित्त हुये उनके प्रवचनों से गांधी जी की विचारधारा का सांगोपांग भाष्य प्रस्तुत हुआ। उससे उन्होनें प्रेम, सद्‌विचार एवं अहिंसात्मक तरीके से समाज निर्माण के स्वरूप का नूतन रूप विश्व समुदाय के समक्ष रखा। उनकी सम्पूर्ण यात्राओं के दौरान यहाँ की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्पराओं तथा धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक परिस्थितियों के मंथन से ऐसे नवरत्न बाहर आये जो भारतीय जीवन मूल्यों का अटूट अंग बन गये। अपनी यात्राओं से सत्य, अहिंसा और प्रेम को अन्वेषण कर उन्होनें मानवता के नैतिक उन्नयन का मार्ग प्रशस्त किया। विनोबा जी ने तेरह वर्ष पदायात्रा और साढ़े चार वर्ष वाहनयात्रा की। इन यात्राओं के पीछे उनकी आध यात्मिक साधना का बल था। लोगों ने उनसे पूछा कि आपने ज्यादा पैदल यात्रा का ही व्रत क्यो लिया। इस सन्दर्भ में उनका उत्तर था - "लोग पूछ्ते है आज पैदल क्यों घूमते है? यदि मैं हवाई जहाज से घूमता तो मेरा काम हवा में ही रह जाता है। लेकिन मै जमीन पर पैर रखकर घूम रहा हूँ। इसलिये मेरा कार्य जमीन में गहरा रहा है। मै हवाई जहाज से घूमता तो केवल मानपत्र मिलते। भूमि के दानपत्र नहीं। अगर सत्य का संशोधन करना है, किस काम से अहिंसा चलेगी इस पर चिंतन करना है, तो खुली हवा और मुक्त आकाश के नीचे ही घूमना चाहिये(1)।" उन्होनें कहा 'हिन्दुस्तान का बहुत दिमाग शहरों

1. विनोबा साहित्य, खण्ड - 15 आरोहण, पृष्ठ - 67-68

में है। लेकिन उसका दिल तो देहातों में है। जब तक हम दिल तक नहीं पहुँच सकते, तब तक जनता के विचारों में प्रवेश नहीं हो सकता .... इसलिये पैदल ही घूम रहा हूँ।"[2] साथ ही उन्होनें कहा शंकराचार्य, महावीर, बुद्ध, कबीर, चैतन्य, नामदेव जैसे लोग हिन्दुस्तान में घूमे और पैदल ही घूमे वे चाहते तो घोड़े पर जा सकते थें। परन्तु उन्होनें त्वरित साधन का सहारा नही लिया क्योकि वे विचार का शोधन करना चाहते थें।"[3]

इन यात्राओं के माध्यम से विनोबा जी ने न केवल क्षेत्र विशेष के लोगों को उनकी विभिन्न समस्याओं के बारे में जागरूक बनाया वरन् उनके समाधान का मार्ग भी उन्हीं के बीच से ही निकाला। पुराने विचारों का शोधन फिर नवीन विचारों का सृजन उनकी शान्ति यात्राओं की सर्वोपरि प्राथमिकता रही। भूदान गंगा के उद्गम स्थल तेलिगाना की यात्रा के समय उन्होनें इस विचार को बल प्रदान किया कि प्रत्येक मनुष्य में दया, प्रेम, करूणा एवं अहिंसा का विचार है। अगर उसका आवाहन सात्विक रूप से करें तो अहिंसक समाज निर्माण का कार्य अवश्य पूरा होगा विनोबा जी के शब्दों में "मुझे ईश्वर का एक प्रकार से साक्षात्कार ही हुआ। मानव के दिलों में भलाई है, उसका आवाहन किया जा सकता है। ऐसा विश्वास रखकर किया तो भगवान ने वैसा ही दर्शन दिया ....। "[4]

उल्लेखनीय है पहला भूदान उस गाँव में हुआ जहाँ मार्क्सवादी समाजवादी तत्व 1948 से चीन के माओवाद के अनुकूल हिंसात्मक आन्दोलन चला रहे थे। वहाँ उन्होनें "साध्य की प्राप्ति के लिये साधनों की शुद्धि भीं आवश्यक है" गांधी जी के समतामय और न्यायनिष्ठ समाज के निर्माण के इस विचार को नूतन एवं व्यवहारिक रूप प्रदान किया। उन्होनें "जन-जन के ह्दय में बैठी हुई करूणा की भावना को विचार, विश्वास एवं सहकार की शक्ति से जागृत कर अहिंसा का नया प्रयोग शुरू किया।"[5]

मध्य प्रदेश के भिण्ड मुरैना के डकैतीग्रस्त क्षेत्रों में अपनी यात्रा के दौरान जो प्रेम, करूणा और अहिंसा का संदेश दिया उसके आहवान पर दस्यु पीड़ित क्षेत्र भी प्रेममय हो गया। आध्यात्मिक जगत

---

2. पूर्वोक्त - 68
3. विनोबा साहित्य, खण्ड - 19, धर्मामृत चरितामृत, पृष्ठ - 271
4. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 275
5. आचार्य राममूर्ति (लेख) 'गाँधी - विनोबा, जयप्रकाश और सामाजिक परिवर्तन के आयाम', सर्वोदय जगत (पत्रिका) अक्टूबर 1999, पृष्ठ - 7

की मूल शक्ति अहिंसा का प्रयोग गांधी जी ने राजनीतिक क्षेत्र में किया था। विनोबा जी ने इसका प्रयोग सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में किया। बागी क्षेत्र में अहिंसा का सामूहिक साक्षात्कार हुआ। उन्होनें कहा। "डाकू जन्म से पैदा नहीं होता। वह तो शोषण, कजूंसी, क्रूरता और हीनता ही उपज है। धुलिया जेल में ऐसे सैकड़ों भाइयो से मिलने का मौका मिला। मैने देखा कि उनमें से बहुत से सौम्य, भक्ति भाववाले और धार्मिक वृत्तिवाले थे। अगर हम डाकुओं से प्रेम करे, उनके प्रति दयाभाव दिखाये, गॉव को एक परिवार बना दे तो सारी समस्यायें अपने आप हल हो जाये। ये डाकू बहुत सीधे, निर्भय और बहादुर है। अगर उनकी काम की पटरी बदल दी जाये तो बे बड़ी सरलता से से साधु चरित बन सकते हैं।"[6]

इसका मूल सन्देश यही था कि अन्धकार को अन्धकार नहीं मिटा सकता उसके विरूद्ध हमें प्रकाश को प्रभावित करना होगा। दुर्जनता को सज्जनता से और अज्ञान को ज्ञान से हीं जीता जा सकता है। अज्ञान के आगे अज्ञान को एवं अन्धकार के आगे अन्धकार को खड़ा करके हम उसे समाप्त नहीं कर सकते वरन् वह और गहरा जायेगा। सारा वातावरण प्रेम एवं करूणा की भावना से ओतप्रोत हो गया। "कनेरा ग्राम में 19 मई 1960 को बन्दूकें नीचे रखकर डाकुओं ने आत्मसमर्पण कर दिया[7]।" जिस प्रकार विनोबा जी ने उसकी आत्मा को स्पर्श किया उससे यह सिद्ध हुआ कि अहिंसा में मनुष्य को ऊपर उठाने की अलौकिक क्षमता है। हृदय परिर्वतन का यह अलौकिक उदाहरण है।

केरल यात्रा के समय ईसाइयों ने कहा कि "यह शख्स ईसामसीह का काम करता है इसलिये सारे ईसाई भाइयों को चाहिये कि वे पूरा सहयोग दें। उत्तर प्रदेश की यात्रा में सारनाथ के बौद्ध भिक्षुओं ने कहा कि बाबा धर्मचक्र प्रर्वतन का कार्य कर रहे है। मालाबार पहुंचने पर वहां के मुसलमानों ने कहा "आप जो कुछ कहते है वही हमारी कुरान में है। तमिलनाडु के सर्वश्रेष्ठ पुरूष तिरूवल्लवर का जिक्र करते हुये कहा कि इस भाई ने जों किताबे लिखी विनोबा उसी का प्रचार करते है[8]।" इस प्रकार विनोबा जी ने अपनी यात्राओं से विभिन्न धर्मो के बीच समन्वय की नवीन दृष्टि विकसित की कि विभिन्न धर्मो के अपने पृथक विचार एवं दृष्टि है, पर सभी धर्मो की समन्वय दृष्टि में मानवता की सेवा ही सर्वोच्च लक्ष्य है।

---

6. श्रीमन नारायण 'ऋषि विनोबा', पृष्ठ - 296-297
7. विनोबा साहित्य, खण्ड - 19, पृष्ठ - 304
8. विनोबा साहित्य, खण्ड - 19, पृष्ठ 303-304

केरल में अपनी पदयात्रा के दौरान ही उन्होनें 'शान्तिसेना' का विचार दिया। विनोबा जी के अनुसार अहिंसक समाज व्यवस्था में पुलिस और सेना का कोई स्थान नहीं होगा वरन् उनकी जगह स्वयंसेवी शान्ति सैनिक होगे जो सामान्य समय में समाजसेवा एवं ग्रामदान का कार्य करेगें। और विशिष्ट मौकों पर लोगों की रक्षा हेतु अपने सिर समर्पित करने के लिये तैयार होगें(9)।"

कश्मीर यात्रा के समय वहाँ की महानसन्त लल्ला के बहुमूल्य विचारों को जानने का अवसर मिला। उन्होनें देखा कि छः सौ वर्ष बाद भी आज भी लोग उनके आदर्शो के प्रति नतमस्तक है। कितने राजा आये और गये पर सियासत के दॉवपेचों के बीच आज भी जनता उनके संदेश को आत्मसात किये हुये है। उन्होनें कहा कि "कश्मीर की समस्याएं राजनीति से कभी सुलझने वाली नहीं हैं। वे तो तब सुलझेगी जब आध्यात्मिक तरीकें से उन्हें सुलझाने की कोशिश होगी। आध्यात्मिकता का सार है परस्पर सद्भाव और सर्वसम्मति"(10)। उन्होनें कहा "राजनीति आदमियों को जोड़ने की बजाए तोड़ने का कार्य करती है। विज्ञान के युग में यह बहुत हानिकारक है। अगर आर्थिक दृष्टि से हम खुशहाली लाना चाहते है। तो विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय होना जरूरी है। विज्ञान में एक महान शक्ति है। उसमें आकार है गति और काम करने की शक्ति भी हैं परन्तु दिशा नहीं। केवल आध्यामिकता विज्ञान को दिशा दे सकती है(11)।" एक महत्वपूर्ण बात आज के सन्दर्भ में विनोबा जी ने कही थी "कश्मीर की समस्या का व्यवहारिक हल केवल भारतीय संविधान की मर्यादा में ही हो सकता ...... स्वतंत्र कश्मीर वाली बात अवास्तविक है(12)।"

कश्मीर यात्रा के समय उन्होनें 'जयजगत' का उद्घोष किया। उन्होनें कहा जयजगत के दो माने है प्रथम हम न खुद डरेगे और न किसी को डरायेगें। हम न किसी का शोषण करेगें और न किसी को अपना शोषण करने देगें, यही है सच्ची निर्भयता .... द्वितीय आज राष्ट्रों के बीच परस्पर अवश्विास है। भारत पाकिस्तान से डरता है और पाकिस्तान भारत से, अमेरिका और सोवियत रूस भी आपस में एक दूसरे से डरते है। इस कारण शस्त्र-सामग्री और अणु-अस्त्रों का खर्च दिन व दिन बढ़ता जाता है इसलिये 'जयजगत' का नारा युग की पुकार है(13)।"

---

9. विनोबा साहित्य, खण्ड - 16, पृष्ठ - 316-317
10. श्रीमन नारायण 'ऋषि विनोबा', पृष्ठ - 287
11. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 287 से 292 का सार
12. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 293
13. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 288

पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) की यात्रा के समय उन्होनें कहा कि हिन्दुस्तान व यहाँ की संस्कृति में कोई अन्तर नहीं है। दोनों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, एवं भौगोलिक परिस्थितियां एक है। बुनियादी समस्यायें एक है एवं उनके समाधान की प्रक्रिया भी एक है। वहा भी उन्होनें भूमि की मांग की। "एक दाता (मुसलमान) खड़ा हो गया। 'इफ्तिताह' हो गया – द्वार खुल गया इससे यह बात साबित हो गयी कि मानव का हृदय सब जगह समान है। पाकिस्तान में जमीन का प्रश्न प्रेम और अहिंसा से हल हो सकता है[14]।"

पंजाब यात्रा के दौरान गुरुद्वार के दर्शन के समय उन्होनें कहा यहाँ जो झगड़े हो रहे है, वह बेबुनियाद है राजनीति के अल्पमत और बहुमत के झगड़े जब धर्म में होने लगते है, तब यह मानवता के लिये हानिकारक हो जाता है। उन्होनें सिखनेताओं से कहा कि अपने संगठनों में चुनाव बन्द कर दें और सर्वसम्मति से काम करने की पद्धति शुरू कर दे एवं गुरुद्वारा की पवित्र सीमा में जब आप प्रवेश करे, तब राजनीति दलरूपी जूतों को बाहर ही रख दें[15]।" सिख धर्म का बुनियादी स्वरूप जिसमें कुल दुनिया एक कौम एक जमात का विचार है, जिसमें फिरके जातिभेद, मूर्तिपूजा का आग्रह नहीं, खंडन भी नहीं परमात्मा एक है – यही कहा है[16]।" जिस धर्म ने दुनिया को उदात्त आदर्श दिया उसी के अन्दर क्षुद्र राजनीति हावी हो रही है।

इस प्रकार विनोबा जी की समस्त यात्राओं के मध्य समाज के विभिन्न सामाजिक प्रश्नों पर गहरा चिंतन हुआ। इस चिंतन के परिणामस्वरूप अहिंसा की शक्ति का विस्तार हुआ। भूदान यज्ञ मूलक क्रान्ति का विचार सामने आया। विश्वसंघ और निः शस्त्र शान्तिसेना का विचार सामने आया। इन यात्राओं के पीछे प्रेम और करूणा की प्रेरणा थी। इसका उद्देश्य लोगों को जोड़ना था। इसी सन्दर्भ में नारायन देसाई ने लिखा है-

"भूदान यात्राओं ने जो कुछ कर दिखाया उसे स्वराज्य के बाद किसी और ने करके नहीं दिखाया। विनोबा जी ने .... देश के मूलभूत प्रश्नों की ओर लोगों का ध्यान खीचां। उन्होनें गाँव-गाँव को जागृत किया कि (क) प्रश्नों के हल हमारे हाथ में है (ख) स्वराज्य के बाद सारे काम सरकार पर छोड़कर हम अपनी जिम्मेदारियों से मुँह नही मोड़ सकते। सच्ची शक्ति लोकशक्ति है[17]।"

---

14. विनोबा साहित्य, खण्ड – 19, 'धर्मामृत चरितामृत', पृष्ठ – 313
15. श्रीमन नरायन, 'ऋषि विनोबा', पृष्ठ – 284
16. विनोबा साहित्य, खण्ड – 19, पृष्ठ – 303
17. नरायन देसाई (लेख), 'विनोबा की साधना', गाँधीमार्ग 1983

पं0 जवाहर लाल नेहरू ने कहा –

"विनोबा इस भारत भूमि के महान पुरूषों में से एक है। आज संसार में एक तरफ अणुबमों का भयंकर अम्बार खड़ा हो गया हैं। मानवता शस्त्रास्त्रों के इस बोझ के नीचे पिसी जा रही है और दूसरी तरफ यहाँ भारत में विनोबा गाँव गाँव घूमकर करोड़ों देशवासियों को शान्ति का सन्देश सुना रहे है। यह एक दूसरी और अनोखी तस्वीर है। दोनों तस्वीर हमारे सामने है। असल में ये दोनों हिंसा और अहिंसा इन दो शक्तियों के प्रतीक हैं मै आशा करता हूँ कि अहिंसा, शान्ति, सद्भाव और एकता की शक्तियां विनाशकारी शक्तियों पर विजयी होगी[18]।" इस प्रकार विनोबा जी ने सम्पूर्ण भारत वर्ष की यात्रा के दौरान नवीन धारणाओं का विकास किया साथ ही सर्वोदयी समाज के निर्माण के लिये प्रेम, अहिंसा एवं मैत्रीभाव को जन-जन के हृदय में प्रतिष्ठित किया।

विनोबा जी के रचनात्मक कार्यक्रम

विनोबा जी के रचनात्मक कार्यक्रमों के पीछे एक सम्पूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक सोच एवं दर्शन निहित है। उनके रचनात्मक कार्यक्रमों का मन्तव्य यही है कि वह समाजसेवा, सुधार एवं परिर्वतन के हरपक्ष को मजबूत कर बेहतर, उन्नतशील एवं विकासोन्मुख मानवीय समाज का सृजन करना चाहते है। समाज परिर्वतन की तीन प्रक्रियायें हो सकती है हिंसा, कानून, और करूणा पर आधारित अहिंसक प्रक्रिया[1]।

विनोबा जी न हिंसा को स्वीकारते हैं और न कानून पर आधारित दण्डशक्ति को बल्कि उनका मत है कि समाज में स्थाई परिर्वतन अहिंसा, प्रेम, एवं करूणा, से लाया जा सकता है। विनोबा जी ने अहिंसक सामाजिक परिर्वतन हेतु करूणा पर आधारित रचनात्मक कार्यो की साम्ययोगी प्रक्रिया से जनमानस के विचार और हृदय परिर्वतन का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। विनोबा जी ने भूदान[2] के द्वारा जहाँ भूमि समस्या के समाधान का अहिंसक मार्ग ढूढ़ा वही जनसमूह का हृदय परिर्वतन कर करूणा मूलक समाज का स्वरूप स्पष्ट किया। उनके शब्दों में "जहाँ मैं दान लेता हूँ वहाँ हृदय मंथन की, हृदय

---

18. श्रीमननारायन 'ऋषिविनोबा', पृष्ठ – 279

1. डा0 दशरथसिंह 'गाँधीवाद को विनोबा की देन', पृष्ठ – 450

2. भूदान-ग्रामदान का विस्तृत वर्णन आगे के अध्याय में है

परिर्वतन की, चित्तशुद्धि की, मातृवात्सल्य की, भातृभावना की, मैत्री की और गरीबों के प्रति प्रेम की आशा करता हूँ ...... [3]।" इसलिये "भूदान यज्ञ में जिन्होनें दान दिया है उसके परिणामस्वरूप कइयों का जीवन बदला है। कई जमीदारों ने जीवनदान दिया है। घर में चरखा शुरू किया है, गरीबों की सेवा आरम्भ की है। ऐसी लाखों मिसाले नहीं मिलेगी हजारों भी नही, पर सैकड़ो मिलेगी दीपक से दीपक जलता है उसकी संगति से दूसरे तैयार होगे और इस तरह हृदय परिर्वतन की प्रक्रिया चलेगी[4]।"

इसी प्रकार विनोबा जी ने अन्य रचनात्मक कार्यक्रमों हरिजन सेवा, कुष्ठरोगियों की सेवा, कांचन मुक्ति प्रयोग – ऋषिखेती, सर्वोदयपात्र एवं आश्रम निर्माण कार्य आदि से व्यक्ति और समाज की आन्तरिक शुद्धि कर अहिंसक समाज रचना का कार्य प्रारम्भ किया। शंकरराव देव के अनुसार "मनुष्य के ह्दय में श्रद्धा पैदा करने का पाठ ही रचनात्मक कार्यक्रम है ...... रचनात्मक कार्यक्रम सर्वहित बुद्धि से स्वेच्छापूर्वक किया हुआ काम है उसके पीछे न कोई प्रलोभन की प्रेरणा है न भय की। केवल सर्वहित बुद्धि की यानि धर्मबुद्धि की प्रेरणा है। और स्वेच्छा पूर्वक सर्वहित के लिये किये जाने वाला काम ही नैतिक काम है। रचनात्मक कार्यशुद्ध नैतिक कार्य है। इसलिये मनुष्य में नैतिकता का निर्माण होता है[5]।" डा० विश्वनाथ टंडन के अनुसार "रचनात्मक कार्यक्रम निजी और सार्वजनिक जीवन की कमियों को सुधारकर व्यक्ति और समाज के पुनर्निमाण का ठोस आधार प्रस्तुत करते है[6]।" निः सन्देह विनोबा जी द्वारा क्रियान्वित विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रम उपरोक्त कसौटी पर खरें उतरते है। नैतिक मूल्यों के विकास के साथ समृद्धि का मार्ग भी सुनिश्चित करते है।

विनोबा जी के विशिष्ट रचनात्मक कार्यक्रम

(क) *हरिजन सेवा* -

सन् 1932 में धुलिया जेल से छूटने के बाद हरिजन बाहुल्य ग्राम नालबाड़ी से उन्होनें हरिजन सेवा शुरू की। अस्पृश्यता निवारण के लिये उन्होनें कई रचनात्मक पहलु सामने रखे।[7]

---

3. विनोबा साहित्य, खण्ड - 15, आरोहण, पृष्ठ - 48
4. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 539
5. शंकरराव देव, 'लोकराज्य', पृष्ठ - 4
6. विश्वनाथ टंडन, सर्वोदय आफ्टर गाँधी, पृष्ठ - 163
7. विनोबा साहित्य खण्ड - 18, 'साम्योगी समाज', पृष्ठ - 438

1. नालबाडी में चर्मालय उद्योग चलाने हेतु उन्होनें दो ब्राहम्ण के लड़कों को चमड़ा काटने का प्रशिक्षण दिलवाया।

2. हरिजनों के कार्यो को प्रतिष्ठा देने के लिये सर्वोदयी कार्यकत्ताओं को हरिजनों के साथ मिलकर काम करने के लिये प्रेरित किया।

3. सर्वोदय की मूलभावना अन्त्योदय के अनुसार उन्होनें तीन कार्य किये -

   (क) भंगीकाम

   (ख) चमड़े का काम

   (ग) बुनाई का काम

4. भूदान आन्दोलन का आरम्भ ही हरिजनोद्धार से हुआ। इससे यह नियम बनाया गया कि भूदान से प्राप्त जमीन का कम से कम तीसरा हिस्सा हरिजनों को दिया जाये।

हरिजन सेवा से ही जुड़ा उनका भंगी मुक्ति कार्यक्रम है। उन्होनें कहा "यह अमानवीय प्रथा है कि एक इन्सान दूसरे को अछूत माने"। इस अमंगलकारी प्रवृत्ति को रोकने के लिये अपने भाई बालकोवा के साथ साबरमती आश्रम में मलमूत्र साफ किया। 1946 में जेल से छूटने के बाद पवनार से तीन किलोमीटर दूर सुरगाँव में उन्होनें भंगी कार्य शुरू किया। देखते-देखते अन्य लोग इस कार्य में हिस्सा लेने लगे। चित्त की अहंता और सामाजिक मलिनता को दूर करने की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण कार्यक्रम था।

(ब) *कुष्ठ सेवा* -

विनोबा जी 1936 में अपने मित्र मनोहर जी के पास दत्तपुर के कुष्ठधाम गये और वहाँ उन्होनें कुष्ठरोगियों की सेवा शुरू की। इसके साथ उन्होनें बुबाई का कार्य किया। 1938 में "पवनार में जमीन की खुदाई 1400-1500 साल पुरानी मूर्तिया मिली, जिसमें किसी की नाक टूट गयी थी, किसी का हाथ टूट गया था। विनोबा जी ने इस खण्डित मूर्तियों की तुलना कुष्ठ महारोगियों से की।"[8]

उनके अनुसार इनकी सेवा करते हुये हमारे मन में यही भावना होनी चाहिये कि ये रोगी साक्षात ईश्वर की प्रतिमाये है। कुष्ठ रोगियों के आध्यात्मिक उद्धार के लिये प्राचीन, धर्म साहित्य वेद, उपनिषद संतसाहित्य एवं गीता आदि का अध्ययन कराया जाये ताकि इनका आध्यात्मिक विकास हो और वह आत्मसाक्षात्कार में समर्थ हो सके, "रोग हमारे देह को हुआ है, हमारी आत्मा का उससे कोई

---

8. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 454

सम्बन्ध नहीं है[9]।" आज समाज में इस रोग को घृणा से देखा जाता है इसलिये रोगियों में रोग छिपाने की प्रवृति दिखायी पड़ती है। विनोबा जी के अनुसार उनके प्रति सहानुभूति पूर्ण व्यवहार एवं निष्काम सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है।

ऋषि खेती -

विनोबा जी का मानना है कि पैसे को अत्यधिक महत्व देने के कारण समाज रचना में विकृति आयी है। विषमता, लोभ, मोह, स्पर्द्धा, एवं शोषण ने विसंगतियों को जन्म दिया है। उन्होनें कहा "जिस तरह आध्यात्मिक साधना के लिये हमारे यहाँ कांचन निषेध किया गया है उसी तरह आज व्यवहारिक जीवन को सहयोग मूलक बनाने के लिये वित्त का उच्छेदन आवश्यक है।"[10]

इसी सन्दर्भ में 1949 में पवनार में ऋषि खेती आरम्भ की। इस में बिना पैसो की मदद के लोगों के स्वैच्छिक श्रमदान से खेती की पूरी प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है। लोगों की मदद से बिना बैलों के कुँये से पानी निकाला जाता भूमि सींचीं जाती फिर उसमें सब्जियाँ उगाई जाती। सहयोगात्मक समाज की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण कार्यक्रम था इसकी उपयोगिता साधन हीन किसानों के समक्ष नयी दृष्टि प्रस्तुत कर सकती है।

आश्रम निर्माण -

विनोबा जी भारतीय संस्कृति में निहित 'आश्रम संकल्पना' की महान देन मानते है। विनोबा जी के मत में प्राचीन समय में आश्रम प्रयोग प्रधान होते थें। यहाँ समाज में गुण संवर्धन आन्तरिक शोधन एवं व्यक्तियों की मनोवृत्तियों में संशोधन हेतु निरन्तर प्रयोग होते रहते थे ताकि आध्यात्मिक साधना का विनियोग व्यवहारिक जीवन में हो सके। आधुनिक समय में महात्मा गांधी को आश्रम संकल्पना को पुर्नजीवित करने का श्रेय है। उनके द्वारा स्थापित फीनिक्स, साबरमती, एवं सेवाग्राम आश्रमों में आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ समाजसेवा, राजनीति एवं रचनात्मक कार्यक्रमों के विषय में व्यापक चिन्तनमनन होता था।

गांधी जी के मरणोपरान्त विनोबा जी ने उनकी आश्रम संकल्पना को अधिक संघटित एवं वैज्ञानिक ढंग से पुर्नस्थापित किया। विनोबा जी ने आश्रमों को जीवन की प्रयोगशाला कहा। उनके

---

9. पूर्वोक्त

10. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 152

अनुसार "जिस तरह वैज्ञानिक प्रयोगशाला के नियत माहौल में प्रयोग करता है, फिर उसके परिणाम समाज को देता है समाज उनका विनियोग करता है वैसे ही आश्रमों में वृत्तियों के शोधन के प्रयोग होगे, और उनका लाभ समाज को प्राप्त होगा(11)।" साथ ही "अहिंसक शक्तिशाली, आत्मविश्वासी, निर्भर और निर्वैर(12) कर्मयोगी समाज हेतु यहाँ से स्वतः प्रकट होगी इसी मूल उद्देश्य के साथ विनोबा जी ने भूदान आन्दोलन के दौरान छः महत्वपूर्ण आश्रमों की स्थापना कीं।

1. *समन्वय आश्रम (1954) बोध गया*

विनोबा जी चाहते थे कि समन्वयात्मक भारतीय संस्कृति के अनुकूल इस आश्रम में सभी धर्मो के आदर्शो का समन्वित अध्ययन हो फिर समाज के निर्माण में उनका समायोजन हो।

2. *ब्रह्म विद्या मन्दिर, पवनार - (1959) -*

भारत की आध्यात्मिक परम्परा में स्त्रियों को पुरूषों के समान सामूहिक साधना, ध्यान, स्वाध याय, और भक्ति का अधिकार प्रदान करने के लिये इस आश्रम की स्थापना की गयी। इससे स्त्री शक्ति जागृत होकर सामाजिक जीवन को नेतृत्व प्रदान करने में सक्षम होगीं।

3. *प्रस्थान आश्रम (पठानकोठ 20 मई 1959) -*

कश्मीर की यात्रा समाप्त करने के बाद जब विनोबा जी पंजाब गये तब उन्होनें पंजाब, कश्मीर और पाकिस्तान इन तीन संस्कृतियों के संगम स्थल पठानकोठ में प्रस्थान आश्रम की स्थापना की। इसका मूल उद्देश्य यही था कि इससे हिन्दू, मुस्लिम, एवं सिख धर्मो के मध्य सम्पर्क बढ़ेगा। इनमें सांमजस्य एवं प्रेम बढ़ेगा।

4. *विर्सजन आश्रम (इन्दौर 15 अगस्त 1960) -*

सर्वोदय आन्दोलन के प्रयास अब तक ग्रामीण क्षेत्रों में ही हुये थें, शहरी क्षेत्र में इसको प्रतिष्ठित करने के लिये उन्होनें अहिल्या बाई नगरी इन्दौर को चुना। इस आश्रम के मूल उद्देश्य को व्यक्त करते हुये विनोबा जी ने कहा -

"इस आश्रम का ध्येय पुराने काल बाह्य मूल्यों का विर्सजन, नवयुगानुसार प्राणवान उपर्युक्त मूल्यों का विशेष सृजन करना।"(13)

---

11. विनोबा साहित्य, खण्ड - 19
12. विनोबा साहित्य, खण्ड - 14 'अध्यात्म और आश्रम', पृष्ठ - 181
13. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 233

5. *मैत्री आश्रम (लीलाबारी असम)* -

भारत के सीमान्त प्रदेश असम जिसका भारत से सीधा सम्पर्क नही होता, अतः इस प्रदेश में सर्वोदय का आधार दृढ़ हो, एवं मैत्री की साधना हो सके, विनोबा जी ने यहाँ मैत्री आश्रम की स्थापना की।

6. *बल्लभ निकेतन (बंगलौर 8 सितम्बर 1965)*-

महान संत बल्लभ स्वामी के स्मरण में इस आश्रम की स्थापना कीं। ताकि इस आश्रम से उनके द्वारा स्थापित आदर्श एवं मूल्यों का पूरे समाज में प्रसार हो सके।

इस प्रकार विनोबा जी ने "सर्वोदय विचार के प्रचार एवं अहिंसक समाज रचना की दृष्टि से सेवा, साधना, स्वाध्याय, संशोधन, प्रशिक्षण आदि के लिये भारत के कुछ सांस्कृतिक स्थानों पर विशिष्ठ कल्पनाओं के छह आश्रम स्थापित किये ताकि ये आश्रम समाजाभिमुख रहते हुये एकादश व्रतों[14] का पालन वृत्ति, शोधन, श्रम, स्वावलम्बन, साधतें हुये विशिष्ट कल्पनाओं को साकार करें।"[15]

सर्वोदय पात्र -

सर्वोदय पात्र विनोबा जी का महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम है। विनोबा जी ने देश दुनिया के झगड़े व युद्ध मिटाने हेतु शान्ति सेना का विचार दिया था। साथ ही उनका विचार था कि ग्रामस्वराज्य स्थापित होने के बाद गाँव की आन्तरिक सुरक्षा का कार्य पुलिस के स्थान पर यहां शान्ति सैनिक करेगें। शान्तिसेना जिस क्षेत्र में कार्य करे वहाँ हर घर में 'सर्वोदय पात्र' रखा जाये। 'सर्वोदय पात्र' में उस घर का छोटा बच्चा एक मुट्ठी अनाज डालेगा।"[16]

इससे जहाँ एक ओर सर्वोदय विचार को लोकसम्मति मिलेगी। वही बच्चों को बचपन से अच्छी शिक्षा प्राप्त होगी। इस प्रकार सर्वोदयपात्र शांति सेना को आध्यात्मिक और वैषयिक-दोनों आधार प्रदान करता है। इसके द्वारा प्रत्येक घर से उसे सम्मति मिल जाती है साथ ही दान की रकम से खर्च

---

14. विनोबाजी द्वारा स्थापित एकादश व्रत - "सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अपरिग्रह, शरीरश्रम, स्वदेशी, सर्वधर्म समभाव, स्पर्श भावना, सर्वत्र भयवर्जनम, अनिन्दाव्रत । विनोवा साहित्य खण्ड - 14, 'अध्यात्म और आश्रम' ।
15. कृष्ण राजमेहता (लेख) 'ब्रह्म विद्याउपासक विनोबा' सर्वोदय जगत (पत्रिका) (सितम्बर 1994) पृष्ठ - 2
16. विनोबा साहित्य, खण्ड - 17, 'शिक्षा, स्त्री शक्ति, पृष्ठ - 270

का निर्वाह भी होता है।

इस प्रकार विनोबा जी ने अपने विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों से जनता की संघर्षशीलता व उत्सर्ग क्षमता का उन्नयन किया। नीतिपरता, सत्य, अहिंसा, प्रेम एवं करूणा की बुनियाद पर आधारित विभिन्न कार्यक्रमों ने व्यक्ति को संकीर्णता, घृणा, स्वार्थ एवं प्रतिद्वन्दिता से ऊपर उठकर अहिंसक समाज रचना के निर्माण में सहभागी बनाया। ये समस्त कार्यक्रम मानव के हृदय के सूक्ष्म परिर्वतन के प्रेरक बने एवं इनसे समाज की समृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। अतएव उन्होनें इन समस्त कार्यक्रमों से एक साथ भौतिक एवं नैतिक उत्थान का कार्य सम्पन्न करने का भागीरथ प्रयास किया।

द्वितीय अध्याय

राजनीतिक विचारों की पृष्ठभूमि

(क) आध्यात्मिक मान्यतायें
(ख) सामाजिक चिन्तन
(ग) आर्थिक चिन्तन

(क) आध्यात्मिक मान्यतायें [1]

विनोबा जी आध्यात्मिक संत थे। धर्मनिष्ठ हिन्दु परिवार में जन्में विनोबा जी ने इस धर्म के उदारतत्वों – सहिष्णुता, दया, क्षमा, करूणा, एवं संयम को बचपन से ही आत्मसात कर लिया था। जीवनपर्यन्त ब्रहमचर्य व्रत का पालन कर इन्होनें कठोर अध्यात्मिक साधना की। उनकी तत्वमीमांसा का मूल स्रोत, वेद, उपनिषद पुराण एवं गीता है। साथ ही उन पर गांधी, संत ज्ञानेश्वर और शंकर के अद्वैतवाद का विशेष प्रभाव रहा। वेद, वेदान्त एवं गीता के तत्वदर्शन से विनोबा जी सर्वाधिक प्रभावित थे जैसा कि उन्होनें स्वरचित श्लोक में कहा है कि –

"वेद, वेदान्तम् गीतानाम विनुना सार उद्धत :।

ब्रहम सत्यम, जगत स्फूर्ति, जीवनम सत्यशोधनम।

अर्थात विनय में (विनोबा जी का लघु नाम) वेद, वेदान्त एवं गीता का सार ग्रहण किया है कि ब्रहम सत्य, जगत उसकी स्वयं स्फूर्त अभिव्यक्ति है – जीवन का उद्देश्य उस सत्य का शोधन है"[2]

विनोबा जी ने गीता का सरल भाष्य 'साम्यसूत्र' में प्रस्तुत किया है। उन्होने गीता को साम्ययोग कहा। उनके शब्दों में "साम्ययोग मानव में भेद नहीं करता, बल्कि मानव आत्मा और प्राणीमात्रकी आत्मा में भी बुनियादी भेद नहीं करता [3]।" यह आत्मा की एकता पर आधारित है। गीता में निहित से इस सम्पूर्ण विचार को विनियोग उन्होने समाज में स्त्री, पुरूष, अमीर – गरीब एवं मालिक- मजदूर के बीच विद्यमान असमानता के निराकरण हेतु किया। इसी प्रकार उन्होने गीता में वर्णित कर्म, विकर्म और अकर्म की सम्यक व्याख्या की।

---

1. विनोबा जी ने अध्यात्म को ब्रह्मविद्याशास्त्र, तत्वदर्शन, आत्मज्ञान इन सभी का पर्याय माना है – इसका सन्दर्भ विनोबा भावे – स्थिति प्रज्ञदर्शन – पृष्ठ – 18 एवं विनोबा – 'तीसरी शक्ति' पृष्ठ – 77 में उपलब्ध है।
2. विनोबा साहित्य खण्ड – 1 वेद चिन्तन – पृष्ठ – 101
3. विनोबा साहित्य खण्ड – 18 पृष्ठ – 5

उनके अनुसार "कर्म का अर्थ है स्वधर्माचरण की बाहरी स्थूल प्रक्रिया [4]।" गीता हमें निष्काम कर्म की शिक्षा प्रदान करती है, जब मनुष्य की कर्म करते हुये फल से दृष्टि हट जाती है, तब स्वधर्मरूप कर्म का अविभवि होता है। विकर्म अर्थात "कर्म की स्थूल बाहरी प्रक्रिया में चित्त को लगाना .... निष्काम कर्मयोग तभी सिद्ध होता है, जब हमारे बाह्रय कर्म के साथ अन्दर से चित्तशुद्धि रूपी कर्म का संयोग होता है [5]।" उन्होनें कहा इसी कर्म और विकर्म के संयोग से अकर्म का निर्माण होता है। जब कर्म करते हुये कर्म का बोझ बुद्धि और ह्रदय पर पड़ता। कर्म करके भी अकर्ता रहते है। कर्म का कर्मत्व उड़ जाता है। मन की यह निर्विकार स्थिति ही अकर्म है [6]।" विनोबा जी ने गीता - प्रवचन, गीताई चिंतनिका एवं स्थितयज्ञ दर्शन में सम्पूर्ण गीता तत्व दर्शन को शास्त्रकार के रूप में विश्लेषित किया है। इस रूप में इस देश की आध्यात्मिक परम्परा में उनके विचार सूत्ररूप में प्रतिष्ठित हो गये है।

विनोबा जी एकीकृत मानवता के समर्थक थे। एकीकृत मानवता की खोज के लिये उन्होनें हिन्दु धर्मशास्त्रों के साथ-साथ कुरान, गुरूबोध (शंकराचार्य), धम्मपद, जपुजी एवं बाइबिल आदि का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी धर्मो में मानवता को एक करने का लक्ष्य है। उनके शब्दोंमें "गीता का उपदेश है कि हर एक को अपने-अपने धर्म पर चलना चाहिये .... कुरान कहता है, हर एक कौम के लिये भगवान ने रसूल भेजें है, जितने रसूल भेजे है सबकी जमात एक है। .... ईसा अपने शिष्यों से कहते है कि तुम यह न समझो कि तुम ही मेरे शिष्य हो और तुम्हारे ही मकान मे में रहता हूँ दूसरे भी मेरे मकान में पड़े है [7]।" विनोबा जी ने कहा ईश्वर सत्य, प्रेम एवं दया का प्रतीक है। "ईसाइयों ने ईश्वर को प्रेममय (गाड इज लव) कहा है। इस्लाम ने परमेश्वर को दयामय बताते हुये 'रहीम रहमान' कहा है। उपनिषदों ने परमेश्वर को सत्य स्वरूप कहा है "सत्यम ब्रहम" [8] अतः सभी धर्म सार रूप से एक है।

---

4. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 गीतामृतम - (1) पृष्ठ - 35
5. पूर्वोक्त
6. पूर्वोक्त पृष्ठ - 38
7. विनोबा साहित्य खण्ड - 5 वेदचिंतन - पृष्ठ - 291-292
8. पूर्वोक्त पृष्ठ - 289

विनोबा जी के आध्यात्मिक चिंतन में सबसे महत्वपूर्ण बात (अध्यात्म और विज्ञान) के समन्वय की कल्पना हैं। विनोबा जी ने विज्ञान युग में विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय पर बल दिया। उन्होनें कहा "आगे की दुनिया में विज्ञान और आत्मज्ञान ही रहेगा सियासत और मजहब खत्म होगें। क्योंकि राजनीति आदमी को जोड़ने की बजाय तोड़ने का कार्य करती है" और नाना प्रकार की उपासनायें, आउट ऑफ डेट (काल ब्राह्य) हो गयी है, जो हृदय को संकुचित बनाती है। और एक मानव को दूसरे मानव से तोड़ती है।" इस सन्दर्भ में उन्होनें दो समीकरण प्रस्तुत किये [9]।

राजनीति + विज्ञान = सर्वनाश

आध्यात्मिकता + विज्ञान = सर्वोदय।

उन्होनें कहा "मनुष्य रूपी पंक्षी के दो पंख है, एक आत्मज्ञान और दूसरा विज्ञान इन दोनों का ठीक ढंग से समत्व (संतुलन) रखकर ही मानव का विकास होगा [10]।" विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय के सन्दर्भ में उन्होनें महत्वपूर्ण तर्क प्रस्तुत किये है –

1. आत्मज्ञान और विज्ञान दोनों पूरक है। आत्मज्ञान जीवन की दिशा निर्धारित करता है। तो विज्ञान जीवन के लिये कार्यो को सम्पन्न करता है। यदि एक आँख है तो दूसरा पैर [11]।" आइस्टीन ने भी कहा था, "Science is lame without religion and religion is blind with out Science" [12]

2. विनोबा जी के अनुसार विज्ञान को आत्मज्ञान (अध्यात्म) का मार्गदर्शन जरूरी है क्योंकि "विज्ञान नीति निरपेक्ष होता है। ऐसी शक्ति को जैसा मार्गदर्शन मिलेगा तदनुसार उसका उपयोग दुनिया में होगा। गलत मार्गदर्शन मिलता है तो वह नरक का मार्ग बन जाता है। सही मार्गदर्शन मिलता है तो वह स्वर्ग मे ले जाता है .... क्योंकि विज्ञान में दोहरी शक्ति है – विनाश शक्ति और सेवा शक्ति .... विज्ञान और तकनीकी का व्यवहार में कहाँ तक उपयोग हो ....

---

9. श्री मन्नारायण 'ऋषि विनोबा' पृष्ठ – 292
10. विनोबा (लेख) 'वैज्ञानिकों से' मैत्री (पत्रिका) अगस्त 1991 पृष्ठ – 315
11. विनोबा भावे – आत्मज्ञान और विज्ञान पृष्ठ – 93
12. B, Russel, The Science to save us from Science, 1950 quoted by D.S. Kothari in address on 'Science and Ahinsa' Ahamedabad, Gujrat Vidyapeeth (विद्यापीठ) 6.4.1983 P-6

इसका निर्णय आध्यात्म देगा [13]।" विज्ञान और आध्यात्म के समन्वय में मानवता की समस्त समस्याओं का हल अहिंसा से होगा। बरट्रेन्ड रसल ने भी कहा है। "Science by it self can not supply us with out ethic" [14]

3. विनोबा जी के अनुसार अध्यात्मिकता धर्म से भिन्न है। "धर्म या मजहब के रूप देश और काल के अनुसार अलग-अलग हो सकते है। परन्तु अध्यात्मिकता सत्य, प्रेम और करूणा के समान सार्वत्रिक और शाश्वत है .... भगवान का डर और दीन दुखियों की सेवा ही अध्यात्मिकता का मुख्य रूप है[15]।" विज्ञान की सृष्टि का अध्ययन मन की भूमिका से ऊपर उठकर करता है"[16] अतः इसमें रागद्वेष, रूचि - अभिरूचि का प्रश्न नही उठता। इसके अर्न्तगत बाह्य सृष्टि और मन दोनो का ज्ञान आ जाता है अतः इसमें सार्वभौमिकता होती है।

विज्ञान और अध्यात्मिकता, धर्म को सही दिशा दे सकते है विज्ञान धर्म को मानसिक धरातल और कल्पना से परे हटाकर ज्ञान का ठोस आधार दे सकता है और आध्यात्मिकता धर्म को सभी धर्मो एवं प्राणीमात्र की एकता का ज्ञान देकर सच्चे मानव धर्म के रूप में प्रतिष्ठित कर सकती है। विनोबा जी का समस्त अध्यात्मिक चिंतन अविरोधी समन्वय पद्धति एवं शास्त्रीय व वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित है। और इसी के आधार पर ईश्वर, आत्मा, मोक्ष, पुनर्जन्म, इत्यादि। तात्विक धारणाओं का विकास किया जाता है। जिसका सम्यक परीक्षण क्रमवद्ध रूप से करना अनिवार्य है।

(क) ईश्वर

विनोबा जी ने ईश्वर का अर्थ निरूपण करते हुये कहा - "जहाँ पर कारण - कार्य परम्परा का अंत हो जाता है, जिससे परे किसी बात की कल्पना नहीं की जा सकती जो जड़ - चेतन शून्य हो, फिर भी जिसमें सभी आ जाये वहीं परम कारण या केवल सत् परमेश्वर है।"[1] उनके अनुसार ईश्वर

---

13. विनोबा - वैज्ञानिकों से - पृष्ठ - 316 - 317
14. quated by D.S. Kothari, Ibid, P - 5
15. श्री मन्नारायण - 'ऋषि विनोबा'
16. विनोबा भावे 'तीसरी शक्ति' पृष्ठ - 78
1. विनोबा भावे - गीताई चिंतनिका - पृष्ठ - 90

शाश्वत आत्मा है। वह सम्पूर्ण सृष्टि और प्रत्येक प्राणी में विराजमान है। "वह जीवित और अजीवित अपनी आत्मा एवं दूसरो के आत्मा में सर्वत्र व्याप्त है[2]।" उनके अनुसार "माँ के रूप मे परमेश्वर की पहली मूर्ति हमारे पास है .... श्रुति कहती है मातृदेवो भव .... वह वत्सलता के रूप में खड़ी है .... उस माता की व्याप्ति बढ़ा लें और बन्देमातरम् कहकर राष्ट्रमाता की फिर अखिल भू - माता पृथ्वी की पूजा करे। माता तो निमित्तमात्र है, परमेश्वर उसमें अपनी वत्सलता डालकर उसे नचाता है।"[3] पिता, गुरू, संत एवं बालक इन सबमें ईश्वर का अधिवास है"[4]

मानव की सौम्यतम एवं पावन मूर्तियों में स्थित होने के साथ-साथ ईश्वर सृष्टि के प्रत्येक मनोहारी रूप सूर्य, पवन, ऊषा, नदियों एवं विशाल सागर में स्थित है। वैदिक ऋषि 'उषा' से कहते है "तू जो परमेश्वर की संदेशवाहिका है तुझे देखकर परमेश्वर की पहचान मुझे न हो, उसके स्वरूप का ज्ञान न हो, तो फिर मुझे परमेश्वर का स्वरूप कौन समझा सकेगा।" [5] उन्होनें कहा "गंगा के रूप में परमेश्वर की करूणा जगत में प्रवाहमान है [6]। पवन भगवान के दूत के रूप में हमारे हृदय को छूती है हमे जागृत करती है, हमारे कानों में गुनगुनाती है। [7] विनोबा जी के अनुसार ईश्वर और मानवीय मूल्यों में कोई विशेष भेद नहीं है। "ईश्वर तो शुभगुणों की मूर्ति है। यह गुणों के रूप में प्रकट होता है। पर गुणों के चारों और दोषों को आवरण जमा ही रहता है। जब गुण ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त करेगें तभी ईश्वर का दर्शन होगा।" [8] "गुण स्वरूप होने के कारण वह भिन्न व्यक्तियों में सदगुणों के रूप में आवश्यकतानुसार प्रकट होता है। [9] उनके मत में मनुष्य के हृदय में जो पवित्र भावनायें है उसका मूर्तरूप ईश्वर है। जैसे "विद्या प्राप्ति में लगे मनुष्य के भगवान का रूप सरस्वती है, दुर्बल, मनुष्य के लिये ईश्वर शक्ति मय

---

2. बसन्त नरगोलकर 'दि क्रीड आफसेन्ट विनोबा' पृष्ठ - 55
3. विनोबा भावे - गीता प्रवचन अध्याय - 10 पृष्ठ - 105 - 106
4. पूर्वोक्त
5. पूर्वोक्त - 107
6. पूर्वोक्त
7. पूर्वोक्त
8. विनोबा चिंतन अंक - 20 - 21 पृष्ठ - 402
9. बसन्त नरगोलकर 'दि क्रीड आफ विनोबा' पृष्ठ - 66

हो जाता हैं फिर इन गुणों को अलग-अलग रूप दे दिये जाते है और परमेश्वर के रूप बनते है। (10) इसी गुणधर्म के अनुसार हमारे यहाँ "अनंता विश्वे देवा को मान्यता दी गयीं। जैसे - सूर्य देवता - प्रेरणा, आपोदेवता - श्रद्धा, गृह देवता - स्थिरता वन देवता - स्वतंत्रता" (11) हिन्दू धर्म में स्थित अवतार मीमासा भी परमेश्वर के गुण धर्म के विकास पर आधारित है। **उनके शब्दों में -**

"अवतार शरीर का नहीं, वरन मानव आत्मा का होता है। जहाँ सत्यनिष्ठा प्रकट हुई वह राम के रूप में अवतरित हुई। जहाँ निष्काम कर्म प्रकट हुआ वह कृष्ण बन गया। जहाँ करूणा मूर्तिवान हुई बुद्ध के स्वरूप में ढ़ली, मानवता प्रकट हुई अवतार हो गया।" (12)

विनोबा जी के अनुसार मूर्तिपूजा ईश्वर के प्रति भक्त की प्रबल भावना का प्रतीक है। इस भावना को वह कृति द्वारा प्रकट करने लगता हैं उनके शब्दों में "जैसे पात्र में रस परिपूर्ण भर जाने पर वह बाहर बहने लगता है वैसे ही भक्ति भावना अंदर परिपूर्ण भरकर बाहर बहने लगती है यही मूर्तिपूजा है"(13) यह मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं का प्रकटीकरण है। साथ इस आक्षेप का कि "जब ईश्वर प्रत्येक प्राणी में समाहित है, तो उस प्राणी की अपेक्षा करके पत्थर की उपासना करना यह धर्म नहीं है।" (14) विनोबा जी सारपूर्ण उत्तर प्रस्तुत करते है "मानव सेवा व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है पर एक निर्विकार पत्थर को प्रतीक मानकर ईश्वर का आरोपण करके उसकी पूजा करके व्यक्ति ने अपने को अंहकार शून्य बनाने का प्रयास किया है। मूर्ति पूजा में मूर्ति प्रमुख नहीं है।" (15)

इस प्रकार विनोबा जी ने ईश्वर को पूर्ण, सर्वव्यापक एवं विभिन्न प्रकार के मूल्यों एवं शक्तियों का प्रतीक माना हैं। डा० दशरथ सिंह के अनुसार "विनोबा जी ने ईश्वर को मूल्यात्मक रूप में देखने कारण आस्तिक एवं नास्तिक दोनों प्रकार विरोधी दर्शनों में समन्वय किया है। नास्तिक दर्शन आत्म-प्रयत्नवाद में ही समाप्त होता है। इसमें ईश्वरीय कृपा का कोई स्थान नहीं है। आस्तिक - दर्शन

---

10. विनोबा साहित्य खण्ड - 19 धर्माकृत चरितामृत पृष्ठ - 91 - 92
11. विनोबा वेदचिंतन - पृष्ठ - 141
12. पूर्वोक्त
13. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 50 - 51
14. पूर्वोक्त
15. पूर्वोक्त

(बेंदात) मोक्ष की प्राप्ति के लिये ईश्वर - विश्वास एवं उसकी कृपा को आवश्यक मानता है" (16) उनके अनुसार "विनोबा जी नास्तिक और आस्तिक दर्शन में कोई मौलिक भेद नहीं देखते। उनके अनुसार नास्तिक आत्मप्रयत्नवाद में विश्वास करने के कारण अपनी सीमित शक्ति पर ही भरोसा रखता है परन्तु आस्तिक इससे एक कदम बढ़कर असीम शक्ति में भी विश्वास रखता है। पहला निषेधात्मक भाषा का प्रयोग करता है दूसरा भावात्मक भाषा। लेकिन दोनों ही आत्म चेतना का विकास चाहते है।" (17)

(ख) आत्मा

विनोबा जी के अनुसार आत्मा शब्द की उत्पत्ति 'आत्' धातु से हुई है, जो मूलतः 'अस' और 'भू' के बीच का शब्द है।" (18) अस् का अर्थ है केवल होना। अर्थात यह निर्गुण तत्व का सूचक है। 'भू' का अर्थ है विविध भावयुक्त होना यह सगुण अवस्था है। अतः आत्मा की अभिव्यक्ति सगुण और निगुर्ण दोनों रूपों में होती है। आत्मा अगर अखण्ड एवं सर्वव्यापक है। (19) वह सर्वशक्तिमान एवं सभी प्राणियों में अन्तर्व्याप्त है। (20) शरीर में चेतना तथा प्राणशक्ति आत्मा की चैतन्य शक्ति का परिणाम है। उनके अनुसार आँखों से हम जो देखते है वह क्षुद्र शरीर है, इस बाह्रय मूर्ति के अन्दर चित्तशुद्ध रूपी सारभूत आत्मा विद्यमान है। जिस प्रकार "किसी फल के ऊपरी कवच - छिलका को निकालकर उसका भीतरी गूदा चखना पड़ता है।" (21) उसी प्रकार हमारा स्वधर्म है कि "मै केवल देहरूप हूँ" इस भ्रान्तिपूर्ण विचार को त्यागकर सर्वग्राही दृष्टि से अपने आत्मतत्व को पहचाने। सृष्टि में अनंत वस्तुयें और अनंत वृत्तियां दिखाई देती है, उनमें चैतन्य रूप आत्मा विद्यमान है।" (22) जैसे क्रोधी मनुष्य का क्रोध, प्रेमी मनुष्य का प्रेम दुःखी का क्रंदन आनंदी का हर्ष, आलसी की नींद की और झुकाव, उद्योगी का कर्मस्फुरण

16. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 133
17. पूर्वोक्त
18. विनोबा - आत्मज्ञान और विज्ञान पृष्ठ - 32
19. पूर्वोक्त - 32
20. विनोबा साहित्य - खण्ड - 3 गीतामृतम - 1 पृष्ठ - 15
21. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 पृष्ठ - 139
22. विनोबा 'गीता प्रवचन' पृष्ठ 86 - 87

ये सब एक ही चैतन्य शक्ति के खेल है।

विनोबा जी के अनुसार आत्मा नश्वर है एवं देह क्षणभंगुर परिर्वतनशील और संकीर्ण है। आत्मा और शरीर में मौलिक विभिन्नतायें हैं। (23)

1. यह देह तो पल - पल बदलती रहती है। बचपन, जवानी और बुढ़ापा - इस चक्र का अनुभव किसे नहीं है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार - हर सात वर्षो के बाद मनुष्य का शरीर पूर्ण रूप में बदल जाता है और पुराने खून की एक बूंद भी शेष नहीं रहती। जबकि आत्मा सनातन अविनाशी एवं व्यापकत्तम तत्व है। वह तो एक अखण्ड बहता हुआ झरना है। उस पर अनेक देह आते और जाते है।

2. देह साधन है परन्तु देहाशक्ति के कारण हम देह को साधन - रूप में काम में न लाकर उसी में डूब जाते है। और आत्मसंकोच कर लेते है। यह देह जो पहले से नगण्य है और भी क्षुद्र बन जाती है। आत्मा चैतन्य और शक्तिरूपी है, अतः अविनाशी होना स्वाभाविक हैं। चूँकि चैतन्य का कोई आकार नहीं होता अतएव आत्मा का प्रवाह व्यापकत्व की ओर होता है परन्तु यह अलग बात है हमारी आत्मा व्यापक होने के लिये छटपटाती रहती है वह चाहती है कि सारे जगत को गले लगा लें परन्तु हमने आत्मा को कैद कर रखा है।

उपरोक्त मूलभूत अन्तर वस्तुतः आत्मा के सगुण और निर्गुण रूपों के बीच ही है, क्योंकि "निर्गुण दृष्टि से विचार करने पर आत्मा अजर, अमर और स्वयभ्रू है परन्तु सगुण दृष्टि से यह प्रतिक्षण जन्म लेता है और मरण का विषय बनता है।" (24) परन्तु व्यक्ति अज्ञानतावश "मै केवल देहरूप ही हूँ" की कल्पना में रहता है। और इस देह से परे उसमें जो अविनाशी और निष्कलंक आत्मतत्व है, जिसके कारण उसे यह शरीर प्राप्त हुआ है सर्वथा उपेक्षा करता है अर्थात जो नश्वर है उसके लिये नाना आडम्बर रचता है और अंतरंग में छिपे अविनाशी फल (आत्मा) को चखने का प्रयास ही नहीं करता इस देहशक्ति के कारण वह सासांरिक विषय - वासनाओं में लिप्त रहता है। और स्वतः इससे उसका विकासमार्ग अवरुद्ध होता हैं। अतएव देह की क्षुद्रता और आत्मा की अमरता के ज्ञान हेतु आवश्यक है। कि व्यक्ति आध्यात्मिक साधना द्वारा मन की दुष्प्रवृत्तियां का विनाश करें। फिर जब "चित्त के सूक्ष्म मैल धो डालने

---

23. विनोबा साहित्य - खण्ड - 3 गीतामृतम - 1 पृष्ठ -17

24. विनोबा - गीताई चिंतनिका पृष्ठ - 20

के लिये, अपने प्रयत्नों को अपर्याप्त देखकर भक्त जब पुकारता है, तो वह अनाथ – नाथ सहायता के लिये दौड़ पड़ता है।" (25) इसके बाद तो उसका सारा जीवन परमेश्वर मय हो जाता है "केवल देह का पर्दा शेष रहता है जिसके हट्ते ही जीव और शिव आत्मा और परमात्मा एक हो जाते है" (26) एवं 'तत्वमसि' – 'वह आत्मरूप तू है' का पवित्र विचार ह्रदय में समा जाता है।

इस प्रकार विनोबा जी आत्मचिंतन गीता दर्शन पर अवलम्बित हैं। उसी आधार पर वह आत्मा को अमर, सर्वव्यापक एवं अखण्ड मानते है। साथ ही उन्होनें आत्मा को शक्यता मूर्ति मानकर उसकी परिणामी नित्यता को स्वीकार कर एक वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की, जो हमें प्रगति के पथ पर उत्प्रेरित करती है।" (27)

(ग) पुनर्जन्म विचार

विनोबा जी को पुनर्जन्म में आस्था है। उनका मानना है कि मृत्यु के बाद भी जीवन रहता है – "चाहे सूक्ष्म रूप में या स्थूल रूप मे, निराकार रूप में रहे या साकार रूप में देहकारी रूप में रहे या देहविहीन रूप में – ये छः भेद हो सकते है, लेकिन जीवन अखण्ड है।" (28) पुनर्जन्म के समर्थनों में वह कई तथ्य प्रस्तुत करते है।

(क) सृष्टि का स्वरूप अनादि एवं अनंत है। मानव इस सृष्टि में कब से है और कब तक रहेगा – यह किसी को मालूम नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि वह पहले भी सृष्टि में था और बाद में भी रहेगा। यदि यह कहा जाये कि मानव पहले से नहीं था और मरने के बाद भी नहीं रहेगा, तो कई समस्यायें खड़ी हो जायेगी। कई सवाल उलझन मे डाल देगें। अतः सृष्टि के स्वरूप को अनादि एवं अनंत मानना ही उचित है। ऐसा मान लेने पर पुनर्जन्म में विश्वास स्वाभाविक हो जाता है। (29)

(ख) कर्म विपाक पुनर्जन्म को सिद्ध करता है – विनोबा जी भारत में विकसित कर्म – विपाक को बहुत विकसित शास्त्र मानते है इसके अनुसार "देह टिकती है कर्म – वेग से। पूर्व कर्म असंख्य होते है। उनमें

---

25. विनोबा साहित्य खण्ड – 3, पृष्ठ 150-151
26. पूर्वोक्त, पृष्ठ – 151
27. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ – 184
28. विनोबा साहित्य – खण्ड – 14 अध्यात्म और आश्रम – पृष्ठ – 16
29. पूर्वोक्त

से एक विशिष्ट अंश उपभोग के लिये देहरूप में प्रवृत्त हुआ है।" [30] प्रायः देखा जाता है कि स्वस्थ माता – पिता से जन्म लेने के बाद भीं कोई बच्चा जन्म लेने के कुछ समय बाद से हीं सुख – दुःख भोगना शुरू कर देता है इन सबका जिम्मेदार कौन है ? निश्चित ही पूर्वजन्म के पुण्य और पाप ही इसका कारण हैं। कर्मफल भोगना पुनर्जन्म को सिद्ध करता है।

(ग) साक्षात अनुभव

साक्षात अनुभव के द्वारा हमें अपनी पिछ्ले जन्म की बातों का स्मरण होता है। जैसे – जैसे कार्य – करण परम्परा खुलती है अर्थात हमारी बुद्धि पूर्व संस्कारों से मुक्त होती जाती है, और चित्त निर्मल होता जाता है और वैसे वैसे हमें पूर्व जन्म की धुंधली मोटी – मोटी बातों का स्मरण होने लगता है। गौतम बुद्ध एवं ज्ञानदेव को अपने पूर्वजन्म की बहुत सी बातों का स्मरण होता था। विनोबा ने स्वयं अपने जीवन के अनुभवों के सहारे भी इस सिद्धान्त को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। उनके शब्दों में "सिनेमा एवं धूमपान आदि में उनकी अरूचि का कारण यही है कि पूर्वजन्म में वह इनकी बुराइयों को अनुभव कर चुके होगे इसलिये इस जन्म में इनकी इच्छा नहीं हुई।" [30] इसी तरह अन्य कई उदाहरणों से वह पूर्व जन्म की यर्थाथता प्रमाणित करने का प्रयास करते है जैसे "एक बार विनोबा अपनी माता के साथ पूना में किसी दूसरी जगह जाने वाले थे उस समय वह तीन – चार साल के थे। उन्होनें उस स्थान पर पहुँचने से पूर्व ही बता दिया था कि वह कैसा है। दूसरे विनोबा जी को बंगला सीखने में कम समय लगा था इसका कारण अनुमान करते है कि पूर्वजन्म में वह बंगाली थे।" [32]

विनोबा जी ने इस धारणा का खण्डन किया कि मानव का पुर्नजन्म सदैव उच्च योनियों में ही होता है। उनके अनुसार यह सामान्य नियम नहीं है। पुर्नजन्म किस योनि में होगा यह मनुष्य की वासना के प्रकार और तीव्रता पर निर्भर है। जैसी भावना होगी वैसे ही योनि प्राप्त होगी।

(घ) मोक्ष -

भारतीय जीवन दर्शन का अन्तिम ध्येय मोक्ष है। जब आत्मा जीवन मृत्यु के चक्र से विमुक्त

---

30. पूर्वोक्त पृष्ठ – 19

31. पूर्वोक्त पृष्ठ – 17 से 19

32. विनोबा चिन्तन अंक 7 – पृष्ठ – 12 – 13

होकर परमात्मा में एकाकार हो जाती है, ऐसी महामिलन की स्थिति को मोक्ष कहते है। विनोबा जी के अनुसार "मोक्ष का अर्थ है मोह को खत्म करना। 'मो' यानि मोह और 'क्ष' यानि क्षय। मोह का क्षय यानि मोक्ष। मनुष्य को अनेक प्रकार का मोह होता है। संसार की आसक्ति, काम की आसक्ति, देह की आसक्ति, मित्रों की आसक्ति इत्यादि, अनेक प्रकार की आसक्तियां होती है, मोह होता है। उस मोह से छुटकारा पाना यानि मोक्ष। गीता में भी कहा है नष्टों मोहो 'स्मृतिर्लब्धा' .... (गी 18-73) मेरा मोह नष्ट हो गया आत्म-जागृति जागृत हो गयी, अब मै निःसन्देह हो गया।" [33] उनके अनुसार मुक्ति का आशय क्रोध, कामेच्छा भ्रम आदि संकीर्णताओं से ऊपर उठकर व्यक्तिगत अहम से छुटकारा प्राप्त करके अपने को समाज के व्यापक स्वरूप में समन्वित करना है, अतः मोक्ष है - "आत्म पहचान की अवस्था जिसमें मनुष्य की सारी वृत्तियां विलीन हो जाती है और वह पूर्ण निवृत्ति की अवस्था को प्राप्त करता है।" [34] उनके अनुसार गीता में व्रह्मनिर्वाण को परमलक्ष्य बताया गया "ब्रह्मनिर्वाण अर्थात मोक्ष का अर्थ ब्रह्म में मिलना, घुल जाना लीन हो जाना है।" इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रह्म किसी दूसरी जगह पर हैं उसमें लीन होने के लिये कहीं जाना है।" [35] ब्रह्मा तो हमारे अन्दर पहले से ही मौजूद है बस देहाभिमान रूपी परदा हटाकर ब्रह्म में लीन हो जाना हैं।

देह को फेंककर व्यापकतम होना मोक्ष है। इस स्थिति में भी लोकसंग्रह का कार्य चलता रहता है। विनोबा की राय में "मोक्ष न तो स्थूल सक्रियता की अवस्था है न निष्क्रियता की। यह प्राणी की सूक्ष्य क्रिया की अवस्था है जिसका परिणाम अधिक शक्तिशाली होता है।" [36] उनके शब्दों में यह धारणा गलत है कि "जंगल में जाकर तपस्या करके विकारो को छोड़कर मुक्ति मिलती है बल्कि सारे समाज के लिये अंहकार छोड़ना ही मुक्ति है त्याग है, भक्ति ही सन्यास है।" [37]

विनोबा जी ने राग - द्वेष, अहम - वासना आदि के त्याग अर्थात मोक्षावस्था प्राप्ति के लिये महत्वपूर्ण साधन इस प्रकार निर्धारित किये है - (1) सूक्ष्य कर्मयोग (2) सामूहिक समाधि (3) साम्ययोग।

---

33. विनोबा साहित्य खण्ड - 14 'अध्यात्म और आश्रम' पृष्ठ - 10
34. विनोबा चिंतन अंक - 9 पृष्ठ - 19
35. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 गीतामृतम - भाग (1) पृष्ठ - 428
36. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 305
37. विनोबा साहित्य - खण्ड - 14 पृष्ठ - 10

(१) सूक्ष्य कर्मयोग -

विनोबा जी के मत में सूक्ष्म कर्मयोग में क्रिया की अपेक्षा वाणी, भाव, चिंतन का महत्व अधिक होता है। मतलब क्रियायें कम होने पर भी परिणाम बढ़ता जायेगा। जैसे "होम्यापैथी की दवा का होता है। उसमें दवा की मात्रा कम होती है, परन्तु घोटाई या भावना की मात्रा अधिक होती है और उससे दवा की पोटेंसी बढ़ जाती है इसी प्रकार स्थूल कर्मयोग में बाहरी क्रिया ज्यादा होती है[38] आन्तरिक शुद्धि का भाव इसमें नही होता है। सूक्ष्म कर्मयोग में चित्त की पूर्ण शुद्धि और निरहंवृत्ति (अहंकार विहीनता) एवं कर्म अलिप्तता का आग्रह होता है फलस्वरूप कर्म का बोझ हमारी बुद्धि पर नहीं पड़ता और कर्म करने के बाद भी माया - मोह के बन्धन से बंध नहीं पाते है। इससे साधक में किसी प्रकार की अहंकृति, संकल्प, वासना नहीं होती। यही मुक्ति का मार्ग है।

(२) सामूहिक समाधि -

विनोबा जी प्राचीन आध्यात्मिक साधना को त्रुटिपूर्ण मानते है "जिसमें साधकगण विद्या और मुक्ति के सम्बन्ध में 'मै' और 'मेरा' से ऊपर नहीं उठ पाते है तथा उन्हें सीमित बना देते है।"[39] विनोबा जी मानते है इस 'मै' का आत्मा से सम्बन्ध नहीं होता है बल्कि यह देह से जुड़ा क्षुद्र विचार है, आत्मा तो सर्वव्यापक है। 'मेरा' गुण, 'मेरा' दोष से मुक्त होना चाहिये क्योंकि इसके बिना मुक्ति संभव नहीं। उनके अनुसार समाधि का अर्थ है समत्वयुक्त चित्त। जिस चित्त को विकार का स्पर्श नहीं, अहंता ममता नहीं, संकुचित भाव नहीं।" [40] इसलिये वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित इस समाधि का रूप सामूहिक होना चाहिये। उनके मत में "सामूहिक समाधि में सारा समूह अपनी मन की अवस्था से ऊपर उठ जाता है। इस भूमिका में आने पर व्यक्तिगत, साम्प्रदायिक, जातीय अथवा राष्ट्रीय अहंकार समाप्त हो जाते है। तथा सम्पूर्ण समाज स्वतंत्र और तटस्थ निर्णय के आधार पर चलता है।"[41]

(३) साम्ययोग -

मोक्ष साधना के लिये भारतीय दर्शन में कई प्रकार के योगों की चर्चा हुई है। इसमें शंकर

---

38. पूर्वोक्त पृष्ठ - 117 से 118 तक

39. विनोबा साहित्य खण्ड - 14 'अध्यात्म एवं आश्रम' पृष्ठ - 279

40. पूर्वोक्त - 281

41. विनोबा चिन्तन अंक - 26 - 27 पृष्ठ - 81 - 90

का ज्ञान योग, रामानुज का भक्ति योग, लोकमान्य तिलक का कर्मयोग और गांधी जी अनाशक्ति योग को मोक्ष का साधन मानते है। विनोबा जी ने कहा "अभिधेयम परम् साम्यम। हमारा अभिद्येय या हमारे चिंतन का विषय परम साम्य है जिसकी और हमे अपने समूचे चिंतन को ले जाना है, इन्द्रियों को मोड़ना है, जिसे लक्ष्य करना है।" (42) उन्होनें गीता को साम्ययोग कहा है। साम्य का अर्थ है "संतुलन, स्थिरता, एकता, अथवा तादात्म्यता। इसमें जीवन का सर्वस्व है। इस साम्ययोग के आधार पर - आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, मानसिक, वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक साम्य की स्थापना की जानी चाहिये।" (43) साम्ययोग समन्वयात्मक तत्वज्ञान है इसमें आत्मा और शरीर का समन्वय, व्यक्ति और समाज का समन्वय, योग और सन्यास का समन्वय निहित है। जीवन में साम्ययोग की अखण्ड साधना के लिये विनोबा जी ने ज्ञानयोग भक्तियोग एवं कर्मयोग की प्रक्रिया बतलायी है।

(क) ज्ञान योग -

ज्ञानयोग की प्रक्रिया के लिये विनोबा जी ने तीन महावाक्य दिये है -

(1) महावाक्य अनुचिन्तयेत (2) ततः शासन मुक्ति और (3) आत्मशक्तेर भानात्।" (44)

(1) अनुचिन्तन के अर्न्तगत उन्होनें दो महावाक्यों तत् त्वमसि और अहम ब्रहास्मि पर बल दिया है। "तत् त्वम असि - तू वह है। अर्थात देह के अन्दर विराजमान, सीमित, मर्यादित, अल्प शक्तिवाला ऐसा जो तू मान रहा है वह तू नहीं है। बल्कि तुममे विशाल परिपूर्ण शक्ति भरी है।" (45) उनके अनुसार अहमब्रह्मस्मि का अर्थ है "मै देह से अलग हूँ।" इन "महावाक्यों के चिंतन से मनुष्य देह, मन, इन्द्रियों, वासना, भावना बुद्धि आदि से परे हो जाता है और अपनी मूल स्थिति में आता है परम् साम्य में पहुँच जाता जहाँ उसे ' आत्मशक्ति भानेत अर्थात अपनी आत्मशक्ति का भान होता है और व्यक्ति ततः शासनमुक्ति को महसूस करता है।" (46) अर्थात उस पर किसी की सत्ता नहीं चलती।

---

42. विनोबा साहित्य - खण्ड - 3 पृष्ठ - 234
43. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 310
44. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 गीतामृतम - भाग - 1 पृष्ठ - 237 - 240
45. पूर्वोक्त - 238
46. पूर्वोक्त - 243

(ख) भक्तियोग -

इसमें विनोबा जी ने ईश्वर के नाम के स्मरण की महत्ता बतलाई है। उनके अनुसार भक्तिपूर्वक ईश्वर के स्मरण से सद्‌गुणों का विकास होता हैं। हमारे चिन्तन में जो विगुणता, न्यूनता, कमी, रवामी, एवं त्रुटि रह जाती है उसकी पूर्णता ईश्वर के स्मरण से होती है।" [47] ईश्वर के नाम - स्मरण की यह महत्ता है कि जो भी प्रयत्न हम करते है, उसमें कोई कमी रह जाती है तो उसकी पूर्ति ईश्वर करता है। व्यक्ति को किसी प्रकार की चिंता, राग एवं द्वेष नहीं रहता। उनके अनुसार श्रद्धा पर आधारित भक्ति से पुराने पाप भी खण्डित होते है। उनके अनुसार यह आश्वासन भ्रमपूर्ण नहीं वरन सत्य है लेकिन इसके लिये भावना की तीव्रता होनी चाहिये। उनके शब्दो में "अगर भाव की तीव्रता हो तो कुल का कुल शरीर स्वस्थ्य हो सकता है सब प्रकार के पाप कट जाते है, उनके परिणम कट जाते है अगर यह श्रद्धा न हो तो यह मार्ग भी मुश्किल है।" [48]

(ग) कर्मयोग -

विनोबा जी के अनुसार 'पूर्वमीमांसा' और चावकि दर्शन को छोड़कर सांख्य, योग, वेदान्त, न्याय - वैशेषिक या जैन बौद्ध सभी कर्म को बन्धनकारक मानते है।" [49] पूर्वमीमांसा और चार्वाक दर्शन ने 'कर्मभिः निः श्रेयसम कर्म' से ही मुक्ति या अन्तिम ध्येय की प्राप्ति होती है, इसकी पुष्टि की है।" [50] उनके अनुसार गीता अवश्य प्रस्थापित करती है 'अकर्म' निः श्रेयस है यह अकर्म ही साम्य की अवस्था है जिसका प्रारम्भ कर्म से होता है। "कर्म के रूप में हम जो स्वधर्माचरण करते है उसमें विकर्म अर्थात अंदर से चित्तशुद्धिरूपी कर्म का संयोग करने से अकर्म का निर्माण होता है और उससे निष्कामता आती है।" [51] इससे काम क्रोध भस्म होते है और परमज्ञान की निष्पत्ति होती है। यहीं अकर्म स्थिति है। कर्म करके भी अकर्ता रहते है कर्म का बोझ नहीं पड़ता, कर्म का कर्मत्व उड़ जाता है कर्म का भान बाकी नहीं रहता। अकर्मवस्था में साधन इतने नैसर्गिक और स्वाभाविक हो जाते है कि सारे कार्य ज्ञानी

---

47. पूर्वोक्त पृष्ठ - 244
48. पूर्वोक्त पृष्ठ - 248
49. पूर्वोक्त पृष्ठ - 250
50. पूर्वोक्त
51. पूर्वोक्त पृष्ठ - 36

को सहज लगने लगते हैं। उनके अनुसार अकर्म की दुहरी भूमिका होती है।"[52] (क) व्यक्तलिंग मेकम् या व्यक्तलिंग।

(ख) अत्यक्त लिंगम परम या अव्यक्त लिंग। दोनो ज्ञान की अवस्थायें है। एक में ज्ञानी स्थूल कार्य कम करता है, लेकिन उससे प्रतिक्षण ज्ञान, उपदेश व्यक्त होता रहता है इस ज्ञानी को व्यक्त लिंग कहेगें। दूसरे जो ज्ञान को अन्दर समेटे रहते है और सदा कर्म करते हुये परोपकार के कार्य में व्यस्त रहते हैं उन्हें थोड़ा बहुत ज्ञान की बात भी करते है इसे विनोबा जी अव्यक्त लिंगज्ञानी कहते हैं। कर्म की दृष्टि से अगर आकलन करे तो पाते है कि कर्मयोगी जो चौबीस घंटे कर्म करते है वे व्यक्त लिंग कर्मयोगी तथा जो स्वयं कर्म नहीं करते परन्तु दूसरे को प्रेरित करते है वे अव्यक्त लिंग कहलाते है। इस प्रकार ज्ञान और कर्म में कोई भेद नहीं है जो व्यक्तकर्म योग है वह अव्यक्त ज्ञानी है। एक अकर्म में कर्म को प्रेरित करता है। दूसरा कर्म में अकर्म का अनुभव करता है। अकर्म ही मानसिक साम्य की अवस्था है।

(घ) गुण विकास -

सांख्य की प्रकृति के त्रैगुण सिद्धान्त को मानते हुये विनोबा जी ने साम्यावस्था के लिये समाज, सृष्टि और चित्त के सत्व, रज और तम तीनों गुणों का शोधन करना आवश्यक मानते है। वह सत्व गुण, रजोगुण, और तमगुण तीनों का उचित स्थान जीवन में निर्धारित करना चाहते है। "जीवन में मार्गदर्शन के लिये सत्वगुण, गति के लिये रजोगुण और आराम के लिये तमोगुण चाहियें।" [53] उनके अनुसार सत्वगुण का लक्षण ज्ञान है। जीवन की बुनियाद इसी पर आधरित होनी चाहिये। यदि ज्ञान में अहंकार का भास हुआ तो सत्वगुण तमोगुण में परिवर्तित हो जायेगा। अतः नम्रता से हमें अहंकार का शोधन करना चाहिये।" [54] **रजो गुण गति का सूचक है।** उनके मत में 'वेगस्थ शमनम् स्वधर्मेण' मनुष्य के मन में तथा इन्द्रियों में वेग होता है। यह रजोगुण का परिणाम है। परन्तु उन पर नियंत्रण आवश्यक है। क्योंकि नियंत्रण न होने पर वह अपनी गति एवं शक्ति खो देगा। अतः स्वधर्म से वेग का शमन हो। इसमें अपने आपको और इन्द्रिया को समाज सेवा में लगा दे, ताकि वेग का सही दिशा में

---

52. पूर्वोक्त पृष्ठ - 252

53. पूर्वोक्त - 253

54. पूर्वोक्त - 266-267

उपयोग हों।" [55] तमोगुण का स्वभाव है आराम, आलस्य जड़ता। इसके लिये विनोबा जी "श्रम संजात वाणिराम एवं अर्थात शरीर परिश्रम से जो पानी निकलता है, उस पसीने से तमोगुण का शोधन किया जाये।" [56] इस प्रकार विनोबा जी त्रिगुणों को जीवन में समुचित स्थान देतें है।

इस प्रकार विनोबा जी ने समन्वयवादी दृष्टि एवं वैज्ञानिक पद्धति से मोक्ष एवं उसके साधनों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की। मोक्ष के आत्मज्ञान में उन्होनें निहित किया है कि मोक्ष का आशय है "अपने समस्त मोहों का क्षय करके, अहंकार को त्यागकर, मै को हम से काटकर अपने को समाज में व्याप्त करना" । मोक्ष साधना के लिये सूक्ष्म कर्मयोग, सामूहिक समाधि उनकी मौलिक देन है। उन्होनें भारतीय आध्यात्मिक चिंतन के एकांकी तत्व 'मेरी मुक्ति' की जगह 'हमारी मुक्ति' का विचार दिया। उन्होने व्यक्ति और समाज दोनों के आत्मिक उत्थान को समाज की परिपूर्णता का आधार बनाया। प्राचीन आध्यात्मिक विचार 'साम्ययोग' को सामजिक स्वरूप प्रदान किया। गीता महत्ता के अनुसार " To him Samya means

I- Equality - Social, Economic, and Political

II- Equality - i.e. not to lose one's composure under any circumstances, under any Provocation (III) Identiy with all living creatures. These three are relevant to modern age." Parmasamya, Supreme identity becomes the highst ideal to be reached by man. The social, economic, and political Samya should, in fact be practised only as preparation for reaching the paramsamy." [57]

मोक्ष साधना के लिये साम्यदर्शन का यह उत्कृष्ट स्वरूप निःसन्देह भारतीय अध्यात्म परम्परा में नया आयाम है। निः सन्देह विनोबा जी ने आज के वैज्ञानिक युग में माया – मोह पाप – पुण्य पर आधारित भारतीय अध्यात्म चिंतन की प्रक्रिया को कर्म, ज्ञान एवं भक्ति की समन्वय दृष्टि से विस्तृत करने का अनूठा प्रयास किया है।

55. पूर्वोक्त - 262

56. पूर्वोक्त - 258

57. Geeta Mehta "Metaphysical Basis of Vinoba's Philosophy of life" Gandhi Marg - Nov. Dec. 1983

(ख) सामाजिक चिंतन

विनोबा जी के सम्पूर्ण सामाजिक चिंतन में आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों का सर्वोच्य स्थान है। उन्होनें व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की शुद्धि एवं आत्मिक विकास के लिये "सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद् अपरिग्रह, अस्तेय, शरीरश्रम, स्वदेशी, सर्वत्र, भयवर्जन, सर्वधर्मसमानत्व स्पर्श भावना अनिंदा आदि व्रतों का पालन अनिवार्य बताया।" (1) वह मानते है कि सदगुण सामाजिक उपयोगिता के लिये होते है। इसके परिणामस्वरूप कुल जीवन - दृष्टि बदल जाती है।" (2) उनके मत में यह प्राचीन धारणा असत्य है कि "इन व्रतों की आवश्यकता केवल साधकों के लिये ही है।" (3) बल्कि "सामाजिक सेवा में आध्यात्मिक मूल्यों का प्रयोग न हो उसका मुख्य प्रयोजन ही समाप्त हो जाता है .... ये तत्व जितने परमार्थिक साधना के लिये है उतने ही सेवापरायण के लिये आवश्यक है।" (4) उनके इस आध्यात्मिक समाज में सेवा, संयम और त्याग का मूल्य सर्वाधिक होगा। संतति, संपत्ति एवं भूसम्पदा पर सामाजिक स्वामित्व होगा जिसका उपभोग व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार करेगा।

विनोबा जी के मत में 'वर्तमान समाज स्पर्द्धात्मिक है हम उसे भविष्य में सहयोगात्मक बनाना चाहते है।"(5) इसका आशय यही है कि वह वर्तमान अन्याय, विषमता, असहिष्णुता एवं राग-द्वेष, शोषण एवं हिंसा को मानवीय गरिमा के पतन का कारण मानते है अतएव इन बुराइयों के समूलनाश के लिये सामाजिक जीवन की संरचना सर्वोदय की मूल दृष्टि पर आधारित करते है जिसमें प्रेम, सहिष्णुता, अहिंसा समानता एवं न्याय को सामाजिक जीवन का मूलमंत्र माना गया है। श्रमनिष्ठ एवं सरल जीवन को वह इस सहयोगात्मक समाज की बुनियाद घोषित करते है। क्योंकि वह मानते है कि इसके बिना समाज से "पूंजीपति और मजदूर गरीब और अमीर, शहरवासी और ग्रामवासी स्त्रीपुरुष के

---

1. विनोबा साहित्य - खण्ड - 14 'अध्यात्म एवं आश्रम' पृष्ठ - 391 - 492
2. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 393
3. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 392
4. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 393
5. Selection from Vinoba, Ed by Vishwanath tandon 1981 - P - 111

बीच भेद नहीं मिटाया जा सकता।" (6) समाज में श्रम की प्रतिष्ठा होने से व्यक्ति इसकी गरिमा को महसूस करेगें एवं सभी छोटे - बड़े कार्यो को सामाजिक, नैतिक मूल्य समान होगा। उनके अनुसार इस समाज में स्त्री - पुरूष गरीब - अमीर व्यक्ति और समाज के हितों में परस्पर कोई विभेद नहीं होगा। लोगों के बीच पूर्ण सदभाव एवं विश्वास होगा। आर्थिक समानता, सर्वधर्म समभाव एवं अस्पृश्यता निवारण इस समाज के प्रमुख संकल्प होगें।

विनोबा जी ने समाज की विभिन्न मान्यताओं, रूढ़ियों एवं समस्याओं का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया और इसी प्रक्रिया में सर्वोदयी समाज के विशिष्ठ सन्दर्भ प्रस्तुत किये जिनमे - व्यक्ति और समाज का परस्पर सम्बन्ध, वर्णाश्रम व्यवस्था, कायिक (शरीर) श्रम, स्त्री - उद्धार एवं अस्पृश्यता निवारण इत्यादि प्रमुख है। उनके इन सामाजिक आधारों का सम्यक विवेचन अनिवार्य है ताकि उनके सामाजिक चिंतन की मूलदृष्टि एवं प्रकृति का समुचित परीक्षण हो सके -

(1) व्यक्ति और समाज - विनोबा जी के अनुसार व्यक्ति और समाज में परस्पर अटूट सम्बन्ध है। उनके अनुसार "गीता में वर्णित है हम तीन संस्थायें साथ लेकर ही जन्म लेते है .... पहली संस्था है .... हमारे आसपास लिपटा हुआ शरीर। दूसरी संस्था है - हमारे आसपास फैला हुआ विशाल ब्रह्माण्ड - यह अपार सृष्टि जिसके हम अंश है। तीसरी संस्था ही समाज जिसमें हमारा जन्म हुआ .. ..।" (7) हम जीवन पर्यन्त इन तीनों संस्थाओं का उपयोग करते है। सांख्यदर्शन अनुसार "सत्वगुण, रजगुण और तमगुण मनुष्यचित्त, समाज और सृष्टि में पाये जाते है।" (8) उनके मत में इसका आशय यही है कि इन तीनों गुणों का प्रभाव समान रूप से इन तीनों संस्थाओं पर रहता है "सत्व गुण के कारण अभय, अहिंसा सत्यविनम्रता आदि का प्रादुर्भाव होता है और रजोगुण और तमगुण के कारण प्रभाव से काम, क्रोध, लोभ, आलस्य इत्यादि आसुरी प्रवृत्तियां उत्पन्न होती है।" (9) मनुष्य "यज्ञ, दान, तप द्वारा इन आसुरी प्रवृत्तियों के शमन का प्रयत्न करता हैं।" (10) फलस्वरूप यज्ञ से सृष्टि में

---

6. विनोबा साहित्य खंड - 14 पृष्ठ - 454
7. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 गीतामृतम भाग - 1 पृष्ठ - 191
8. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 255
9. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 178 - 189 का सार
10. विनोबा चिन्तन, अंक - 17, पृष्ठ - 246

दान से समाज में और तप से शरीर में साम्यावस्था आती है।" (11)

विनोबा जी व्यक्ति और समाज में अंग - अंगी का सम्बन्ध मानते हैं उन्होनें कहा "जिस तरह शरीर के सारे अवयव मिल जुलकर कार्य करते है उसी तरह सब व्यक्तियों को मिलजुलकर काम करना चाहिये तभी समाज सुखी होगा।" (12) जिस प्रकार शरीर के अवयवों में बराबर विरोध नहीं होता है उसी प्रकार मानव के व्यापकतम स्वरूप समाज और व्यक्ति में कोई विरोध नहीं होता है। उनके शब्दों में "जीभ और पेट में क्या विरोध है ? पेट को जितना अन्न चाहिये, उतना ही जीभ को देना चाहिये, पेट ने कहा बस, जीभ को बन्द कर देना चाहिये पेट एक संस्था (अवयव) है जीभ दूसरी संस्था। इन संस्थाओं में अद्वैत है .... वास्तविक विरोध नहीं है, बल्कि सहयोग, उसी प्रकार समाज में भी है। समाज में इस सहयोग को बढ़ाने के लिये ही गीता चित्त शुद्धिपूर्वक यज्ञ, दान, तप की क्रिया का विद्यान बताती है। ऐसे कर्मो से व्यक्ति और समाज, दोनों का कल्याण होगा।" (13) इसी लिये व्यक्ति और समाज में सन्तुलन स्थापित करने के लिये विनोबा जी ने जीवन का समीकरण दो भाग त्याग और एक भाग भोग (त्याग^2 + भोग^1 = जीवन) के आधार पर किया है। इसी से व्यक्ति और समाज का सन्तुलित विकास संभव है।

अतएव विनोबा जी ने व्यक्ति और समाज में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना हैं। इसी कारण उनके सर्वोदय विचार में मनुष्य की शुद्धि के साथ - साथ शांतिपूर्ण समाज रचना का भी आग्रह है। वह व्यक्ति के सद्गुणों को सामाजिक जीवन की प्रेरणा बनाना चाहते हैं। उन के विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों में व्यक्ति और समाज के मध्य द्वैतभाव को समाप्त कर सामूहिक जीवन की धारणा को सुदृढ़ बनाते है। क्योंकि उनके अनुसार केवल व्यक्तिवादी जीवन ही सब कुछ नहीं है। हम समाज में रहते है और समाज की सेवा करके ही संतुष्टि प्राप्त करते है - हमारे समाज की कल्पना परिवार जितनी संकीर्ण हो अथवा समस्त मानवता जितनी विस्तृत। हम समाज से पृथक जीवन की कल्पना नहीं कर सकते है। *

(ख) वर्णाश्रम व्यवस्था -

विनोबा जी ने अहिंसक समाज रचना के निर्माण के लिये प्राचीन हिन्दु वर्णाश्रम को आदर्श माना है। उनके अनुसार "मूलतः चातुर्वण्य एक सहकारी संस्था के रूप से बना था उपनिषदों में इसका

---

11. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 पृष्ठ - 193
12. विनोबा के साथ निर्मला देश पाण्डे पृष्ठ - 156
13. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 पृष्ठ - 200

* पी0 डी0 नागर, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, पृष्ठ - 624

इतिहास है कि आरम्भ में केवल एक ही वर्ण था अर्थात समाज वर्णो में विभाजित नहीं था। उसे ही सभी प्रकार के कार्य करने पड़ते थे। लेकिन मालूम हुआ कि एक वर्ण से काम नहीं हो सकता तब क्षत्रिय वर्ण बना। आगे मालूम हुआ कि दो वर्णो से काम नहीं चल सकता तो तीसरा वैश्य वर्ण बना और जब इससे भी काम न बना तो चौथा शूद्र वर्ण बना" (14) चारों वर्ण परस्पर पूरक थे। सभी के कार्यो के नैतिक सामाजिक एवं आर्थिक मूल्य समान थे। उनके मत में गीता में वर्णित है "शुद्ध हृदय और निष्काम भाव से काम करने वाला ब्राह्मण हो, शूद्र हो अन्य किसी वर्ण का हो मोक्ष का समान अधिकारी है। इतना ही नहीं अगर ब्राह्मण अपना काम ठीक से नहीं करता भंगी अपना काम ठीक से करता है तो वह प्रामाणिक भंगी ब्राह्मण की अपेक्षा उच्च माना जाता है।" (15) विनोबा जी वर्णव्यवस्था को स्पर्द्धारहित समाज रचना का आधार मानते है क्योकि (16) (1) वर्णो में परस्पर उच्चता एवं नीचता नहीं है सभी को समान रूप से मोक्ष का अधिकार है। (2) किसी भी वर्ण को दूसरे किसी वर्ण से अधिक पैसा मिले यह बात वर्ण धर्म में नहीं। (3) सभी वर्णो की सामाजिक प्रतिष्ठा समान है। वर्णधर्मानुसार किसी भी वर्ण के व्यक्ति को दूसरे किसी वर्ण के व्यक्ति से विवाह स्थापित करने में कोई हर्ज नहीं। उनके अनुसार वर्ण कोई जाति नहीं वृत्ति थी। उनके शब्दों में "जिनमें क्षात्रगुण का विकास हुआ वे तो अधिक संयमी और इन्द्रिय निग्रही होगें ऐसे ही इन्द्रिय निग्रही और समर्थ देश की रक्षा करें।" (17) इस प्रकार वर्णधर्म व्यक्ति की स्वभावगत विशेषताओं एवं सीमाओं के अवलोकन के बाद उसके कार्यक्षेत्र को निर्धारित करता हैं।

विनोबा जी का विचार है कि प्राचीन वर्णव्यवस्था को वर्तमान में रोजगार के आधार के रूप में अपनाया जाये। क्योंकि यह सर्वोदय की मूल भावना पर आधारित है "व्यक्ति वहीं कार्य करे जो उसे समाज सौपें। समाज उसे वहीं कार्य सौपें जिसक लिये वह व्यक्ति को योग्य समझे।" (18) इससें समाज

---

14. विनोबा साहित्य खण्ड -19 'धर्मामृत चरित्रामृतम' पृष्ठ - 117
15. पूर्वोक्त
16. विनोबा साहित्य खण्ड - 18 साम्ययोगी समाज, पृष्ठ - 438
17. विनोबा साहित्य खण्ड - 19 पृष्ठ - 120
18. विनोबा भावे स्वराज्य शास्त्र पृष्ठ - 18

में अनुचित प्रतिस्पर्द्धा समाप्त होगी। एवं सभी प्रकार के कार्यो की समान प्रतिष्ठा होगी। उनके अनुसार किसी भी व्यक्ति में इन चारों वर्णो की योग्यतायें एक साथ हो सकती है। फिर भी किसी एक गुण की उसमें प्रधानता होगी। इस प्रधान गुण के आधार पर वह अपना व्यवसाय सुनिश्चित करे। साथ ही वह अन्य गुणों की उपेक्षा न करें अतएव " All should work both with head and hands, and all should develop the equanimity of the Brahamas or the learned cast, The fearness of the kshatriyas. of the warrior cast, the compassions of the vaishyas or the businessmen and the faith of the shudras or the servant class" [19] इससे "गुण प्रधान लोग भी सेवा करेगें और कर्मप्रधान लोग भी गुण ग्रहण करेगे ....।" [20] विनोबा जी की इस व्यवस्था से समाज में ज्ञान और कर्म का समन्वय होगा और शारीरिक एवं मानसिक श्रम के बीच इसका निषेध होगा।

विनोबा जी वर्णव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के विचार की अन्य सर्वोदयी विचारको काका कालेकर एवं दादाधर्माधिकारी ने कटु आलोचना की एवं इस व्यवस्था के पूर्व उन्मूलन पर जोर दिया -

" The latter is of view that living society must have the capacity for making new experiments. The caste system is dying and the varna system has gone in to abolition. It is time to make. new experiments." [20] परन्तु विनोबा इस व्यवस्था को अहिंसक समाज की रचना का आधार मानते है क्योंकि उनके अनुसार "मजदूरी (परश्रमिक) की समानता प्रतियोगिता का अभाव एवं आनुवांशिक संस्कारों से लाभ उठाने वाली शिक्षण योजना पर आधारित वर्णव्यवस्था सर्वश्रेष्ठ है।" [21] अतः विनोबा वर्णधर्म में निहित सारतत्व को व्यापकरूप से समाज में स्थापित करना चाहते है।

आश्रम व्यवस्था -

विनोबा जी आश्रम व्यवस्था को हिन्दु धर्म का आधार मानते हैं इस आश्रम व्यवस्था के पीछे यह विचार है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य विषयभोग नहीं विश्व सेवा है। एवं संयम रखकर ईश्वर का साक्षात्कार करना है। विनोबा जी के मत में भारतीय समाज शास्त्र ने मानव जीवन के विभाग शास्त्रीय

---

19. विनोबा - त्रिवेणी पृष्ठ - 12 - 13
20. विनोबा चिंतन अंक - 44 - 45, 1969 पृष्ठ - 35
20. डा0 विश्वनाथटंडन 'सर्वोदय आफटर गांधी से उद्धत' पृष्ठ - 100
21. विनोबा साहित्य खण्ड - 19 पृष्ठ - 127

पद्धति से किये - "बचपन - वेदाध्ययन, गुरूसेवा यह ब्रहमचर्य अवस्था है, युवावस्था, में गृहस्थाश्रम, गृहसेवा, कर्मयोग, यज्ञ, दान, तप। उसके बाद वानप्रस्थ यानि गृहमुक्त सेवा, और आग केवल ईश्वर चिंतन सन्यास।" (22) विनोबा जी ने इसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुये इन चारों आश्रम को निरूपित किया है -

(क) ब्रह्मचर्यश्रम -

इस आश्रम से मनुष्य के जीवन को आरम्भ से अच्छा आधार प्राप्त होता है। जीवन के 25 साल ब्रह्मचर्य में माने गये। इसमें इन्द्रियों पर काबू रहता शरीर मजबूत बनता, एवं प्रज्ञा तेजस्वी होती।

(ख) गृहस्थाश्रम -

यह आश्रम कर्तव्यनिष्ठा का आश्रम है इसमें व्यक्ति कई प्रकार के कर्तव्यों का पालन करता है - अतिथियों की सेवा करना, उत्पादन बढ़ाना, संतान की परवरिश करना एवं उनके तालीम की व्यवस्था करना। विवाह संस्कार का गृहस्थाश्रम में विधिवत पालन की शिक्षा है क्योंकि इससे "प्राणीमात्र के चित्त में जो कामवासना है वह विकृत नहीं होगी।" उनके अनुसार गीता में वर्णित है "प्रजोत्पादन के लिये स्त्री - पुरूष समागम धर्म है तथा संतान हेतु विरहित स्त्री - पुरूष संगम से व्यभिचार खून असंयम, भोगविलास उत्पन्न होता है" (23)

(ग) वानप्रस्थ आश्रम -

इस अवस्था का उद्देश्य, विनोबा श्री "अनुभव स्थिरवृत्ति और इन्द्रिय निग्रह से लेते है" (24) इसका आशय यही है कि इस आश्रम में व्यक्ति विषय भावना से मुक्त होकर समाज की निष्काम सेवा में लग जाये।

(घ) सन्यास आश्रम -

विनोबा जी के अनुसार सन्यास का अर्थ है अहंकार, आसक्ति, व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त होकर "व्यक्ति आत्मज्ञान और भक्ति का मार्ग समाज को बतलाये।" (25) उनका मत है कि सन्यास का

---

22. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 133
23. पूर्वोक्त - 136
24. विचारपोथी पृष्ठ - 35
25. विनोबा चिंतन अंक - 40 - 41 पृष्ठ - 152

अर्थ समाज से पलायन नहीं है बल्कि समस्त विषय वासनाओं से मुक्त होकर समाजमय हो जाना ही सन्यास है। इस अवस्था में "व्यक्ति अपनी आत्मपवित्रता और हृदय शुद्धि के बल से बिना कुछ किये और कहें समाज को सूर्य की भांति क्रियाशील करता है।" (26)

इस प्रकार विनोबा जी ने आश्रम संकल्पना के उद्देश्य एवं स्वरूप को अधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया। विनोबा जी वर्तमान समाज में इसका पुनरूद्धार करना चाहते है ताकि इन आश्रमों से सन्निहित नीति एवं मर्यादाओं से व्यक्तिगत जीवन एवं समाज को व्यवस्थित किया जा सके।

(३) कायिक श्रम (शारीरिक श्रम) -

विनोबा जी सामाजिक जीवन की बुनियाद शरीर - परिश्रम वृत को बनाना चाहते है। वह इसें समाज का आचरण का सूत्र मानते है "हर कोई अपने शरीर के आहार के लिये शारीरिक परिश्रम करें शरीर को पोषण शरीर श्रम से ही करें। इसी को ब्रेड लेवर कहते। इसी को भगवतगीता में यज्ञ का नाम दिया गया। उसी का जिक्र ईसा ने किया कि जो अपने पसीने से रोटी कमाता है वह ब्रेड लेवर है।" (27) उनके मत में आज दुनिया में अशांति इसलिये है कि कुछ लोग श्रम करते है, दूसरे उसका लाभ उठाते हैं। इससे समाज में दर्जे बनते गये "शारीरिक श्रम करने वाले नीचे माने गये और न करने वाले उच्चस्थान ग्रहण किये हुये" (28) समाज में श्रम का स्थान पैसें और प्रेम का स्थान संघर्ष ने ले लिया है। अतः इन बुराइयों के समूल नाश के लिये आवश्यक कि सभी अपनी भूख मिटाने के लिये शरीर परिश्रम का व्रत ले। उनके मत में "समाज का प्रत्येक सक्षम व्यक्ति - चाहे वह सामान्य नागरिक हो या शासक गर्व का बुद्धिजीवी हो या व्यापारी शिक्षक हो या सैनिक प्रतिदिन उत्पादक श्रम करें। (29) इससे समाज में श्रम की प्रतिष्ठा होगी एवं ऊँच - नीच मालिक - मजदूर का भेद समाप्त होगा। सभी लोगों के कर्मण्य होने से दूसरो का मत्सर, दूसरो के प्रतिद्वेष, बिना कुछ किये खाने की वृत्ति समाप्त होगी। अहिंसक एवं शोषण मुक्त समाज रचना का मूलमंत्र यही है।

---

26. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 पृष्ठ - 46 - 47
27. विनोबा साहित्य खण्ड - 14 'अध्यात्म एवं आश्रम' पृष्ठ - 456
28. पूर्वोक्त
29. पूर्वोक्त - 458

(४) स्त्रीशक्ति -

विनोबा जी ने समाज में स्त्रियों की स्थिति के सन्दर्भ में व्यापक चिंतन किया है। वह नारी के मूल में स्थित मातृशक्ति का अत्यधिक आदर करते है। उनके अनुसार स्त्री समाज में प्रेम, त्याग और शांति की भावनाओं का विस्तार करती है। क्योंकि "स्त्री मातृस्थान है वह सारें समाज की तारिणी शक्ति है, जो तारिणी शक्ति होगी, वहीं शांति की मूर्ति हो सकती है।" (30) उनके अनुसार प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रीपुरूष को समान स्थान प्राप्त था। उनकी बौद्धिक एवं आध्यात्मिक योग्यताओं को समान माना गया। क्योंकि उपनिषदों ने आज्ञा दी है "मातृदेवों, भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव इसमें माता को प्रथम देव माना गया।" (31) इसी प्रकार हमारे यहाँ "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी - जननी और जन्म भूमि दोनों को स्वर्ग से बढ़कर माना गया है।" (32) प्राचीन हिन्दु धर्म में स्त्रियों को धर्म, विवाह, एवं शिक्षा आदि में पुरूषों के समान पूरी स्वतंत्रता थी। परन्तु मध्य एवं आधुनिक युग के आते - 2 नारी का यह सम्मान जाता रहा। नारी भोग, घृणा और तिरस्कार का पर्याय बनी। उन पर बहुत सी अक्षमतायें लादी गयी। उनके शब्दों में "सांसारिक पुरूषों के लिये वह भोग विलास का साधन बनी, सारा साहित्य, कला, सारे रस उसके इर्द - गिर्द घूमते रहे। दूसरी और परमार्थियों (साधू सन्यासियों) ने उसे लक्ष्य बनाया। बैराग्य के लिये उसे बन्धन डालने वाली माना। इसलिये उसके प्रति घृणा, तिरस्कार का भाव रखा।" (33) ब्रह्मचर्य, सन्यास, वेदपठन - पाठन और मोक्ष के अधिकार से उसे वंचित किया गया। शनैः - शनैः स्त्री समाज पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा एवं कन्याहत्या आदि बुराइयों के कारण जड़ होता गया।

विनोबा जी स्त्री समाज के पुनरूद्धार के लिये स्त्री - शक्ति को जागृत करना चाहते है। उनका मानना है कि स्त्री समाज का उद्धार तब तक असंभव है जब तक उनका बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास नहीं होगा। विनोबा जी ने इसी सन्दर्भ में 1959 में पवनार में स्त्रियों के लिये ब्रहम विद्या मन्दिर की स्थापना की ताकि यही स्त्रियां सामूहिक साधना, सामूहिक उपासना एवं सामूहिक समाधि द्वारा अपना

---

30. विनोबा साहित्य खण्ड - 17 शिक्षा स्त्री शक्ति ....। पृष्ठ - 238
31. पूर्वोक्त पृष्ठ - 446
32. पूर्वोक्त
33. पूर्वोक्त - पृष्ठ 237

आध्यात्मिक विकास करें। उन्होनें स्त्रियों को ब्रहमचर्य की साधना करने को कहा। उनके शब्दों में "ब्रहमचर्य का अर्थ सिर्फ इन्द्रियों का निग्रह नहीं है, वरन् इसका विशाल ध्येय है अर्थात ब्रहम के साक्षात्कार का ध्येय सामने रखकर उसकी खोज में अपना जीवन क्रम रखना।" (34) इससें स्त्रियों में आत्मबल जागृत होगा। आत्मा की एकता पर आधारित 'ब्रहम विद्या' की निरन्तर साधना हेतु उन्होनें स्त्रियों को प्रेरित किया।

विनोबा जी स्त्री समाज की अन्य बुराइयों, बहुपत्नी प्रथा, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, आदि पर प्रहार करते है। बहुपत्नी प्रथा के बारे में कहते है एक पति अपनी अनेक पत्नियों की समान रूप से देखभाल कर ही नहीं सकता, अतः कुप्रथा को समाप्त होना चाहिये।" (35) दहेज प्रथा के वह अत्यन्त विरोधी है। वह इसके पूर्ण उन्मूलन के समर्थक है। "वह मानते है कि उपरोक्त दोनों बुराइयों ने स्त्री की वास्तविक गरिमा का क्षय किया है। हमें स्त्री शक्ति के अभ्युत्थान के लिये इन बुराइयों को खत्म करना होगा। स्वयं स्त्रियों को इन्हें खत्म करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी।" (36) वह पर्दा प्रथा को स्त्रियों की स्वतंत्रता में बाधक मानते है। अतएव उनका आग्रह हैं "यदि उनको अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण एवं सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करना है, तो उन्हें इससे अवश्य मुक्त होना चाहिये।" (37) उनके मत में इन बुराइयों से मुक्त होकर ही स्त्री समाजपरिर्वतन, शीलरक्षा एवं सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा कर सकती है।

विनोबा जी के अनुसार अब तक पुरूष प्रधान समाज रचना रही है। "उन्होनें हिंसा शक्ति में संरक्षण है, यह मानकर सारे कार्य किये। आने वाले समय में हिंसा शक्ति का स्थान अहिंसा शक्ति ले लेगी क्योंकि वह समाज रचना स्त्री प्रधान होगी .... इस शमप्रधान रचना में स्त्री - पुरूष भेद समाप्त होगा और सर्वत्र शान्ति होगी।" (38)

---

34. विनोबा साहित्य खंड - 14 पृष्ठ - 423
35. विनोबा - स्त्रीशक्ति पृष्ठ - 35
36. Dr. Dasrath Singh, "Vinoba's contribution to upliftment of woman"

    Gandhi Jyoti - Jan 1993 P - 16
37. विनोबा भावे - स्त्रीशक्ति - पृष्ठ - 34
38. विनोबा साहित्य खण्ड - 14 पृष्ठ - 265

इस प्रकार समाज में स्त्री शक्ति के अभ्युदय के सन्दर्भ में विनोबा जी का सर्वोत्कृष्ट योगदान यही है कि वह स्त्रियों को प्रेरित करते हैं कि वह अपना आध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास करके अपनी समस्याओं का निराकरण स्वयं करें इससे वह स्वरक्षिता बनेगी एवं उसकी पुरूषों पर निर्भरता समाप्त होगी। नि : सन्देह स्त्री समाज के विकास के लिये यह ठोस समाधान है। डा0 दशरथ सिंह के अनुसार

" If the women emerge as spitritual and social force, the whole attitudes of men towards woman will be. Changed, the foundation of society will be deeper and human culture and civilization will prosper."(39)

अश्पृश्यता निवारण -

विनोबा जी ने गाँधी जी के अश्पृश्यता निवारण की जगह 'स्पर्श भावना' का प्रयोग किया। जिसका व्यापक अर्थ है "हमारा कुल विश्व से स्पर्श हो जहाँ हम अपने को अलग समझेगे, दुनिया से कटे हुये समझेगे, वहाँ स्पर्श भावना व्रत का भंग होगा।" (40) उन्होनें कहा यह अमानवीय प्रथा है कि एक इन्सान दूसरे को अछूत माने।" (41) उनके अनुसार समाज में स्पृश्य - अस्पृश्य की भावना मिटने के लिये आवश्यक है कि सभी कार्यो का नैतिक सामाजिक एवं आर्थिक मूल्य समान हो। यह तभी संभव है जब अछूत कहे जाने वाले कार्यो को घृणारहित एवं निर्मल बनाया जाये। उनके मत में "कोई भी समाजोपयोगी कार्य नीच नहीं होता सबको बात मन में बिठानी चाहिये और उसे करने की तैयारी करनी चाहिये।" (42) किसी भी मनुष्य को छूत न मानने से अस्पृश्यता निवारण की इतिश्री नहीं होगी बल्कि काम की छूत को समाप्त करना होगा। स्वयं विनोबा जी ने हरिजन सेवा एवं अस्पृश्यता निवारण के लिये चमड़े का काम, भंगी काम, और बुनाई काम किया और लोगो को भी प्रेरित किया। उन्होनें कहा समाज में अछूत समझे जाने वालों को समाज की मुख्य धारा में शामिल करने के लिये हमें उदार एवं सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करना होगा।" (43)

---

39. Dr. Dashrath Singh, "Vinoba's contribution to upliftment of woman" , P - 25
40. विनोबा साहित्य - खण्ड - 14 पृष्ठ - 481
41. विनोबा साहित्य खण्ड - 18 पृष्ठ - 438
42. विनोबा साहित्य खण्ड - 14 पृष्ठ - 482 - 483
43. पूर्वोक्त - 482 - 484

जैसे – (क) हरिजन किसी भी बस्ती में जाकर रहे, दुकान खोले, धंधा करें किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

(ख) सभी प्रकार के धंधे हरिजनों के लिये खुले होने चाहिये।

(ग) अछूत समझे जाने वाले कार्यो को निर्मल बनाने के लिये आवश्यक है सभी लोग इसको करने में किसी प्रकार शर्म महसूस न करे। स्वयं विनोबा ने कार्यो को सेवाधर्म के रूप में अपनाया।

(घ) इस समाज का अज्ञान, अंधेरा, अनुदारता दूर करने के लिये ज्ञान का प्रकाश इन तक पहुँचे, इसके लिये आवश्यक है इनकी शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाये।

(ड़) मन्दिर, सार्वजनिक स्थानो में इनके प्रवेश को निषिद्ध करना अमानवीय एवं अधार्मिक है। अतः इसको समाप्त करना होगा।

विनोबा मानते है इन उपायो से अशपृश्यता निवारण में सहायता मिलेगी और समाज कृत्रिम विषमता एवं अधर्म से मुक्ति प्राप्त कर सकेगा।

इस प्रकार विनोबा जी के सम्पूर्ण सामाजिक चिंतन के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि केवल एक चिंतक के रूप में ही नहीं बल्कि सामाजिक वैज्ञानिक, सुधारक एवं समन्वर्याचार्य के रूप में उनकी भूमिका काफी विस्तृत एवं महत्वपूर्ण है। उन्होनें वर्तमान समाज की मूलभूत समस्याओं का न केवल विश्लेषण किया वरन् उनके समाधान की ठोस प्रक्रिया भी सुनिश्चित की। उनके विचारों में स्त्री – पुरूष, ऊँच – नीच, छोटा – बड़ा एवं गरीब – अमीर के बीच कोई द्वैतभाव नहीं हे। समन्वयपूर्ण आदर्श समाज को उन्हें प्रेम, ममता, त्याग एवं निर्वैरता के अटूट बन्धन में बाँधा है। जहाँ व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय में पूर्ण सांमजस्य है। अतः हम कह सकते है कि "विनोबा जी ने गांधी जी के आध्यात्मिक समाज को पूर्णता प्रदान की है।" [44]

---

44. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ – 372

1. बी0 एन0 गोखले :– 'इण्डियन कल्चर थ्रु आउट दि ऐशेज' पृष्ठ – 55

(ग) आर्थिक चिंतन

विनोबा जी के आर्थिक चिंतन का मूलस्रोत प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारधारा है "जिसमें मानवीय पहलुओं का सर्वोच्च स्थान दिया गया है और अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र को अन्योन्याश्रित माना गया है।" (1) अर्थात इसमें अर्थ की जगह मानव कल्याण को सर्वोच्च एवं नैतिकमूल्यों को आर्थिक जीवन की नियामक शक्ति के रूप में प्रस्थापित किया गया है। विनोबा जी भी कहते हैं कि जिस अर्थचिंतन में मानवकल्याण की भावना सर्वोपरि होती है वहीं "राष्ट्रीय अर्थशास्त्र या सच्चा अर्थाशास्त्र होता है।" (2) साथ ही उन्होनें कहा कि "आर्थिक क्षेत्र जीवन का बहुत बड़ा अंग है इसलिये धर्मशास्त्र, (3) इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता बल्कि इसके नियोजन और नियमन की जिम्मेदारी धर्मविचार पर ही आती है।"(4) उन्होनें इसी आधार पर पाश्चात्य अर्थशास्त्र की आलोचना करते हुये कहा कि नैतिक मूल्यों की सर्वथा अवहेलना एवं मानव कल्याण की जगह अर्थ पर ज्यादा जोर देने के कारण इस व्यवस्था में "सभी चीजों का मूल्य पैसे से आंका जाता है। प्रेम का कोई मूल्य नहीं समझा जाता।" (5) इस अर्थकेन्द्रित मानसिकता के कारण सामाजिक जीवन से प्रेम, सहयोग, सद्भाव, सत्य, अहिंसा और पारस्परिक विश्वास के सभी नैतिक मापदण्ड समाप्त हो रहे है। उनके मत में "पश्चिम ने स्पर्द्धा का अर्थशास्त्र विकसित किया है – 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' – जो सबसे ज्यादा बलवान कुशल और चतुर हो उन्हें ही जीने का अधिकार है .... इस स्पर्द्धात्मक समाज का सबसे बड़ा दोष है कि बलवान और शक्तिशाली दूसरे का शोषण करने लगते है।" (5)

विनोबा जी भारतीय परम्परा पर आधारित जिस अर्थशास्त्र का विकास करना चाहते है वह अस्तेय, अपरिग्रह, संयम, त्याग एवं शरीरश्रम आदि नैतिक मूल्यों पर आधारित होगा। उनके अनुसार 'अस्तेय (चोरी न करना) एवं अपरिग्रह (असंग्रह) से अर्थशुचिता का निर्माण होगा' (6) संयम अर्थात "अपने भोग की मात्रा निर्धारित करना, इस निर्धारण का सवोत्तम साधन त्याग है। 'तेन त्यक्तेन भुजीथाम्' – त्याग करके भोगों (7) एवं शरीर श्रम (Bread Labour) "अपने श्रम से अपनी रोटी

---

2. विनोबा साहित्य खंड – 18 साम्ययोगी समाज पृष्ठ – 275
3. विनोबा जी धर्म को 'शाश्वत एवं निरपेक्ष नैतिकता के रूप में लेते है' विनोबा चिंतन, अंक 55, 1970 पृष्ठ – 253, वह सत्य अंहिसा, अस्तेय, अकाम, अक्रोध, लोभ आदि को इसी अर्थ से धर्म मानते है – विनोबा चिंतन अंक – 40 – 41, 1969 पृष्ठ – 151
4. विनोबा साहित्य खंड – 18 पृष्ठ – 81
5. पूर्वोक्त पृष्ठ – 3
6. विनोबा साहित्य – खंड – 14 अध्यात्म और आश्रम पृष्ठ – 452
7. पूर्वोक्त पृष्ठ – 453

जुटाओं [8] आदि पर आधारित अर्थव्यवस्था अहिंसक एवं शोषणमुक्त होगी। इसी में देश की आर्थिक सम्पन्नता एवं गरीबी, बेकारी आदि का निदान संभव है। इस प्रकार की अर्थसंरचना में ही मनुष्य की भौतिक समृद्धि के साथ - साथ उसका नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होगा। उनके शब्दों में "भौतिक प्रगति एवं आध्यात्मिक विकास में कोई विरोध नहीं है। दोनों साथ - साथ चल सकते है शरीर और आत्मा साथ ही तो है और दोनों साथ - साथ बढ़ते है, तब हमारी सर्वांगीण उन्नति होती है।" [9] वह कहते है कि यदि भौतिक विकास के साथ आध्यात्मिक उत्थान नहीं हुआ तो मनुष्य का विनाश अवश्यभावी है।

विनोबा जी के अनुसार आर्थिक जीवन में न्याय समानता एवं मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के लिये आवश्यक है कि अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को बहुगुणित करने के स्थान पर उनका परीसीमन किया जाये। हमें अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ही उपभोग करना चाहिये। इसी में सच्चा सुख है क्योंकि "जीवन समुन्नत् बनाने की चेष्टा में हम निरन्तर आय के आंकड़े बढ़ाते जा रहे है .... फिर भी लोगों के मन में संतोष नहीं है .... अमेरिका एवं रूस के निवासियों के पास भौतिक सुख - समृद्धि के साधनों की कमी नहीं है परन्तु ये दोनों भयग्रस्त है।"[10] लोभलिप्सा का त्याग एवं मानसिक संतोष ही इस भय एवं अशांति को दूर कर सकता है। विनोबा जी द्वारा संचालित विभिन्न आन्दोलनों - भूदान, ग्रामदान एवं संपत्तिदान आदि में व्यक्ति की त्याग भावना का विकास कर समाज में संग्रह की जगह अपरिग्रह और अस्तेय के मूल्यो को प्रस्थापित करने का संकल्प है।

इस प्रकार विनोबा जी आर्थिक अवधारणा में भौतिक समृद्धि के साथ आध्यात्मिक विकास की प्रतिबद्धता, इच्छाओं एवं आवश्यकताओं का परीसीमन एवं नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का संदर्भ व्यक्ति के समग्र विकास की अपेक्षा में रखते है। और इसी आधार पर उन्होनें अर्थव्यवस्था के विभिन्न आधारों को समुन्नत बनाने का ठोस प्रयास किया है। अपरिग्रह, समानता, विकेन्द्रीकरण, ग्रामस्वलम्बन एवं स्वदेशी उनकी इस अर्थव्यवस्था के विशिष्ट सन्दर्भ है।

---

8. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 456

9. विनोबा (लेख) भौतिक प्रगति और आध्यात्मिक विकास मैत्री (पत्रिका) अगस्त 1991 पृष्ठ - 311

10. पूर्वोक्त

(क) अपरिग्रह

विनोबा जी ने अपरिग्रह - परायण समाज का आदर्श रखा। विनोबा जी के अनुसार "संग्रह करने से समाज में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य इन पाँच व्रतों का सामूहिक भंग होता है।"(11) इसलिये शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार ही संग्रह करें क्योंकि आवश्यकता से अधिक संग्रह असमानता दुःख एवं असंतोष की जड़ है। उन्होनें कहा अपरिग्रह का आदर्श स्वरूप सृष्टि (प्रकृति) है "सृष्टि का स्वरूप "अश्वत्य" है। यानि सृष्टि के पास कल का संग्रह आज नहीं है। मनुष्य को भी अश्वत्य संग्रह रखना चाहिये।" (12) उन्होनें कहा यह धारणा गलत है कि अपरिग्रह की साधना केवल आध्यात्मिक जीवन में ही हो सकती है बल्कि "अपरग्रिह केवल सन्यासियों के लिये ही नहीं बल्कि सामान्य नागरिकों के लिये भी है।" (13) अपरिग्रह की साधना से समाज में वैभव और संपत्ति का प्राचुर्य होगा व उसका सभी के बीच समान वितरण होगा।

विनोबा जी नवीन आर्थिक संरचना के सम्बन्ध में गांधी जी के ट्रस्टीशिप को मलकियत और आर्थिक वितरण के सम्बन्ध में एक नैतिक एवं अहिंसक प्रयास मानते है। उनके मत में "समाज में अपरिग्रह धर्म की स्थापना के लिये यह उत्तम एवं महत्वपूर्ण उपाय है।" (14) विनोबा जी के ट्रस्टीशिप का अर्थ है शरीर, बुद्धि और संपत्ति - तीनों में से जो भी प्रति हो उसे सबके हित में लगाना (15) विनोबा जी ने गांधी जी के ट्रस्टीशिप का विनियोग अहिंसक समाज रचना के निर्माण में किया और इसी आधार पर भूदान ग्रामदान एवं संपत्तिदान इत्यादि धारणाओं का विकास किया। उन्होनें कहा। "भूदान यज्ञ की बुनियाद में यह विचार है कि सारे समाज को अपना सर्वस्व समर्पण करना व्यक्ति का कर्तव्य है . ... यानि अपनी कुल शक्ति, संपत्ति, बुद्धि समाज की सेवा में समर्पित करें .... जो वापस मिले उसी को प्रसाद के तौर पर ग्रहण करें। (16) इससे स्वार्थपूर्ण संग्रह का निषेध होगा

---

11. विनोबा साहित्य खण्ड - 18 साम्ययोगी समाज पृष्ठ - 80
12. पूर्वोक्त - 80
13. पूर्वोक्त - 88
14. विनोबा भावे, सर्वोदय और स्वराज्य शास्त्र पृष्ठ - 133
15. विनोबा साहित्य खंड - 18 'साम्ययोगी समाज' पृष्ठ - 131
16. पूर्वोक्त पृष्ठ - 114

साथ ही आध्यात्मिक अपरिग्रह और समाज की भावना का समाज में प्रसार होगा। विनोबा जी के संपत्तिदान यज्ञ में स्वामित्व विर्सजन का संकल्प है। उन्होनें कहा संपत्तिदान अर्थात सम्पति के विर्सजन की प्रतिज्ञा .... बापू जिसे ट्रस्टी कहते थे, वैसे ट्रस्टी बनने का व्रत।" [17] यहाँ उल्लेखनीय है, कि विनोबा जी ने गांधी जी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में संशोधन किया। गांधी जी के ट्रस्टीशिप में कुछ अंश तक व्यक्तिगत स्वामित्व समाज के पवित्र धरोहर के रूप मे रहता है लेकिन भूदान ग्रामदान एवं संपत्तिदान व्यक्तिगत स्वामित्व नाम मात्र के लिये नही रहता ही शुलभ ग्रामदान में व्यक्तिगत स्वामित्व को सीमित रूप में स्वीकार किया गया है। इस प्रकार विनोबा जी स्वामित्व के मोह को तिलांजलि देकर अपरिग्रह को सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की बुनियाद बनाना चाहते है।

(ख) आर्थिक समानता

विनोबा जी ने समाज में विवेकपूर्ण आर्थिक समानता का समर्थन किया। उनके मत में समानता का अर्थ यह नहीं कि समाज को भौतिक सम्पदा का सबमें समान वितरण हो बल्कि इसका आशय यही है कि "प्रत्येक व्यक्ति का उसकी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त हो।" [18] अर्थात एक क्षमतावान व्यक्ति जिसकी आवश्यकतायें कम है उसे कम वेतन प्राप्त होगा ठीक इसकी तुलना में एक कम क्षमता वाला व्यक्ति जिसकी आवश्यकतायें अधिक है उसे अधिक वेतन प्राप्त होगा।" [19] इस प्रकार एक व्यक्ति को उसके द्वारा किये गये कार्यो के स्तर के अनुसार वेतन प्राप्त नहीं होगा वरन् इसका निर्धारण उसकी आवश्यकताओं से होगा। इस समानता को ही वह औचित्यपूर्ण समानता मानते है। उन्होनें कहा "हम गणितीय समानता नहीं चाहते .... हम विवेक युक्त समानता चाहते है क्योंकि एक माँ गणित का हिसाब लगाकर अपने बच्चों में बराबर खाना नहीं बांटती वरन् बच्चों की वय और आवश्यकतानुसार देती है सबसे छोटे को वह केवल दूध देती है उसें बड़ो को थोड़ा सा दूध और थोड़ी सी रोटी और बड़े बच्चों को सिर्फ रोटी देती है। इसी प्रकार समाज में भोजन - सामग्री का वितरण करने में हम विवेक से काम लेगे हर एक की भूख की तीव्रता और पाचन शक्ति का ख्याल रखेगें।" [20]

---

17. पूर्वोक्त - 114
18. Vinoba Bhave 'Swaraj Shastra' P - 74 - 75
19. Ibid, P - 74
20. विनोबा, 'हरिजन' 20-12-52

विनोबा जी मानते है। समाज में पूर्ण समानता की स्थापना असाध्य है परन्तु असन्तुलित असमानता भी नहीं होनी चाहिये। समाज में ऐसी समानता हो जो विभेदक होते हुये भी न्यायपूर्ण हो। ऐसी समानता हाथ की पाँच उंगलियों के बीच होती है। क्योंकि "ये पाँचों उंगलियां बराबर न होते हुये भी पूर्ण सहयोग से एक साथ मिलकर अनेक कार्य करती है। साथ ही उनकी असमानता इतनी बेहिसाब नहीं है कि एक तो एक इंच लम्बी हो और दूसरी एक फुट लम्बी। इससे यह शिक्षा मिलती है कि अगर पूरी समानता नहीं हो सकती, तो भयंकर असमानता भी होनी चाहिये, परन्तु तुल्यता होनी चाहिये।" (21) उनके मत में इसके लिये हमे एक ओर गरीब और अमीर के बीच की खाई को बढ़ने से रोकना होगा तथा दूसरी और उसे पाटने के भी प्रयास करने होगे।

(ग) विकेन्द्रीकरण

विनोबा जी ने सर्वोदयी अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिये औद्योगिक विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। उनके अनुसार "सर्वोदय विचार" में जो बुनियादी बाते मानी गयी है " (1) रोजमर्रा की सारी चीजें – खाना, कपड़ा आदि गाँव में ही पैदा हो। जो काम घर में हो सकते है जैसे रसोई, कताई आदि – वे घर में हो, जो गाँव में हो सकते है तेल – जूता आदि वे गाँव में हो। (2) लोहा, कोयला, अभ्रक, के बड़े – बड़े उद्योग जिनका सम्बन्ध न सारे देश बल्कि दुनिया के साथ है – किसी व्यक्ति की मालिकी न रहे। उन पर सारे समाज की मालिकी रहे।" (22) इस प्रकार विनोबा जी ने त्रिस्तरीय औद्योगिक व्यवस्था का समर्थन किया।

(क) लघु उद्योग जहाँ पर उत्पादन स्थानीय कच्चे माल एवं श्रमिकों की सहायता में होगा,

(ख) कुटीर उद्योग – इसमें उत्पादन कार्य एक परिवार विशेष तक सीमित होगा। परिवार द्वारा परम्परागत आधार पर ये उद्योग स्थापित हो।

(ग) विशाल उद्योग – इसमें पूंजीगत बड़े उद्योग होगें लोहा, इस्पात उद्योग एवं चीनी सीमेंट उद्योग इत्यादि। विनोबा जी के अनुसार यह बात असत्य है कि सर्वोदय विज्ञान और टेक्नोलॉजी का विरोधी है बल्कि "सर्वोदय से बढ़कर विज्ञान के लिये अनुकूल कोई विचार नहीं" (23) भारत में

21. विनोबा – 'हरिजन' 26-1-52
22. विनोबा साहित्य खण्ड – 18 साम्ययोगी समाज पृष्ठ – 195
23. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 186

आत्मज्ञान की परम्परा रही है उसका समन्वय हम विज्ञान से करके उसे लोककल्याणकारी बना सकते है। आज तक विज्ञान का विस्तार पूंजीपतियों केन्द्रित औद्योगिक व्यवस्था के विस्तार में किया, फलस्वरूप हिंसा और शोषण का जन्म हुआ। विज्ञान की प्रगति मुनष्य की योजना पर निर्भर करती है। आज विकेन्द्रित औद्योगिक व्यवस्था के लिये हम विज्ञान की मदद ले सकते है। उन्होने कहा "भारतीयों के उत्पादन के औजार बिल्कुल कमजोर है। वैज्ञानिक तकनीक द्वारा उन्हें अच्छा बनाया जाये। आज तो विज्ञान छोटे औजारो की तरफ देखता ही नहीं, विज्ञान की दृष्टि सर्वोदय के साथ जुड़ जाये तभी वह समर्थ होगा।" [24] विनोबा जी विज्ञान और टेक्नालॉजी का इस प्रकार लाभ उठाना चाहते है जिससे सभी को काम मिले, उत्पादन बढ़े, और साथ में लोकजीवन सुरक्षित रह सके।

ग्रामस्वावलम्बन

विनोबा जी ने विकेन्द्रित औद्योगिक व्यवस्था का सर्मथन केवल आर्थिक, अनिवार्यता के कारण नहीं किया वरन् ग्रामीण स्वावलम्बन के लिये भी इसे आधारभूत माना। उनके अनुसार अंग्रेजों के आने से पूर्व हमारी स्वावलम्बी ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी। प्रत्येक गाँव मे लघु एवं कुटीर उद्योग थे जो कि स्थानीय कच्चे माल से जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से सम्बन्धित पूरा माल तैयार करते थे। गाँवो में कृषि के पूरक ग्रामोद्योगों का समुचित विकास हुआ था। "ब्रिटिश सरकार की औपनवेशिक नीतियों के कारण ग्रामोद्योग का ह्रास हुआ।" [25] उनके मत में वर्तमान परिस्थितियों में भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये एवं स्वावलम्बी ग्राम अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिये ग्रामोद्योगों को पुर्नजीवित करना अनिवार्य है। उनके अनुसार भारत कृषि प्रधान देश है परन्तु बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति जमीन मुश्किल से 0.7 एकड़ है। [26] गाँवों में लोगों को वर्ष भर कार्य नहीं मिलता इसलिये "खेती के पूरक धन्धे के रूप में ग्रामोद्योग को बढ़ाना होगा।" [27] इससे प्रत्येक गाँव अपनी

24. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 186
25. पूर्वोक्त - 162 - 163
26. पूर्वोक्त - 160
27. पूर्वोक्त

प्राथमिक और द्वितीयक जरूरतों के बारें में आत्मनिर्भर बनेगें" [28] विनोबा जी के अनुसार ग्रामोद्योगों की स्थापना एवं विकास के लिये आवश्यक है कि जो कच्चा माल ग्राम में पैदा होता है उसको बाहर न भेजकर उसका पक्का माल भी वही बने जैसे "गाँवों में गन्ना होता है, तो गुड़ भी वहीं बने, गाँवों में मिट्टी है, तो मिट्टी के बर्तन भी वहीं बने .... इसी में बेकारी निवारण का शाश्वत सूत्र है।" [29]

विनोबा जी ने ग्रामस्वराज्य के आधार के रूप में ग्रामोन्मुख खादी उद्योग का विचार दिया। वह खादी विचार एवं कार्यक्रम को गांधी जी की विशेष देने मानते है। उनके शब्दो में "गाधी जी ने खादी को राष्ट्रीय उपासना बनाकर स्वराज्य संघर्ष, सामुदायिक सत्याग्रह को शांति एवं अहिंसा के मार्ग पर अग्रसर किया है।" [31] आज स्वतंत्रता उपरान्त खादी का महत्व और अधिक बढ़ गया है इसका सीधा सम्बन्ध ग्राम स्वावलम्बन से है उनके अनुसार खादी श्रमनिष्ठ जीवन का प्रतीक है "दुनिया में शोषण इसलिये है कि कुछ लोग श्रम करते है और कुछ लोग लाभ उठाते है घर - घर में सूत काता जायेगा इससे समाज में श्रमनिष्ठा बढ़ेगी और शोषण खत्म होगा" [31] बेरोजगारी निवारण एवं गाँव के वस्त्र स्वावलम्बन की दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण योजना है।

इस प्रकार विनोबा जी ग्रामस्वराज्य के लिये गाँवों की रचना ग्रामोद्योग के आधार पर करना चाहते है। उनके शब्दों में "ग्रामोद्योग खादी स्वावलम्बन यह किये बिना Socialist state by peaceful means (समाजवादी राज्य, शांतिमय साधनों से) संभव नहीं होगा।" [32]

स्वदेशी

विनोबा ने स्वदेशी का प्रयोग स्वधर्म और स्वावलम्बन के सिद्धान्त के रूप में किया है। उनके अनुसार "स्वधर्म अर्थात अपने आस - पास के लोगों द्वारा तैयार माल प्रेम से स्वीकारना हमारा धर्म

---

28. पूर्वोक्त

29. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 164 तथा 178

30. पूर्वोक्त - 289 का सारांश

31. पूर्वोक्त - 280

32. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 340

है" (33) इसका आशय यही है कि हम अपने देश में निर्मित वस्तुओं का प्रयोग करें। क्योंकि यह हमारे राष्ट्रीय हितों एवं आत्म निर्भरता को मजबूती प्रदान करता है। जब हम "अपने नजदीक वाले मनुष्य ने जो चीज बनायी है उसे न खरीदते हुये दुनिया की चीजे खरीदते है तो यह 'संकुचित स्वार्थ एवं निष्ठुरता है।" (34) इसलिये आर्थिक समृद्धि एवं स्थायित्वपूर्ण विकास के लिये प्रत्येक व्यक्ति को स्वदेश में निर्मित वस्तुओं को प्रथम प्राथमिकता देनी चाहिये। उन्होनें कहा कि इसका यह आशय भी नहीं है कि स्वदेशी भावना विदेश निर्मित प्रत्येक वस्तु का विरोध करती है बल्कि इसका आग्रह यही है कि "जिन चीजों का हम अच्छी तरह निर्माण कर सकते है, उस काम का बोझ दूसरों पर डालना गलत है।" (35) अतः स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हमें अपने उपलब्ध संसाधनों, ज्ञान, एवं कौशल की सहायता से जितना संभव हो सके अपनी आवश्यकतओं की पूर्ति के लिये उत्पादन एवं निर्माण करना चाहिये। इससे हमारे घरेलू उद्योगों को संरक्षण मिलेगा जिसमें गरीबी, बेकारी अदि समस्याओं का भी निराकरण होगा।

इस प्रकार विनोबा जी का सम्पूर्ण आर्थिक चिंतन समानता, न्याय, अपरिग्रह एवं सहयोग पर आधारित है। "पाश्चात्य देशों में मानव कल्याण का अर्थ भौतिक संसाधनों की बढ़ोत्तरी से लिया जाता है, व्यक्ति के सुख का एक मात्र साधन उसकी आर्थिक प्रचुरता को माना जाता है।" (36) परन्तु विनोबा जी ने व्यक्ति का सर्वोत्तम कल्याण उसके आत्मिक उत्थान को माना है। इसके लिये उन्होनें सयंम और त्याग से पूर्ण जीवन को अपनाने पर बल दिया है। वह देश की गरीबी, बेकारी, विषमता एवं भ्रष्टाचार का निवारण स्वावलम्बन, सादगीपूर्ण जीवन, समानता एवं स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग से करना चाहते है। ग्रमीण जीवन की विपन्नता को दूर करने हेतु उन्होनें "कृषि प्रधान ग्रामोद्योग व्यवस्था" की स्थापना पर जोर दिया। ग्रामस्वावलम्बन के आदर्श की पूर्ति के लिये ग्रामोद्योगों को आधार बनाया इससे आत्मनिर्भरता के साथ गरीबी एवं बेकारी आदि समस्याओं का निदान भी होगा। हालांकि कुछ आलोचकों ने ग्रामोद्योगों की आलोचना करते हुये कहा। " 1. If the objective is merely one of providing full

---

33. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 169

34. पूर्वोक्त - 172

35. पूर्वोक्त - 171

36. Adi. H. Doctor 'Sarvodaya a palitical and economic study' P- 67

employment, one has merely to set up cottage industries in every village and see that each village produces its own cloth etc. But the problem is far deeper, than one of merely setting, so many hands to work, cottege industries have a higher cost of production ." (37)

2. and there product when compared to the machine product is distinctively inferior in finish and hence the demand for these tends to be less. It will therefore be difficult to persuade the people, to buy the costlier and comparatively less finished products of the cottage industries." (38)

विनोबा जी ने मशीनीकृत केन्द्रित बड़े उद्योगों की सम्पूर्ण व्यवस्था की वास्तविक स्थिति के विश्लेषण के बाद कहा कि "इनकी उत्पादित वस्तुयें किसी भी हालत में लघु एवं कुटीर उद्योगों से सस्ती नहीं पड़ती है। उनके शब्दो में कहा जाता है कि मिले सस्ती पड़ती है हम हिसाब करके दिखा देते है कि वे मंहगी है, मिलों में व्यवस्थापक, माल का ले जाना - लाना मालिकों अजस्र मुनाफा आदि कई आपत्तियां स्पष्ट है। लेकिन फिर भी मिल सस्ती मालूम पड़ती है तो या तो कोई जादू होना चाहिये या फिर हमारे ऐतराज गलत होने चाहिये। एतराज तो गलत नहीं कहे जा सकते तो फिर अवश्य तिलस्म है। वह जादू यह है कि मिल एक विराट यान्त्रिक रचना की जंजीर की कड़ी है। बड़े कारखानों में मुख्य उद्योग के साथ - साथ उससे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे का फुटकर उद्योग कराये जाते है .... इन गौण उद्योगों मे जो आमदनी होती है उससे प्रधान उद्योगों को लाभ होता है। और यह सब मिलाकर वह कारखाना आर्थिक दृष्टि से पुसाता है मिल की यही स्थिति है। वह एक समग्र विचार श्रंखला की कड़ी है।" (39) लेकिन इन स्थितियों में भी ग्रामोद्योग एवं उसकी उत्पादित वस्तुओ को बड़े उद्योगों की तुलना में मंहगा माना जाता है तो इसे हम निश्चित रूप से लाभप्रेरित अर्थ चिंतन एवं मशीनीकृत व्यवस्था का तिलस्म ही कह सकते है।

दूसरी आपत्ति है कि लघु एवं कुटीर उद्योगों में उत्पादित वस्तुयें मशीनीकृत उद्योगों की तुलना में तकनीकी दृष्टि से पिछड़ी हुई होती है।" विनोबा जी इसे स्वीकारते है और कहते है कि "विज्ञान एवं

---

37. V.V. Bhatt, 'Employment and capital formation in under developed economics, P - 61 - 64

38. Adi. H. Doctor 'Sarvodaya A political economics study, P - 185

टैक्नोलॉजी की सहायता से हमें परम्परागत उत्पादन के साधनों को अधिक कार्यश्रम एवं उपयोगी बनाना चाहिये।" [40] इस प्रकार ग्रामोद्योग के पीछे विनोबा जी को मूल दृष्टि यही है कि वह इनको आत्मनिर्भर ग्रामजीवन का सशक्त विकल्प बनाना चाहते है।

विनोबा जी उद्योगों के विकेन्द्रीकरण के माध्यम द्वारा एक ओर ग्रामोद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करना चाहते थे, वही सामाजिक अन्याय को रोकने के लिये तथा पूंजी के संग्रह एवं एकाधिकार को केवल गिने चुने हाथों में सीमित होने से बचाने के लिये औद्योगिक विकेन्द्रीकरण को ही एकमात्र उपाय मानते थे। उनका औद्योगिक विकेन्द्रीकरण का विचार स्वप्न मात्र नहीं आधुनिक जापान में औद्योगिक विकेन्द्रीकरण द्वारा प्रत्येक ग्रामीण परिवार छोटे - छोटे गृह उद्योगों द्वारा छोटे - मोटे कलपुर्जे तैयार करते है, जिन्हें सम्मिलित करके बड़ी मशीनों का उत्पादन किया जाता है इसे ग्रामीण जीवन को स्वावलम्बी बनाने में जबरदस्त सफलता प्राप्त हुई है, वही जापान आर्थिक विकास की दृष्टि विकसित देशों की अग्रिम पंक्ति में प्रतिष्ठित है। घरेलू उद्योगों के सरंक्षण के लिये उन्होनें 'स्वदेशी' को महत्व दिया। आज जापान और साउथ कोरिया ने स्वदेशी विचार को पूरी तरह अपना कर विकसित देशों की श्रेणी में अपने को मजबूती से खड़ा किया है।

" They did borrow foreign capital and technology, but did not encourage multinational's investment. South Koria's Industraial competence must be considered as resulting primarily from indegenous efforts." [41]

निश्चित रूप से स्वदेशी विचार स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था के निर्माण का सशक्त आधार है। स्वेदेशी विचार द्वारा एक और लोगों में स्वाभिमान एवं राष्ट्रीयता की भावना मजबूत होती है वहीं लोगों कों कठिन परिश्रम द्वारा अपनी अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण की प्रेरणा भी मिलती है।

विनोबा जी ने गांधी जी के ट्रस्टीशिप का विनियोग भूदान, ग्रामदान एवं संपत्तिदान के माध्यम से आर्थिक विषमता को मिलने के लिये किया। इस सन्दर्भ में उनकी सबसे बड़ी देन है यही है।

---

39. विनोबा साहित्य - खंड - 18 पृष्ठ - 282

40. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 186

41. Westphall Rhee and Pursell "Korean Industrial competence where it came from" world staff working paper, 1981 P - 169

क्योंकि "दान के द्वारा भूमि, संपत्ति की समस्या का हल निकालना और स्वावलम्बन युक्त परस्पर विश्वासपूर्ण समाज की रचना की कल्पना करना ट्रस्टीशिप का व्यापक प्रयोग है।" (42)

विनोबा जी की उपर्युक्त आर्थिक विचारों से स्पष्ट होता है वह एक ऐसी आर्थिक संरचना के निर्माण के प्रति सचेष्ट है, जो हिंसा, शोषण, एवं अन्याय से मुक्त हों। जहाँ आर्थिक नीतियों का नियमन इस प्रकार से हो कि सभी एक साथ शान्ति, सुख और आनन्द से जीवन बिता सके। वह सहयोगपूर्ण आर्थिक जीवन को ही मानव के सच्चे एवं सार्थक विकास की कसौटी मानते है क्यों कि उनका मानना है प्रतिद्वन्दितापूर्ण आर्थिक जीवन का आवश्यक परिणाम विषमता शोषण एवं स्थार्थपरता है। उनके शब्दो में "स्पर्द्धा का यह सिद्धान्त इतना मारक है कि भाई - भाई के बीच भी दरार पैदा कर देता है।" (43) अतः समाज से इन बुराइयों को समूल नाश किये जाने के लिये वह आर्थिक संरचना का निर्माण उपनिषद में निहित इस आधार वाक्य के अनुसार करना चाहते है "ईशावास्यामिदम् सर्व यत्किंचम जगत्याम जगत्। तेन व्यक्तेन भुंजीथाम .... अर्थात यह समस्त जगत् ईश्वरमय है और सर्मपण करके ही प्रसाद के रूप में उसका भोग करना चाहिये।" (44)

उनके अनुसार इस सत्य विचार से ही आर्थिक क्षेत्र में उस शक्ति का आविर्भाव होगा जिसमें इस देश की गरीबी, बेकारी, असमानता एवं अन्याय से लड़ने की भरपूर शक्ति है।

---

42. डा० दशरथ सिंह, गाँधीवाद को विनोबा की देन, पृष्ठ - 437

43. विनोबा साहित्य - खण्ड - 18 पृष्ठ - 3

44. पूर्वोक्त - खंड - 18 पृष्ठ - 28

(क) आध्यात्मिक मान्यतायें [1]

विनोबा जी आध्यात्मिक संत थे। धर्मनिष्ठ हिन्दु परिवार में जन्में विनोबा जी ने इस धर्म के उदारतत्वों - सहिष्णुता, दया, क्षमा, करूणा, एवं संयम को बचपन से ही आत्मसात कर लिया था। जीवनपर्यन्त ब्रहमचर्य व्रत का पालन कर इन्होनें कठोर अध्यात्मिक साधना की। उनकी तत्वमीमांसा का मूल स्रोत, वेद, उपनिषद पुराण एवं गीता है। साथ ही उन पर गांधी, संत ज्ञानेश्वर और शंकर के अद्वैतवाद का विशेष प्रभाव रहा। वेद, वेदान्त एवं गीता के तत्वदर्शन से विनोबा जी सर्वाधिक प्रभावित थे जैसा कि उन्होनें स्वरचित श्लोक में कहा है कि -

"वेद, वेदान्तम् गीतानाम विनुना सार उद्वत :।

ब्रहम सत्यम, जगत स्फूर्ति, जीवनम सत्यशोधनम।

अर्थात विनय में (विनोबा जी का लघु नाम) वेद, वेदान्त एवं गीता का सार ग्रहण किया है कि ब्रहम सत्य, जगत उसकी स्वयं स्फूर्त अभिव्यक्ति है - जीवन का उद्देश्य उस सत्य का शोधन है" [2]

विनोबा जी ने गीता का सरल भाष्य 'साम्यसूत्र' में प्रस्तुत किया है। उन्होने गीता को साम्ययोग कहा। उनके शब्दों में "साम्ययोग मानव में भेद नहीं करता, बल्कि मानव आत्मा और प्राणीमात्रकी आत्मा में भी बुनियादी भेद नहीं करता [3]।" यह आत्मा की एकता पर आधारित है। गीता में निहित से इस सम्पूर्ण विचार को विनियोग उन्होने समाज में स्त्री, पुरुष, अमीर - गरीब एवं मालिक- मजदूर के बीच विद्यमान असमानता के निराकरण हेतु किया। इसी प्रकार उन्होने गीता में वर्णित कर्म, विकर्म और अकर्म की सम्यक व्याख्या की।

---

1. विनोबा जी ने अध्यात्म को ब्रह्मविद्याशास्त्र, तत्वदर्शन, आत्मज्ञान इन सभी का पर्याय माना है - इसका सन्दर्भ विनोबा भावे - स्थिति प्रज्ञदर्शन - पृष्ठ - 18 एवं विनोबा - 'तीसरी शक्ति' पृष्ठ - 77 में उपलब्ध है।
2. विनोबा साहित्य खण्ड - 1 वेद चिन्तन - पृष्ठ - 101
3. विनोबा साहित्य खण्ड - 18 पृष्ठ - 5

उनके अनुसार "कर्म का अर्थ है स्वधर्माचरण की बाहरी स्थूल प्रक्रिया [4]।" गीता हमें निष्काम कर्म की शिक्षा प्रदान करती है, जब मनुष्य की कर्म करते हुये फल से दृष्टि हट जाती है, तब स्वधर्मरूप कर्म का अविभवि होता है। विकर्म अर्थात "कर्म की स्थूल बाहरी प्रक्रिया में चित्त को लगाना .... निष्काम कर्मयोग तभी सिद्ध होता है, जब हमारे बाह्रय कर्म के साथ अन्दर से चित्तशुद्धि रूपी कर्म का संयोग होता है [5]।" उन्होनें कहा इसी कर्म और विकर्म के संयोग से अकर्म का निर्माण होता है। जब कर्म करते हुये कर्म का बोझ बुद्धि और ह्रदय पर पड़ता। कर्म करके भी अकर्ता रहते है। कर्म का कर्मत्व उड़ जाता है। मन की यह निर्विकार स्थिति ही अकर्म है [6]।" विनोबा जी ने गीता - प्रवचन, गीताई चिंतनिका एवं स्थितयज्ञ दर्शन में सम्पूर्ण गीता तत्व दर्शन को शास्त्रकार के रूप में विश्लेषित किया है। इस रूप में इस देश की आध्यात्मिक परम्परा में उनके विचार सूत्ररूप में प्रतिष्ठित हो गये है।

विनोबा जी एकीकृत मानवता के समर्थक थे। एकीकृत मानवता की खोज के लिये उन्होनें हिन्दु धर्मशास्त्रों के साथ-साथ कुरान, गुरुबोध (शंकराचार्य), धम्मपद, जपुजी एवं बाइबिल आदि का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी धर्मो में मानवता को एक करने का लक्ष्य है। उनके शब्दोंमें "गीता का उपदेश है कि हर एक को अपने-अपने धर्म पर चलना चाहिये .... कुरान कहता है, हर एक कौम के लिये भगवान ने रसूल भेजें है, जितने रसूल भेजे है सबकी जमात एक है। .... ईसा अपने शिष्यों से कहते है कि तुम यह न समझो कि तुम ही मेरे शिष्य हो और तुम्हारे ही मकान मे में रहता हूँ दूसरे भी मेरे मकान में पड़े है [7]।" विनोबा जी ने कहा ईश्वर सत्य, प्रेम एवं दया का प्रतीक है। "ईसाइयों ने ईश्वर को प्रेममय (गाड इज लव) कहा है। इस्लाम ने परमेश्वर को दयामय बताते हुये 'रहीम रहमान' कहा है। उपनिषदों ने परमेश्वर को सत्य स्वरूप कहा है "सत्यम ब्रहम" [8] अतः सभी धर्म सार रूप से एक है।

---

4. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 गीतामृतम - (1) पृष्ठ - 35
5. पूर्वोक्त
6. पूर्वोक्त पृष्ठ - 38
7. विनोबा साहित्य खण्ड - 5 वेदचिंतन - पृष्ठ - 291-292
8. पूर्वोक्त पृष्ठ - 289

विनोबा जी के आध्यात्मिक चिंतन में सबसे महत्वपूर्ण बात (अध्यात्म और विज्ञान) के समन्वय की कल्पना हैं। विनोबा जी ने विज्ञान युग में विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय पर बल दिया। उन्होनें कहा "आगे की दुनिया में विज्ञान और आत्मज्ञान ही रहेगा सियासत और मजहब खत्म होगें। क्योंकि राजनीति आदमी को जोड़ने की बजाय तोड़ने का कार्य करती है" और नाना प्रकार की उपासनायें, आउट ऑफ डेट (काल ब्राह्य) हो गयी है, जो हृदय को संकुचित बनाती है। और एक मानव को दूसरे मानव से तोड़ती है।" इस सन्दर्भ में उन्होनें दो समीकरण प्रस्तुत किये [9]।

राजनीति + विज्ञान = सर्वनाश

आध्यात्मिकता + विज्ञान = सर्वोदय।

उन्होनें कहा "मनुष्य रूपी पंक्षी के दो पंख है, एक आत्मज्ञान और दूसरा विज्ञान इन दोनों का ठीक ढंग से समत्व (संतुलन) रखकर ही मानव का विकास होगा [10]।" विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय के सन्दर्भ में उन्होनें महत्वपूर्ण तर्क प्रस्तुत किये है -

1. आत्मज्ञान और विज्ञान दोनों पूरक है। आत्मज्ञान जीवन की दिशा निर्धारित करता है। तो विज्ञान जीवन के लिये कार्यो को सम्पन्न करता है। यदि एक ऑख है तो दूसरा पैर [11]।" आइस्टीन ने भी कहा था, "Science is lame without religion and religion is blind with out Science" [12]

2. विनोबा जी के अनुसार विज्ञान को आत्मज्ञान (अध्यात्म) का मार्गदर्शन जरूरी है क्योंकि "विज्ञान नीति निरपेक्ष होता है। ऐसी शक्ति को जैसा मार्गदर्शन मिलेगा तदनुसार उसका उपयोग दुनिया में होगा। गलत मार्गदर्शन मिलता है तो वह नरक का मार्ग बन जाता है। सही मार्गदर्शन मिलता है तो वह स्वर्ग मे ले जाता है .... क्योंकि विज्ञान में दोहरी शक्ति है - विनाश शक्ति और सेवा शक्ति .... विज्ञान और तकनीकी का व्यवहार में कहाँ तक उपयोग हो ....

---

9. श्री मन्नारायण 'ऋषि विनोबा' पृष्ठ - 292
10. विनोबा (लेख) 'वैज्ञानिकों से' मैत्री (पत्रिका) अगस्त 1991 पृष्ठ - 315
11. विनोबा भावे - आत्मज्ञान और विज्ञान पृष्ठ - 93
12. B, Russel, The Science to save us from Science, 1950 quoted by D.S. Kothari in address on 'Science and Ahinsa' Ahamedabad, Gujrat Vidyapeeth (विद्यापीठ) 6.4.1983 P-6

इसका निर्णय आध्यात्म देगा [13]।" विज्ञान और आध्यात्म के समन्वय में मानवता की समस्त समस्याओं का हल अहिंसा से होगा। बरट्रेन्ड रसल ने भी कहा है। " Science by it self can not supply us with out ethic" [14]

3. विनोबा जी के अनुसार अध्यात्मिकता धर्म से भिन्न है। "धर्म या मजहब के रूप देश और काल के अनुसार अलग-अलग हो सकते है। परन्तु अध्यात्मिकता सत्य, प्रेम और करूणा के समान सार्वत्रिक और शाश्वत है .... भगवान का डर और दीन दुखियों की सेवा ही अध्यात्मिकता का मुख्य रूप है[15]।" विज्ञान की सृष्टि का अध्ययन मन की भूमिका से ऊपर उठकर करता है"[16] अतः इसमें रागद्वेष, रूचि - अभिरूचि का प्रश्न नही उठता। इसके अर्न्तगत बाह्य सृष्टि और मन दोनो का ज्ञान आ जाता है अतः इसमें सार्वभौमिकता होती है।

विज्ञान और अध्यात्मिकता, धर्म को सही दिशा दे सकते है विज्ञान धर्म को मानसिक धरातल और कल्पना से परे हटाकर ज्ञान का ठोस आधार दे सकता है और आध्यात्मिकता धर्म को सभी धर्मो एवं प्राणीमात्र की एकता का ज्ञान देकर सच्चे मानव धर्म के रूप में प्रतिष्ठित कर सकती है। विनोबा जी का समस्त अध्यात्मिक चिंतन अविरोधी समन्वय पद्धति एवं शास्त्रीय व वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित है। और इसी के आधार पर ईश्वर, आत्मा, मोक्ष, पुनर्जन्म, इत्यादि। तात्विक धारणाओं का विकास किया जाता है। जिसका सम्यक परीक्षण क्रमवद्ध रूप से करना अनिवार्य है।

(क) ईश्वर

विनोबा जी ने ईश्वर का अर्थ निरूपण करते हुये कहा - "जहॉ पर कारण - कार्य परम्परा का अंत हो जाता है, जिससे परे किसी बात की कल्पना नहीं की जा सकती जो जड़ - चेतन शून्य हो, फिर भी जिसमें सभी आ जाये वहीं परम कारण या केवल सत् परमेश्वर है।"[1] उनके अनुसार ईश्वर

---

13. विनोबा - वैज्ञानिकों से - पृष्ठ - 316 - 317
14. quated by D.S. Kothari, Ibid, P - 5
15. श्री मन्नारायण - 'ऋषि विनोबा'
16. विनोबा भावे 'तीसरी शक्ति' पृष्ठ - 78
1. विनोबा भावे - गीताई चिंतनिका - पृष्ठ - 90

शाश्वत आत्मा है। वह सम्पूर्ण सृष्टि और प्रत्येक प्राणी में विराजमान है। "वह जीवित और अजीवित अपनी आत्मा एवं दूसरो के आत्मा में सर्वत्र व्याप्त है[2]।" उनके अनुसार "माँ के रूप मे परमेश्वर की पहली मूर्ति हमारे पास है .... श्रुति कहती है मातृदेवो भव .... वह वत्सलता के रूप में खड़ी है .... उस माता की व्याप्ति बढ़ा लें और बन्देमातरम् कहकर राष्ट्रमाता की फिर अखिल भू – माता पृथ्वी की पूजा करे। माता तो निमित्तमात्र है, परमेश्वर उसमें अपनी वत्सलता डालकर उसे नचाता है।"[3] पिता, गुरू, संत एवं बालक इन सबमें ईश्वर का अधिवास है"[4]
मानव की सौम्यतम एवं पावन मूर्तियों में स्थित होने के साथ-साथ ईश्वर सृष्टि के प्रत्येक मनोहारी रूप सूर्य, पवन, ऊषा, नदियों एवं विशाल सागर में स्थित है। वैदिक ऋषि 'उषा' से कहते है "तू जो परमेश्वर की संदेशवाहिका है तुझे देखकर परमेश्वर की पहचान मुझे न हो, उसके स्वरूप का ज्ञान न हो, तो फिर मुझे परमेश्वर का स्वरूप कौन समझा सकेगा।" [5] उन्होनें कहा "गंगा के रूप में परमेश्वर की करूणा जगत में प्रवाहमान है [6]। पवन भगवान के दूत के रूप में हमारे हृदय को छूती है हमे जागृत करती है, हमारे कानों में गुनगुनाती है। [7] विनोबा जी के अनुसार ईश्वर और मानवीय मूल्यों में कोई विशेष भेद नहीं है। "ईश्वर तो शुभगुणों की मूर्ति है। यह गुणों के रूप में प्रकट होता है। पर गुणों के चारों और दोषों को आवरण जमा ही रहता है। जब गुण ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त करेगें तभी ईश्वर का दर्शन होगा।" [8] "गुण स्वरूप होने के कारण वह भिन्न व्यक्तियों में सदगुणों के रूप में आवश्यकतानुसार प्रकट होता है। [9] उनके मत में मनुष्य के हृदय में जो पवित्र भावनायें है उसका मूर्तरूप ईश्वर है। जैसे "विद्या प्राप्ति में लगे मनुष्य के भगवान का रूप सरस्वती है, दुर्बल, मनुष्य के लिये ईश्वर शक्ति मय

---

2. बसन्त नरगोलकर 'दि क्रीड आफसेन्ट विनोबा' पृष्ठ – 55
3. विनोबा भावे – गीता प्रवचन अध्याय – 10 पृष्ठ – 105 – 106
4. पूर्वोक्त
5. पूर्वोक्त – 107
6. पूर्वोक्त
7. पूर्वोक्त
8. विनोबा चिंतन अंक – 20 – 21 पृष्ठ – 402
9. बसन्त नरगोलकर 'दि क्रीड आफ विनोबा' पृष्ठ – 66

हो जाता हैं फिर इन गुणों को अलग-अलग रूप दे दिये जाते है और परमेश्वर के रूप बनते है। [10] इसी गुणधर्म के अनुसार हमारे यहाँ "अनंता विश्वे देवा को मान्यता दी गयीं। जैसे - सूर्य देवता - प्रेरणा, आपोदेवता - श्रद्धा, गृह देवता - स्थिरता वन देवता - स्वतंत्रता" [11] हिन्दू धर्म में स्थित अवतार मीमासा भी परमेश्वर के गुण धर्म के विकास पर आधारित है। **उनके शब्दों में -**

"अवतार शरीर का नहीं, वरन मानव आत्मा का होता है। जहाँ सत्यनिष्ठा प्रकट हुई वह राम के रूप में अवतरित हुई। जहाँ निष्काम कर्म प्रकट हुआ वह कृष्ण बन गया। जहाँ करूणा मूर्तिवान हुई बुद्ध के स्वरुप में ढ़ली, मानवता प्रकट हुई अवतार हो गया।" [12]

विनोबा जी के अनुसार मूर्तिपूजा ईश्वर के प्रति भक्त की प्रबल भावना का प्रतीक है। इस भावना को वह कृति द्वारा प्रकट करने लगता हैं उनके शब्दों में "जैसे पात्र में रस परिपूर्ण भर जाने पर वह बाहर बहने लगता है वैसे ही भक्ति भावना अंदर परिपूर्ण भरकर बाहर बहने लगती है यही मूर्तिपूजा है" [13] यह मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं का प्रकटीकरण है। साथ इस आक्षेप का कि "जब ईश्वर प्रत्येक प्राणी में समाहित है, तो उस प्राणी की अपेक्षा करके पत्थर की उपासना करना यह धर्म नहीं है।" [14] विनोबा जी सारपूर्ण उत्तर प्रस्तुत करते है "मानव सेवा व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है पर एक निर्विकार पत्थर को प्रतीक मानकर ईश्वर का आरोपण करके उसकी पूजा करके व्यक्ति ने अपने को अंहकार शून्य बनाने का प्रयास किया है। मूर्ति पूजा में मूर्ति प्रमुख नहीं है।" [15]

इस प्रकार विनोबा जी ने ईश्वर को पूर्ण, सर्वव्यापक एवं विभिन्न प्रकार के मूल्यों एवं शक्तियों का प्रतीक माना हैं। डा० दशरथ सिंह के अनुसार "विनोबा जी ने ईश्वर को मूल्यात्मक रूप में देखने कारण आस्तिक एवं नास्तिक दोनों प्रकार विरोधी दर्शनों में समन्वय किया है। नास्तिक दर्शन आत्म-प्रयत्नवाद में ही समाप्त होता है। इसमें ईश्वरीय कृपा का कोई स्थान नहीं है। आस्तिक - दर्शन

---

10. विनोबा साहित्य खण्ड - 19 धर्माकृत चरितामृत पृष्ठ - 91 - 92
11. विनोबा वेदचिंतन - पृष्ठ - 141
12. पूर्वोक्त
13. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 50 - 51
14. पूर्वोक्त
15. पूर्वोक्त

(बेंदात) मोक्ष की प्राप्ति के लिये ईश्वर – विश्वास एवं उसकी कृपा को आवश्यक मानता है" [16] उनके अनुसार "विनोबा जी नास्तिक और आस्तिक दर्शन में कोई मौलिक भेद नहीं देखते। उनके अनुसार नास्तिक आत्मप्रयत्नवाद में विश्वास करने के कारण अपनी सीमित शक्ति पर ही भरोसा रखता है परन्तु आस्तिक इससे एक कदम बढ़कर असीम शक्ति में भी विश्वास रखता है। पहला निषेधात्मक भाषा का प्रयोग करता है दूसरा भावात्मक भाषा। लेकिन दोनों ही आत्म चेतना का विकास चाहते है।" [17]

(ख) आत्मा

विनोबा जी के अनुसार आत्मा शब्द की उत्पत्ति 'आत्' धातु से हुई है, जो मूलतः 'अस' और 'भू' के बीच का शब्द है।" [18] अस् का अर्थ है केवल होना। अर्थात यह निर्गुण तत्व का सूचक है। 'भू' का अर्थ है विविध भावयुक्त होना यह सगुण अवस्था है। अतः आत्मा की अभिव्यक्ति सगुण और निगुर्ण दोनों रूपों में होती है। आत्मा अगर अखण्ड एवं सर्वव्यापक है। [19] वह सर्वशक्तिमान एवं सभी प्राणियों में अन्तर्व्याप्त है। [20] शरीर में चेतना तथा प्राणशक्ति आत्मा की चैतन्य शक्ति का परिणाम है। उनके अनुसार आँखों से हम जो देखते है वह क्षुद्र शरीर है, इस बाह्रय मूर्ति के अन्दर चित्तशुद्ध रूपी सारभूत आत्मा विद्यमान है। जिस प्रकार "किसी फल के ऊपरी कवच – छिलका को निकालकर उसका भीतरी गूदा चखना पड़ता है।" [21] उसी प्रकार हमारा स्वधर्म है कि "मै केवल देहरुप हूँ" इस भ्रान्तिपूर्ण विचार को त्यागकर सर्वग्राही दृष्टि से अपने आत्मतत्व को पहचाने। सृष्टि में अनंत वस्तुयें और अनंत वृत्तियां दिखाई देती है, उनमें चैतन्य रूप आत्मा विद्यमान है।" [22] जैसे क्रोधी मनुष्य का क्रोध, प्रेमी मनुष्य का प्रेम दुःखी का क्रंदन आनंदी का हर्ष, आलसी की नींद की और झुकाव, उद्योगी का कर्मस्फुरण

---

16. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ – 133
17. पूर्वोक्त
18. विनोबा – आत्मज्ञान और विज्ञान पृष्ठ – 32
19. पूर्वोक्त – 32
20. विनोबा साहित्य – खण्ड – 3 गीतामृतम – 1 पृष्ठ – 15
21. विनोबा साहित्य खण्ड – 3 पृष्ठ – 139
22. विनोबा 'गीता प्रवचन' पृष्ठ 86 – 87

ये सब एक ही चैतन्य शक्ति के खेल है।

विनोबा जी के अनुसार आत्मा नश्वर है एवं देह क्षणभंगुर परिर्वतनशील और संकीर्ण है। आत्मा और शरीर में मौलिक विभिन्नतायें हैं। (23)

1. यह देह तो पल – पल बदलती रहती है। बचपन, जवानी और बुढ़ापा – इस चक्र का अनुभव किसे नहीं है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार – हर सात वर्षो के बाद मनुष्य का शरीर पूर्ण रूप में बदल जाता है और पुराने खून की एक बूंद भी शेष नहीं रहती। जबकि आत्मा सनातन अविनाशी एवं व्यापकत्तम तत्व है। वह तो एक अखण्ड बहता हुआ झरना है। उस पर अनेक देह आते और जाते है।

2. देह साधन है परन्तु देहाशक्ति के कारण हम देह को साधन – रूप में काम में न लाकर उसी में डूब जाते है। और आत्मसंकोच कर लेते है। यह देह जो पहले से नगण्य है और भी क्षुद्र बन जाती है। आत्मा चैतन्य और शक्तिरूपी है, अतः अविनाशी होना स्वाभाविक हैं। चूँकि चैतन्य का कोई आकार नहीं होता अतएव आत्मा का प्रवाह व्यापकत्व की ओर होता है परन्तु यह अलग बात है हमारी आत्मा व्यापक होने के लिये छटपटाती रहती है वह चाहती है कि सारे जगत को गले लगा लें परन्तु हमने आत्मा को कैद कर रखा है।

उपरोक्त मूलभूत अन्तर वस्तुतः आत्मा के सगुण और निर्गुण रूपों के बीच ही है, क्योंकि "निर्गुण दृष्टि से विचार करने पर आत्मा अजर, अमर और स्वयभू है परन्तु सगुण दृष्टि से यह प्रतिक्षण जन्म लेता है और मरण का विषय बनता है।" (24) परन्तु व्यक्ति अज्ञानतावश "मै केवल देहरूप ही हूँ" की कल्पना में रहता है। और इस देह से परे उसमें जो अविनाशी और निष्कलंक आत्मतत्व है, जिसके कारण उसे यह शरीर प्राप्त हुआ है सर्वथा उपेक्षा करता है अर्थात जो नश्वर है उसके लिये नाना आडम्बर रचता है और अंतरंग में छिपे अविनाशी फल (आत्मा) को चखने का प्रयास ही नहीं करता इस देहशक्ति के कारण वह सासांरिक विषय – वासनाओं में लिप्त रहता है। और स्वतः इससे उसका विकासमार्ग अवरुद्ध होता हैं। अतएव देह की क्षुद्रता और आत्मा की अमरता के ज्ञान हेतु आवश्यक है। कि व्यक्ति आध्यात्मिक साधना द्वारा मन की दुष्प्रवृत्तियां का विनाश करें। फिर जब "चित्त के सूक्ष्म मैल धो डालने

---

23. विनोबा साहित्य – खण्ड – 3 गीतामृतम – 1 पृष्ठ –17

24. विनोबा – गीताई चिंतनिका पृष्ठ – 20

के लिये, अपने प्रयत्नों को अपर्याप्त देखकर भक्त जब पुकारता है, तो वह अनाथ – नाथ सहायता के लिये दौड़ पड़ता है।" (25) इसके बाद तो उसका सारा जीवन परमेश्वर मय हो जाता है "केवल देह का पर्दा शेष रहता है जिसके हटते ही जीव और शिव आत्मा और परमात्मा एक हो जाते है" (26) एवं 'तत्त्वमसि' – 'वह आत्मरूप तू है' का पवित्र विचार हृदय में समा जाता है।

इस प्रकार विनोबा जी आत्मचिंतन गीता दर्शन पर अवलम्बित हैं। उसी आधार पर वह आत्मा को अमर, सर्वव्यापक एवं अखण्ड मानते है। साथ ही उन्होनें आत्मा को शक्यता मूर्ति मानकर उसकी परिणामी नित्यता को स्वीकार कर एक वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की, जो हमें प्रगति के पथ पर उत्प्रेरित करती है।" (27)

(ग) पुनर्जन्म विचार

विनोबा जी को पुनर्जन्म में आस्था है। उनका मानना है कि मृत्यु के बाद भी जीवन रहता है – "चाहे सूक्ष्म रूप में या स्थूल रूप मे, निराकार रूप में रहे या साकार रूप में देहकारी रूप में रहे या देहविहीन रूप में – ये छः भेद हो सकते है, लेकिन जीवन अखण्ड है।" (28) पुनर्जन्म के समर्थनों में वह कई तथ्य प्रस्तुत करते है।

(क) सृष्टि का स्वरूप अनादि एवं अनंत है। मानव इस सृष्टि में कब से है और कब तक रहेगा – यह किसी को मालूम नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि वह पहले भी सृष्टि में था और बाद में भी रहेगा। यदि यह कहा जाये कि मानव पहले से नहीं था और मरने के बाद भी नहीं रहेगा, तो कई समस्यायें खड़ी हो जायेगी। कई सवाल उलझन मे डाल देगें। अतः सृष्टि के स्वरूप को अनादि एवं अनंत मानना ही उचित है। ऐसा मान लेने पर पुनर्जन्म में विश्वास स्वाभाविक हो जाता है। (29)

(ख) कर्म विपाक पुनर्जन्म को सिद्ध करता है – विनोबा जी भारत में विकसित कर्म – विपाक को बहुत विकसित शास्त्र मानते है इसके अनुसार "देह टिकती है कर्म – वेग से। पूर्व कर्म असंख्य होते है। उनमें

---

25. विनोबा साहित्य खण्ड – 3, पृष्ठ 150-151
26. पूर्वोक्त, पृष्ठ – 151
27. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ – 184
28. विनोबा साहित्य – खण्ड – 14 अध्यात्म और आश्रम – पृष्ठ – 16
29. पूर्वोक्त

से एक विशिष्ट अंश उपभोग के लिये देहरूप में प्रवृत्त हुआ है।" (30) प्रायः देखा जाता है कि स्वस्थ माता - पिता से जन्म लेने के बाद भीं कोई बच्चा जन्म लेने के कुछ समय बाद से हीं सुख - दुःख भोगना शुरू कर देता है इन सबका जिम्मेदार कौन है ? निश्चित ही पूर्वजन्म के पुण्य और पाप ही इसका कारण हैं। कर्मफल भोगना पुनर्जन्म को सिद्ध करता है।

(ग) साक्षात अनुभव

साक्षात अनुभव के द्वारा हमें अपनी पिछले जन्म की बातों का स्मरण होता है। जैसे - जैसे कार्य - करण परम्परा खुलती है अर्थात हमारी बुद्धि पूर्व संस्कारों से मुक्त होती जाती है, और चित्त निर्मल होता जाता है और वैसे वैसे हमें पूर्व जन्म की धुंधली मोटी - मोटी बातों का स्मरण होने लगता है। गौतम बुद्ध एवं ज्ञानदेव को अपने पूर्वजन्म की बहुत सी बातों का स्मरण होता था। विनोबा ने स्वयं अपने जीवन के अनुभवों के सहारे भी इस सिद्धान्त को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। उनके शब्दों में "सिनेमा एवं धूमपान आदि में उनकी अरूचि का कारण यही है कि पूर्वजन्म में वह इनकी बुराइयों को अनुभव कर चुके होगे इसलिये इस जन्म में इनकी इच्छा नहीं हुई।" (30) इसी तरह अन्य कई उदाहरणों से वह पूर्व जन्म की यर्थाथता प्रमाणित करने का प्रयास करते है जैसे "एक बार विनोबा अपनी माता के साथ पूना में किसी दूसरी जगह जाने वाले थे उस समय वह तीन - चार साल के थे। उन्होनें उस स्थान पर पहुँचने से पूर्व ही बता दिया था कि वह कैसा है। दूसरे विनोबा जी को बंगला सीखने में कम समय लगा था इसका कारण अनुमान करते है कि पूर्वजन्म में वह बंगाली थे।" (32)

विनोबा जी ने इस धारणा का खण्डन किया कि मानव का पुर्नजन्म सदैव उच्च योनियों में ही होता है। उनके अनुसार यह सामान्य नियम नहीं है। पुर्नजन्म किस योनि में होगा यह मनुष्य की वासना के प्रकार और तीव्रता पर निर्भर है। जैसी भावना होगी वैसे ही योनि प्राप्त होगी।

(घ) मोक्ष -

भारतीय जीवन दर्शन का अन्तिम ध्येय मोक्ष है। जब आत्मा जीवन मृत्यु के चक्र से विमुक्त

---

30. पूर्वोक्त पृष्ठ - 19
31. पूर्वोक्त पृष्ठ - 17 से 19
32. विनोबा चिन्तन अंक 7 - पृष्ठ - 12 - 13

होकर परमात्मा में एकाकार हो जाती है, ऐसी महामिलन की स्थिति को मोक्ष कहते है। विनोबा जी के अनुसार "मोक्ष का अर्थ है मोह को खत्म करना। 'मो' यानि मोह और 'क्ष' यानि क्षय। मोह का क्षय यानि मोक्ष। मनुष्य को अनेक प्रकार का मोह होता है। संसार की आसक्ति, काम की आसक्ति, देह की आसक्ति, मित्रों की आसक्ति इत्यादि, अनेक प्रकार की आसक्तियां होती है, मोह होता है। उस मोह से छुटकारा पाना यानि मोक्ष। गीता में भी कहा है नष्टों मोहो 'स्मृतिर्लब्धा' .... (गी 18-73) मेरा मोह नष्ट हो गया आत्म-जागृति जागृत हो गयी, अब मै निःसन्देह हो गया।" (33) उनके अनुसार मुक्ति का आशय क्रोध, कामेच्छा भ्रम आदि संकीर्णताओं से ऊपर उठकर व्यक्तिगत अहम से छुटकारा प्राप्त करके अपने को समाज के व्यापक स्वरूप में समन्वित करना है, अतः मोक्ष है - "आत्म पहचान की अवस्था जिसमें मनुष्य की सारी वृत्तियां विलीन हो जाती है और वह पूर्ण निवृत्ति की अवस्था को प्राप्त करता है।" (34) उनके अनुसार गीता में ब्रह्मनिर्वाण को परमलक्ष्य बताया गया "ब्रह्मनिर्वाण अर्थात मोक्ष का अर्थ ब्रह्म में मिलना, घुल जाना लीन हो जाना है।" इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रह्म किसी दूसरी जगह पर हैं उसमें लीन होने के लिये कहीं जाना है।" (35) ब्रह्मा तो हमारे अन्दर पहले से ही मौजूद है बस देहाभिमान रूपी परदा हटाकर ब्रह्म में लीन हो जाना हैं।

देह को फेंककर व्यापकतम होना मोक्ष है। इस स्थिति में भी लोकसंग्रह का कार्य चलता रहता है। विनोबा की राय में "मोक्ष न तो स्थूल सक्रियता की अवस्था है न निष्क्रियता की। यह प्राणी की सूक्ष्य क्रिया की अवस्था है जिसका परिणाम अधिक शक्तिशाली होता है।" (36) उनके शब्दों में यह धारणा गलत है कि "जंगल में जाकर तपस्या करके विकारो को छोड़कर मुक्ति मिलती है बल्कि सारे समाज के लिये अंहकार छोड़ना ही मुक्ति है त्याग है, भक्ति ही सन्यास है।" (37)

विनोबा जी ने राग - द्वेष, अहम - वासना आदि के त्याग अर्थात मोक्षावस्था प्राप्ति के लिये महत्वपूर्ण साधन इस प्रकार निर्धारित किये है - (1) सूक्ष्य कर्मयोग (2) सामूहिक समाधि (3) साम्ययोग।

---

33. विनोबा साहित्य खण्ड - 14 'अध्यात्म और आश्रम' पृष्ठ - 10
34. विनोबा चिंतन अंक - 9 पृष्ठ - 19
35. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 गीतामृतम - भाग (1) पृष्ठ - 428
36. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 305
37. विनोबा साहित्य - खण्ड - 14 पृष्ठ - 10

(१) सूक्ष्य कर्मयोग -

विनोबा जी के मत में सूक्ष्म कर्मयोग में क्रिया की अपेक्षा वाणी, भाव, चिंतन का महत्व अधिक होता है। मतलब क्रियायें कम होने पर भी परिणाम बढ़ता जायेगा। जैसे "होम्यापैथी की दवा का होता है। उसमें दवा की मात्रा कम होती है, परन्तु घोटाई या भावना की मात्रा अधिक होती है और उससे दवा की पोटेंसी बढ़ जाती है इसी प्रकार स्थूल कर्मयोग में बाहरी क्रिया ज्यादा होती है[38] आन्तरिक शुद्धि का भाव इसमें नही होता है। सूक्ष्म कर्मयोग में चित्त की पूर्ण शुद्धि और निरहंवृत्ति (अहंकार विहीनता) एवं कर्म अलिप्तता का आग्रह होता है फलस्वरूप कर्म का बोझ हमारी बुद्धि पर नहीं पड़ता और कर्म करने के बाद भी माया - मोह के बन्धन से बंध नहीं पाते है। इससे साधक में किसी प्रकार की अहंकृति, संकल्प, वासना नहीं होती। यही मुक्ति का मार्ग है।

(२) सामूहिक समाधि -

विनोबा जी प्राचीन आध्यात्मिक साधना को त्रुटिपूर्ण मानते है "जिसमें साधकगण विद्या और मुक्ति के सम्बन्ध में 'मै' और 'मेरा' से ऊपर नहीं उठ पाते है तथा उन्हें सीमित बना देते है।" [39] विनोबा जी मानते है इस 'मै' का आत्मा से सम्बन्ध नहीं होता है बल्कि यह देह से जुड़ा क्षुद्र विचार है, आत्मा तो सर्वव्यापक है। 'मेरा' गुण, 'मेरा' दोष से मुक्त होना चाहिये क्योंकि इसके बिना मुक्ति संभव नहीं। उनके अनुसार समाधि का अर्थ है समत्वयुक्त चित्त। जिस चित्त को विकार का स्पर्श नहीं, अहंता ममता नहीं, संकुचित भाव नहीं।" [40] इसलिये वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित इस समाधि का रूप सामूहिक होना चाहिये। उनके मत में "सामूहिक समाधि में सारा समूह अपनी मन की अवस्था से ऊपर उठ जाता है। इस भूमिका में आने पर व्यक्तिगत, साम्प्रदायिक, जातीय अथवा राष्ट्रीय अहंकार समाप्त हो जाते है। तथा सम्पूर्ण समाज स्वतंत्र और तटस्थ निर्णय के आधार पर चलता है।"[41]

(३) साम्ययोग -

मोक्ष साधना के लिये भारतीय दर्शन में कई प्रकार के योगों की चर्चा हुई है। इसमें शंकर

---

38. पूर्वोक्त पृष्ठ - 117 से 118 तक
39. विनोबा साहित्य खण्ड - 14 'अध्यात्म एवं आश्रम' पृष्ठ - 279
40. पूर्वोक्त - 281
41. विनोबा चिन्तन अंक - 26 - 27 पृष्ठ - 81 - 90

का ज्ञान योग, रामानुज का भक्ति योग, लोकमान्य तिलक का कर्मयोग और गांधी जी अनाशक्ति योग को मोक्ष का साधन मानते है। विनोबा जी ने कहा "अभिधेयम परम् साम्यम। हमारा अभिद्येय या हमारे चिंतन का विषय परम साम्य है जिसकी और हमे अपने समूचे चिंतन को ले जाना है, इन्द्रियों को मोड़ना है, जिसे लक्ष्य करना है।" (42) उन्होनें गीता को साम्ययोग कहा है। साम्य का अर्थ है "संतुलन, स्थिरता, एकता, अथवा तादात्म्यता। इसमें जीवन का सर्वस्व है। इस साम्ययोग के आधार पर - आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, मानसिक, वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक साम्य की स्थापना की जानी चाहिये।" (43) साम्ययोग समन्वयात्मक तत्वज्ञान है इसमें आत्मा और शरीर का समन्वय, व्यक्ति और समाज का समन्वय, योग और सन्यास का समन्चय निहित है। जीवन में साम्ययोग की अखण्ड साधना के लिये विनोबा जी ने ज्ञानयोग भक्तियोग एवं कर्मयोग की प्रक्रिया बतलायी है।

(क) ज्ञान योग -

ज्ञानयोग की प्रक्रिया के लिये विनोबा जी ने तीन महावाक्य दिये है -

(1) महावाक्य अनुचिन्तयेत (2) ततः शासन मुक्ति और (3) आत्मशक्तेर भानात्।" (44)

(1) अनुचिन्तन के अर्न्तगत उन्होनें दो महावाक्यों तत् त्वमसि और अहम ब्रहास्मि पर बल दिया है। "तत् त्वम असि - तू वह है। अर्थात देह के अन्दर विराजमान, सीमित, मर्यादित, अल्प शक्तिवाला ऐसा जो तू मान रहा है वह तू नहीं है। बल्कि तुममे विशाल परिपूर्ण शक्ति भरी है।" (45) उनके अनुसार अहमब्रह्मस्मि का अर्थ है "मै देह से अलग हूँ।" इन "महावाक्यों के चिंतन से मनुष्य देह, मन, इन्द्रियों, वासना, भावना बुद्धि आदि से परे हो जाता है और अपनी मूल स्थिति में आता है परम् साम्य में पहुँच जाता जहाँ उसे ' आत्मशक्ति भानेत अर्थात अपनी आत्मशक्ति का भान होता है और व्यक्ति ततः शासनमुक्ति को महसूस करता है।" (46) अर्थात उस पर किसी की सत्ता नहीं चलती।

---

42. विनोबा साहित्य - खण्ड - 3 पृष्ठ - 234
43. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 310
44. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 गीतामृतम - भाग - 1 पृष्ठ - 237 - 240
45. पूर्वोक्त - 238
46. पूर्वोक्त - 243

(ख) भक्तियोग -

इसमें विनोबा जी ने ईश्वर के नाम के स्मरण की महत्ता बतलाई है। उनके अनुसार भक्तिपूर्वक ईश्वर के स्मरण से सद्गुणों का विकास होता हैं। हमारे चिन्तन में जो विगुणता, न्यूनता, कमी, खामी, एवं त्रुटि रह जाती है उसकी पूर्णता ईश्वर के स्मरण से होती है।" (47) ईश्वर के नाम - स्मरण की यह महत्ता है कि जो भी प्रयत्न हम करते है, उसमें कोई कमी रह जाती है तो उसकी पूर्ति ईश्वर करता है। व्यक्ति को किसी प्रकार की चिंता, राग एवं द्वेष नहीं रहता। उनके अनुसार श्रद्धा पर आधारित भक्ति से पुराने पाप भी खण्डित होते है। उनके अनुसार यह आश्वासन भ्रमपूर्ण नहीं वरन सत्य है लेकिन इसके लिये भावना की तीव्रता होनी चाहिये। उनके शब्दो में "अगर भाव की तीव्रता हो तो कुल का कुल शरीर स्वस्थ्य हो सकता है सब प्रकार के पाप कट जाते है, उनके परिणम कट जाते है अगर यह श्रद्धा न हो तो यह मार्ग भी मुश्किल है।" (48)

(ग) कर्मयोग -

विनोबा जी के अनुसार 'पूर्वमीमांसा' और चावकि दर्शन को छोड़कर सांख्य, योग, वेदान्त, न्याय - वैशेषिक या जैन बौद्ध सभी कर्म को बन्धनकारक मानते है।" (49) पूर्वमीमांसा और चार्वाक दर्शन ने 'कर्मभिः निः श्रेयसम कर्म' से ही मुक्ति या अन्तिम ध्येय की प्राप्ति होती है, इसकी पुष्टि की है।" (50) उनके अनुसार गीता अवश्य प्रस्थापित करती है 'अकर्म' निः श्रेयस है यह अकर्म ही साम्य की अवस्था है जिसका प्रारम्भ कर्म से होता है। "कर्म के रूप में हम जो स्वधर्माचरण करते है उसमें विकर्म अर्थात अंदर से चित्तशुद्धिरूपी कर्म का संयोग करने से अकर्म का निर्माण होता है और उससे निष्कामता आती है।" (51) इससे काम क्रोध भस्म होते है और परमज्ञान की निष्पत्ति होती है। यहीं अकर्म स्थिति है। कर्म करके भी अकर्ता रहते है कर्म का बोझ नहीं पड़ता, कर्म का कर्मत्व उड़ जाता है कर्म का भान बाकी नहीं रहता। अकर्मवस्था में साधन इतने नैसर्गिक और स्वाभाविक हो जाते है कि सारे कार्य ज्ञानी

---

47. पूर्वोक्त पृष्ठ - 244
48. पूर्वोक्त पृष्ठ - 248
49. पूर्वोक्त पृष्ठ - 250
50. पूर्वोक्त
51. पूर्वोक्त पृष्ठ - 36

को सहज लगने लगते हैं। उनके अनुसार अकर्म की दुहरी भूमिका होती है।"[52] (क) व्यक्तलिंग मेकम् या व्यक्तलिंग।

(ख) अत्यक्त लिंगम परम या अव्यक्त लिंग। दोनो ज्ञान की अवस्थायें है। एक में ज्ञानी स्थूल कार्य कम करता है, लेकिन उससे प्रतिक्षण ज्ञान, उपदेश व्यक्त होता रहता है इस ज्ञानी को व्यक्त लिंग कहेगें। दूसरे जो ज्ञान को अन्दर समेटे रहते है और सदा कर्म करते हुये परोपकार के कार्य में व्यस्त रहते हैं उन्हें थोड़ा बहुत ज्ञान की बात भी करते है इसे विनोबा जी अव्यक्त लिंगज्ञानी कहते हैं। कर्म की दृष्टि से अगर आकलन करे तो पाते है कि कर्मयोगी जो चौबीस घंटे कर्म करते है वे व्यक्त लिंग कर्मयोगी तथा जो स्वयं कर्म नहीं करते परन्तु दूसरे को प्रेरित करते है वे अव्यक्त लिंग कहलाते है। इस प्रकार ज्ञान और कर्म में कोई भेद नहीं है जो व्यक्तकर्म योग है वह अव्यक्त ज्ञानी है। एक अकर्म में कर्म को प्रेरित करता है। दूसरा कर्म में अकर्म का अनुभव करता है। अकर्म ही मानसिक साम्य की अवस्था है।

(घ) गुण विकास -

सांख्य की प्रकृति के त्रैगुण सिद्धान्त को मानते हुये विनोबा जी ने साम्यावस्था के लिये समाज, सृष्टि और चित्त के सत्व, रज और तम तीनों गुणों का शोधन करना आवश्यक मानते है। वह सत्व गुण, रजोगुण, और तमगुण तीनों का उचित स्थान जीवन में निर्धारित करना चाहते है। "जीवन में मार्गदर्शन के लिये सत्वगुण, गति के लिये रजोगुण और आराम के लिये तमोगुण चाहियें।" [53] उनके अनुसार सत्वगुण का लक्षण ज्ञान है। जीवन की बुनियाद इसी पर आधरित होनी चाहिये। यदि ज्ञान में अहंकार का भास हुआ तो सत्वगुण तमोगुण में परिवर्तित हो जायेगा। अतः नम्रता से हमें अहंकार का शोधन करना चाहिये।" [54] **रजो गुण गति का सूचक है।** उनके मत में 'वेगस्थ शमनम् स्वधर्मेण' मनुष्य के मन में तथा इन्द्रियों में वेग होता है। यह रजोगुण का परिणाम है। परन्तु उन पर नियंत्रण आवश्यक है। क्योंकि नियंत्रण न होने पर वह अपनी गति एवं शक्ति खो देगा। अतः स्वधर्म से वेग का शमन हो। इसमें अपने आपको और इन्द्रिया को समाज सेवा में लगा दे, ताकि वेग का सही दिशा में

52. पूर्वोक्त पृष्ठ - 252

53. पूर्वोक्त - 253

54. पूर्वोक्त - 266-267

उपयोग हों।" [55] तमोगुण का स्वभाव है आराम, आलस्य जड़ता। इसके लिये विनोबा जी "श्रम संजात वाणिराम एवं अर्थात शरीर परिश्रम से जो पानी निकलता है, उस पसीने से तमोगुण का शोधन किया जाये।" [56] इस प्रकार विनोबा जी त्रिगुणों को जीवन में समुचित स्थान देतें है।

इस प्रकार विनोबा जी ने समन्वयवादी दृष्टि एवं वैज्ञानिक पद्धति से मोक्ष एवं उसके साधनों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की। मोक्ष के आत्मज्ञान में उन्होनें निहित किया है कि मोक्ष का आशय है "अपने समस्त मोहों का क्षय करके, अहंकार को त्यागकर, मै को हम से काट्कर अपने को समाज में व्याप्त करना" । मोक्ष साधना के लिये सूक्ष्म कर्मयोग, सामूहिक समाधि उनकी मौलिक देन है। उन्होनें भारतीय आध्यात्मिक चिंतन के एकांकी तत्व 'मेरी मुक्ति' की जगह 'हमारी मुक्ति' का विचार दिया। उन्होने व्यक्ति और समाज दोनों के आत्मिक उत्थान को समाज की परिपूर्णता का आधार बनाया। प्राचीन आध्यात्मिक विचार 'साम्ययोग' को सामजिक स्वरूप प्रदान किया। गीता महत्ता के अनुसार " To him Samya means

I- Equality - Social, Economic, and Political

II- Equality - i.e. not to lose one's composure under any circumstances, under any Provocation (III) Identiy with all living creatures. These three are relevant to modern age." Parmasamya, Supreme identity becomes the highst ideal to be reached by man. The social, economic, and political Samya should, in fact be practised only as preparation for reaching the paramsamy." [57]

मोक्ष साधना के लिये साम्यदर्शन का यह उत्कृष्ट स्वरूप निःसन्देह भारतीय अध्यात्म परम्परा में नया आयाम है। निः सन्देह विनोबा जी ने आज के वैज्ञानिक युग में माया - मोह पाप - पुण्य पर आधारित भारतीय अध्यात्म चिंतन की प्रक्रिया को कर्म, ज्ञान एवं भक्ति की समन्वय दृष्टि से विस्तृत करने का अनूठा प्रयास किया है।

---

55. पूर्वोक्त - 262

56. पूर्वोक्त - 258

57. Geeta Mehta "Metaphysical Basis of Vinoba's Philosophy of life" Gandhi Marg - Nov. Dec. 1983

(ख) सामाजिक चिंतन

विनोबा जी के सम्पूर्ण सामाजिक चिंतन में आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों का सर्वोच्य स्थान है। उन्होनें व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की शुद्धि एवं आत्मिक विकास के लिये "सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद् अपरिग्रह, अस्तेय, शरीरश्रम, स्वदेशी, सर्वत्र, भयवर्जन, सर्वधर्मसमानत्व स्पर्श भावना अनिंदा आदि व्रतों का पालन अनिवार्य बताया।" [1] वह मानते है कि सदगुण सामाजिक उपयोगिता के लिये होते है। इसके परिणामस्वरूप कुल जीवन – दृष्टि बदल जाती है।" [2] उनके मत में यह प्राचीन धारणा असत्य है कि "इन व्रतों की आवश्यकता केवल साधकों के लिये ही है।" [3] बल्कि "सामाजिक सेवा में आध्यात्मिक मूल्यों का प्रयोग न हो उसका मुख्य प्रयोजन ही समाप्त हो जाता है .... ये तत्व जितने परमार्थिक साधना के लिये है उतने ही सेवापरायण के लिये आवश्यक है।" [4] उनके इस आध्यात्मिक समाज में सेवा, संयम और त्याग का मूल्य सर्वाधिक होगा। संतति, संपत्ति एवं भूसम्पदा पर सामाजिक स्वामित्व होगा जिसका उपभोग व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार करेगा।

विनोबा जी के मत में 'वर्तमान समाज स्पर्द्धात्मक है हम उसे भविष्य में सहयोगात्मक बनाना चाहते है।"[5] इसका आशय यही है कि वह वर्तमान अन्याय, विषमता, असहिष्णुता एवं राग-द्वेष, शोषण एवं हिंसा को मानवीय गरिमा के पतन का कारण मानते है अतएव इन बुराइयों के समूलनाश के लिये सामाजिक जीवन की संरचना सर्वोदय की मूल दृष्टि पर आधारित करते है जिसमें प्रेम, सहिष्णुता, अहिंसा समानता एवं न्याय को सामाजिक जीवन का मूलमंत्र माना गया है। श्रमनिष्ठ एवं सरल जीवन को वह इस सहयोगात्मक समाज की बुनियाद घोषित करते है। क्योंकि वह मानते है कि इसके बिना समाज से "पूंजीपति और मजदूर गरीब और अमीर, शहरवासी और ग्रामवासी स्त्रीपुरुष के

---

1. विनोबा साहित्य – खण्ड – 14 'अध्यात्म एवं आश्रम' पृष्ठ – 391 – 492
2. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 393
3. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 392
4. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 393
5. Selection from Vinoba, Ed by Vishwanath tandon 1981 - P - 111

बीच भेद नहीं मिटाया जा सकता।" [6] समाज में श्रम की प्रतिष्ठा होने से व्यक्ति इसकी गरिमा को महसूस करेगें एवं सभी छोटे - बड़े कार्यो को सामाजिक, नैतिक मूल्य समान होगा। उनके अनुसार इस समाज में स्त्री - पुरूष गरीब - अमीर व्यक्ति और समाज के हितों में परस्पर कोई विभेद नहीं होगा। लोगों के बीच पूर्ण सदभाव एवं विश्वास होगा। आर्थिक समानता, सर्वधर्म समभाव एवं अस्पृश्यता निवारण इस समाज के प्रमुख संकल्प होगें।

विनोबा जी ने समाज की विभिन्न मान्यताओं, रूढ़ियों एवं समस्याओं का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया और इसी प्रक्रिया में सर्वोदयी समाज के विशिष्ठ सन्दर्भ प्रस्तुत किये जिनमे - व्यक्ति और समाज का परस्पर सम्बन्ध, वर्णाश्रम व्यवस्था, कायिक (शरीर) श्रम, स्त्री - उद्धार एवं अस्पृश्यता निवारण इत्यादि प्रमुख है। उनके इन सामाजिक आधारों का सम्यक विवेचन अनिवार्य है ताकि उनके सामाजिक चिंतन की मूलदृष्टि एवं प्रकृति का समुचित परीक्षण हो सके -

(1) व्यक्ति और समाज - विनोबा जी के अनुसार व्यक्ति और समाज में परस्पर अटूट सम्बन्ध है। उनके अनुसार "गीता में वर्णित है हम तीन संस्थायें साथ लेकर ही जन्म लेते है .... पहली संस्था है .... हमारे आसपास लिपटा हुआ शरीर। दूसरी संस्था है - हमारे आसपास फैला हुआ विशाल ब्रह्माण्ड - यह अपार सृष्टि जिसके हम अंश है। तीसरी संस्था ही समाज जिसमें हमारा जन्म हुआ .. ..।" [7] हम जीवन पर्यन्त इन तीनों संस्थाओं का उपयोग करते है। सांख्यदर्शन अनुसार "सत्वगुण, रजगुण और तमगुण मनुष्यचित्त, समाज और सृष्टि में पाये जाते है।" [8] उनके मत में इसका आशय यही है कि इन तीनों गुणों का प्रभाव समान रूप से इन तीनों संस्थाओं पर रहता है "सत्व गुण के कारण अभय, अहिंसा सत्यविनम्रता आदि का प्रादुर्भाव होता है और रजोगुण और तमगुण के कारण प्रभाव से काम, क्रोध, लोभ, आलस्य इत्यादि आसुरी प्रवृत्तियां उत्पन्न होती है।" [9] मनुष्य "यज्ञ, दान, तप द्वारा इन आसुरी प्रवृत्तियों के शमन का प्रयत्न करता हैं।" [10] फलस्वरूप यज्ञ से सृष्टि में

---

6. विनोबा साहित्य खंड - 14 पृष्ठ - 454
7. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 गीतामृतम भाग - 1 पृष्ठ - 191
8. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 255
9. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 178 - 189 का सार
10. विनोबा चिन्तन, अंक - 17, पृष्ठ - 246

दान से समाज में और तप से शरीर में साम्यावस्था आती है।" (11)

विनोबा जी व्यक्ति और समाज में अंग - अंगी का सम्बन्ध मानते हैं उन्होनें कहा "जिस तरह शरीर के सारे अवयव मिल जुलकर कार्य करते है उसी तरह सब व्यक्तियों को मिलजुलकर काम करना चाहिये तभी समाज सुखी होगा।" (12) जिस प्रकार शरीर के अवयवों में बराबर विरोध नहीं होता है उसी प्रकार मानव के व्यापकतम स्वरूप समाज और व्यक्ति में कोई विरोध नहीं होता है। उनके शब्दों में "जीभ और पेट में क्या विरोध है ? पेट को जितना अन्न चाहिये, उतना ही जीभ को देना चाहिये, पेट ने कहा बस, जीभ को बन्द कर देना चाहिये पेट एक संस्था (अवयव) है जीभ दूसरी संस्था। इन संस्थाओं में अद्वैत है .... वास्तविक विरोध नहीं है, बल्कि सहयोग, उसी प्रकार समाज में भी है। समाज में इस सहयोग को बढ़ाने के लिये ही गीता चित्त शुद्धिपूर्वक यज्ञ, दान, तप की क्रिया का विद्यान बताती है। ऐसे कर्मो से व्यक्ति और समाज, दोनों का कल्याण होगा।" (13) इसी लिये व्यक्ति और समाज में सन्तुलन स्थापित करने के लिये विनोबा जी ने जीवन का समीकरण दो भाग त्याग और एक भाग भोग (त्याग^2 + भोग^1 = जीवन) के आधार पर किया है। इसी से व्यक्ति और समाज का सन्तुलित विकास संभव है।

अतएव विनोबा जी ने व्यक्ति और समाज में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना हैं। इसी कारण उनके सर्वोदय विचार में मनुष्य की शुद्धि के साथ - साथ शांतिपूर्ण समाज रचना का भी आग्रह है। वह व्यक्ति के सद्गुणों को सामाजिक जीवन की प्रेरणा बनाना चाहते हैं। उन के विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों में व्यक्ति और समाज के मध्य द्वैतभाव को समाप्त कर सामूहिक जीवन की धारणा को सुदृढ़ बनाते है। क्योंकि उनके अनुसार केवल व्यक्तिवादी जीवन ही सब कुछ नहीं है। हम समाज में रहते है और समाज की सेवा करके ही संतुष्टि प्राप्त करते है - हमारे समाज की कल्पना परिवार जितनी संकीर्ण हो अथवा समस्त मानवता जितनी विस्तृत। हम समाज से पृथक जीवन की कल्पना नहीं कर सकते है। *

(ख) वर्णाश्रम व्यवस्था -

विनोबा जी ने अहिंसक समाज रचना के निर्माण के लिये प्राचीन हिन्दु वर्णाश्रम को आदर्श माना है। उनके अनुसार "मूलतः चातुर्वण्य एक सहकारी संस्था के रूप से बना था उपनिषदों में इसका

---

11. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 पृष्ठ - 193
12. विनोबा के साथ निर्मला देश पाण्डे पृष्ठ - 156
13. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 पृष्ठ - 200

* पी0 डी0 नागर, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, पृष्ठ - 624

इतिहास है कि आरम्भ में केवल एक ही वर्ण था अर्थात समाज वर्णो में विभाजित नहीं था। उसे ही सभी प्रकार के कार्य करने पड़ते थे। लेकिन मालूम हुआ कि एक वर्ण से काम नहीं हो सकता तब क्षत्रिय वर्ण बना। आगे मालूम हुआ कि दो वर्णो से काम नहीं चल सकता तो तीसरा वैश्य वर्ण बना और जब इससे भी काम न बना तो चौथा शूद्र वर्ण बना" [14] चारों वर्ण परस्पर पूरक थे। सभी के कार्यो के नैतिक सामाजिक एवं आर्थिक मूल्य समान थे। उनके मत में गीता में वर्णित है "शुद्ध हृदय और निष्काम भाव से काम करने वाला ब्राह्मण हो, शूद्र हो अन्य किसी वर्ण का हो मोक्ष का समान अधिकारी है। इतना ही नहीं अगर ब्राह्मण अपना काम ठीक से नहीं करता भंगी अपना काम ठीक से करता है तो वह प्रामाणिक भंगी ब्राह्मण की अपेक्षा उच्च माना जाता है।" [15] विनोबा जी वर्णव्यवस्था को स्पर्द्धारहित समाज रचना का आधार मानते है क्योकि [16] (1) वर्णो में परस्पर उच्चता एवं नीचता नहीं है सभी को समान रूप से मोक्ष का अधिकार है। (2) किसी भी वर्ण को दूसरे किसी वर्ण से अधिक पैसा मिले यह बात वर्ण धर्म में नहीं। (3) सभी वर्णो की सामाजिक प्रतिष्ठा समान है। वर्णधर्मानुसार किसी भी वर्ण के व्यक्ति को दूसरे किसी वर्ण के व्यक्ति से विवाह स्थापित करने में कोई हर्ज नहीं। उनके अनुसार वर्ण कोई जाति नहीं वृत्ति थी। उनके शब्दों में "जिनमें क्षात्रगुण का विकास हुआ वे तो अधिक संयमी और इन्द्रिय निग्रही होगें ऐसे ही इन्द्रिय निग्रही और समर्थ देश की रक्षा करें।" [17] इस प्रकार वर्णधर्म व्यक्ति की स्वभावगत विशेषताओं एवं सीमाओं के अवलोकन के बाद उसके कार्यक्षेत्र को निर्धारित करता हैं।

विनोबा जी का विचार है कि प्राचीन वर्णव्यवस्था को वर्तमान में रोजगार के आधार के रूप में अपनाया जाये। क्योंकि यह सर्वोदय की मूल भावना पर आधारित है "व्यक्ति वहीं कार्य करे जो उसे समाज सौपें। समाज उसे वहीं कार्य सौपें जिसक लिये वह व्यक्ति को योग्य समझे।" [18] इससें समाज

---

14. विनोबा साहित्य खण्ड -19 'धर्मामृत चरित्रामृतम' पृष्ठ - 117
15. पूर्वोक्त
16. विनोबा साहित्य खण्ड - 18 साम्ययोगी समाज, पृष्ठ - 438
17. विनोबा साहित्य खण्ड - 19 पृष्ठ - 120
18. विनोबा भावे स्वराज्य शास्त्र पृष्ठ - 18

में अनुचित प्रतिस्पर्द्धा समाप्त होगी। एवं सभी प्रकार के कार्यो की समान प्रतिष्ठ्र होगी। उनके अनुसार किसी भी व्यक्ति में इन चारों वर्णो की योग्यतायें एक साथ हो सकती है। फिर भी किसी एक गुण की उसमें प्रधानता होगी। इस प्रधान गुण के आधार पर वह अपना व्यवसाय सुनिश्चित करे। साथ ही वह अन्य गुणों की उपेक्षा न करें अतएव " All should work both with head and hands, and all should develop the equanimity of the Brahamas or the learned cast, The fearness of the kshatriyas. of the warrior cast, the compassions of the vaishyas or the businessmen and the faith of the shudras or the servant class" [19] इससे "गुण प्रधान लोग भी सेवा करेगें और कर्मप्रधान लोग भी गुण ग्रहण करेगे ....।" [20] विनोबा जी की इस व्यवस्था से समाज में ज्ञान और कर्म का समन्वय होगा और शारीरिक एवं मानसिक श्रम के बीच इसका निषेध होगा।

विनोबा जी वर्णव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के विचार की अन्य सर्वोदयी विचारको काका कालेकर एवं दादाधर्माधिकारी ने कटु आलोचना की एवं इस व्यवस्था के पूर्व उन्मूलन पर जोर दिया -

" The latter is of view that living society must have the capacity for making new experiments. The caste system is dying and the varna system has gone in to abolition. It is time to make. new experiments." [20] परन्तु विनोबा इस व्यवस्था को अहिंसक समाज की रचना का आधार मानते है क्योंकि उनके अनुसार "मजदूरी (परश्रमिक) की समानता प्रतियोगिता का अभाव एवं आनुवांशिक संस्कारों से लाभ उठाने वाली शिक्षण योजना पर आधारित वर्णव्यवस्था सर्वश्रेष्ठ है।" [21] अतः विनोबा वर्णधर्म में निहित सारतत्व को व्यापकरूप से समाज में स्थापित करना चाहते है।

आश्रम व्यवस्था -

विनोबा जी आश्रम व्यवस्था को हिन्दु धर्म का आधार मानते हैं इस आश्रम व्यवस्था के पीछे यह विचार है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य विषयभोग नहीं विश्व सेवा है। एवं संयम रखकर ईश्वर का साक्षात्कार करना है। विनोबा जी के मत में भारतीय समाज शास्त्र ने मानव जीवन के विभाग शास्त्रीय

---

19. विनोबा - त्रिवेणी पृष्ठ - 12 - 13
20. विनोबा चिंतन अंक - 44 - 45, 1969 पृष्ठ - 35
20. डा0 विश्वनाथटंडन 'सर्वोदय आफटर गांधी से उद्धत' पृष्ठ - 100
21. विनोबा साहित्य खण्ड - 19 पृष्ठ - 127

पद्धति से किये – "बचपन – वेदाध्ययन, गुरूसेवा यह ब्रहमचर्य अवस्था है, युवावस्था, में गृहस्थाश्रम, गृहसेवा, कर्मयोग, यज्ञ, दान, तप। उसके बाद वानप्रस्थ यानि गृहमुक्त सेवा, और आग केवल ईश्वर चिंतन सन्यास।" [22] विनोबा जी ने इसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुये इन चारों आश्रम को निरूपित किया है –

(क) ब्रह्मचर्यश्रम –

इस आश्रम से मनुष्य के जीवन को आरम्भ से अच्छा आधार प्राप्त होता है। जीवन के 25 साल ब्रह्मचर्य में माने गये। इसमें इन्द्रियों पर काबू रहता शरीर मजबूत बनता, एवं प्रज्ञा तेजस्वीं होती।

(ख) गृहस्थाश्रम –

यह आश्रम कर्तव्यनिष्ठा का आश्रम है इसमें व्यक्ति कई प्रकार के कर्तव्यों का पालन करता है – अतिथियों की सेवा करना, उत्पादन बढ़ाना, संतान की परवरिश करना एवं उनके तालीम की व्यवस्था करना। विवाह संस्कार का गृहस्थाश्रम में विधिवत पालन की शिक्षा है क्योंकि इससे "प्राणीमात्र के चित्त में जो कामवासना है वह विकृत नहीं होगी।" उनके अनुसार गीता में वर्णित है "प्रजोत्पादन के लिये स्त्री – पुरूष समागम धर्म है तथा संतान हेतु विरहित स्त्री – पुरूष संगम से व्यभिचार खून असंयम, भोगविलास उत्पन्न होता है" [23]

(ग) वानप्रस्थ आश्रम –

इस अवस्था का उद्देश्य, विनोबा श्री "अनुभव स्थिरवृत्ति और इन्द्रिय निग्रह से लेते है" [24] इसका आशय यही है कि इस आश्रम में व्यक्ति विषय भावना से मुक्त होकर समाज की निष्काम सेवा में लग जाये।

(घ) सन्यास आश्रम –

विनोबा जी के अनुसार सन्यास का अर्थ है अहंकार, आसक्ति, व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त होकर "व्यक्ति आत्मज्ञान और भक्ति का मार्ग समाज को बतलाये।" [25] उनका मत है कि सन्यास का

---

22. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 133
23. पूर्वोक्त – 136
24. विचारपोथी पृष्ठ – 35
25. विनोबा चिंतन अंक – 40 – 41 पृष्ठ – 152

अर्थ समाज से पलायन नहीं है बल्कि समस्त विषय वासनाओं से मुक्त होकर समाजमय हो जाना ही सन्यास है। इस अवस्था में "व्यक्ति अपनी आत्मपवित्रता और हृदय शुद्धि के बल से बिना कुछ किये और कहें समाज को सूर्य की भांति क्रियाशील करता है।" (26)

इस प्रकार विनोबा जी ने आश्रम संकल्पना के उद्देश्य एवं स्वरूप को अधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया। विनोबा जी वर्तमान समाज में इसका पुनरूद्धार करना चाहते है ताकि इन आश्रमों से सन्निहित नीति एवं मर्यादाओं से व्यक्तिगत जीवन एवं समाज को व्यवस्थित किया जा सके।

(३) कायिक श्रम (शारीरिक श्रम) -

विनोबा जी सामाजिक जीवन की बुनियाद शरीर - परिश्रम वृत को बनाना चाहते है। वह इसें समाज का आचरण का सूत्र मानते है "हर कोई अपने शरीर के आहार के लिये शारीरिक परिश्रम करें शरीर को पोषण शरीर श्रम से ही करें। इसी को ब्रेड लेवर कहते। इसी को भगवतगीता में यज्ञ का नाम दिया गया। उसी का जिक्र ईसा ने किया कि जो अपने पसीने से रोटी कमाता है वह ब्रेड लेवर है।" (27) उनके मत में आज दुनिया में अशांति इसलिये है कि कुछ लोग श्रम करते है, दूसरे उसका लाभ उठाते हैं। इससे समाज में दर्जे बनते गये "शारीरिक श्रम करने वाले नीचे माने गये और न करने वाले उच्चस्थान ग्रहण किये हुये" (28) समाज में श्रम का स्थान पैसें और प्रेम का स्थान संघर्ष ने ले लिया है। अतः इन बुराइयों के समूल नाश के लिये आवश्यक कि सभी अपनी भूख मिटाने के लिये शरीर परिश्रम का व्रत ले। उनके मत में "समाज का प्रत्येक सक्षम व्यक्ति - चाहे वह सामान्य नागरिक हो या शासक गर्व का बुद्धिजीवी हो या व्यापारी शिक्षक हो या सैनिक प्रतिदिन उत्पादक श्रम करें। (29) इससे समाज में श्रम की प्रतिष्ठा होगी एवं ऊँच - नीच मालिक - मजदूर का भेद समाप्त होगा। सभी लोगों के कर्मण्य होने से दूसरो का मत्सर, दूसरो के प्रतिद्वेष, बिना कुछ किये खाने की वृत्ति समाप्त होगी। अहिंसक एवं शोषण मुक्त समाज रचना का मूलमंत्र यही है।

---

26. विनोबा साहित्य खण्ड - 3 पृष्ठ - 46 - 47
27. विनोबा साहित्य खण्ड - 14 'अध्यात्म एवं आश्रम' पृष्ठ - 456
28. पूर्वोक्त
29. पूर्वोक्त - 458

(४) स्त्रीशक्ति -

विनोबा जी ने समाज में स्त्रियों की स्थिति के सन्दर्भ में व्यापक चिंतन किया है। वह नारी के मूल में स्थित मातृशक्ति का अत्यधिक आदर करते है। उनके अनुसार स्त्री समाज में प्रेम, त्याग और शांति की भावनाओं का विस्तार करती है। क्योंकि "स्त्री मातृस्थान है वह सारें समाज की तारिणी शक्ति है, जो तारिणी शक्ति होगी, वहीं शांति की मूर्ति हो सकती है।" (30) उनके अनुसार प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रीपुरूष को समान स्थान प्राप्त था। उनकी बौद्धिक एवं आध्यात्मिक योग्यताओं को समान माना गया। क्योंकि उपनिषदों ने आज्ञा दी है "मातृदेवों, भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव इसमें माता को प्रथम देव माना गया।" (31) इसी प्रकार हमारे यहाँ "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी - जननी और जन्म भूमि दोनों को स्वर्ग से बढ़कर माना गया है।" (32) प्राचीन हिन्दु धर्म में स्त्रियों को धर्म, विवाह, एवं शिक्षा आदि में पुरूषों के समान पूरी स्वतंत्रता थी। परन्तु मध्य एवं आधुनिक युग के आते - 2 नारी का यह सम्मान जाता रहा। नारी भोग, घृणा और तिरस्कार का पर्याय बनी। उन पर बहुत सी अक्षमतायें लादी गयी। उनके शब्दों में "सांसारिक पुरूषों के लिये वह भोग विलास का साधन बनी, सारा साहित्य, कला, सारे रस उसके इर्द - गिर्द घूमते रहे। दूसरी और परमार्थियों (साधू सन्यासियों) ने उसे लक्ष्य बनाया। बैराग्य के लिये उसे बन्धन डालने वाली माना। इसलिये उसके प्रति घृणा, तिरस्कार का भाव रखा।" (33) ब्रह्मचर्य, सन्यास, वेदपठन - पाठन और मोक्ष के अधिकार से उसे वंचित किया गया। शनैः - शनैः स्त्री समाज पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा एवं कन्याहत्या आदि बुराइयों के कारण जड़ होता गया।

विनोबा जी स्त्री समाज के पुनरूद्धार के लिये स्त्री - शक्ति को जागृत करना चाहते है। उनका मानना है कि स्त्री समाज का उद्धार तब तक असंभव है जब तक उनका बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास नहीं होगा। विनोबा जी ने इसी सन्दर्भ में 1959 में पवनार में स्त्रियों के लिये ब्रहम विद्या मन्दिर की स्थापना की ताकि यही स्त्रियां सामूहिक साधना, सामूहिक उपासना एवं सामूहिक समाधि द्वारा अपना

---

30. विनोबा साहित्य खण्ड - 17 शिक्षा स्त्री शक्ति ....। पृष्ठ - 238
31. पूर्वोक्त पृष्ठ - 446
32. पूर्वोक्त
33. पूर्वोक्त - पृष्ठ 237

आध्यात्मिक विकास करें। उन्होनें स्त्रियों को ब्रहमचर्य की साधना करने को कहा। उनके शब्दों में "ब्रहमचर्य का अर्थ सिर्फ इन्द्रियों का निग्रह नहीं है, वरन् इसका विशाल ध्येय है अर्थात ब्रहम के साक्षात्कार का ध्येय सामने रखकर उसकी खोज में अपना जीवन क्रम रखना।" (34) इससें स्त्रियों में आत्मबल जागृत होगा। आत्मा की एकता पर आधारित 'ब्रहम विद्या' की निरन्तर साधना हेतु उन्होनें स्त्रियों को प्रेरित किया।

विनोबा जी स्त्री समाज की अन्य बुराइयों, बहुपत्नी प्रथा, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, आदि पर प्रहार करते है। बहुपत्नी प्रथा के बारे में कहते है एक पति अपनी अनेक पत्नियों की समान रूप से देखभाल कर ही नहीं सकता, अतः कुप्रथा को समाप्त होना चाहिये।" (35) दहेज प्रथा के वह अत्यन्त विरोधी है। वह इसके पूर्ण उन्मूलन के समर्थक है। "वह मानते है कि उपरोक्त दोनों बुराइयों ने स्त्री की वास्तविक गरिमा का क्षय किया है। हमें स्त्री शक्ति के अभ्युत्थान के लिये इन बुराइयों को खत्म करना होगा। स्वयं स्त्रियों को इन्हें खत्म करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी।" (36) वह पर्दा प्रथा को स्त्रियों की स्वतंत्रता में बाधक मानते है। अतएव उनका आग्रह हैं "यदि उनको अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण एवं सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करना है, तो उन्हें इससे अवश्य मुक्त होना चाहिये।" (37) उनके मत में इन बुराइयों से मुक्त होकर ही स्त्री समाजपरिर्वतन, शीलरक्षा एवं सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा कर सकती है।

विनोबा जी के अनुसार अब तक पुरूष प्रधान समाज रचना रही है। "उन्होनें हिंसा शक्ति में संरक्षण है, यह मानकर सारे कार्य किये। आने वाले समय में हिंसा शक्ति का स्थान अहिंसा शक्ति ले लेगी क्योंकि वह समाज रचना स्त्री प्रधान होगी .... इस शमप्रधान रचना में स्त्री - पुरूष भेद समाप्त होगा और सर्वत्र शान्ति होगी।" (38)

---

34. विनोबा साहित्य खंड - 14 पृष्ठ - 423
35. विनोबा - स्त्रीशक्ति पृष्ठ - 35
36. Dr. Dasrath Singh, "Vinoba's contribution to upliftment of woman"
    Gandhi Jyoti - Jan 1993 P - 16
37. विनोबा भावे - स्त्रीशक्ति - पृष्ठ - 34
38. विनोबा साहित्य खण्ड - 14 पृष्ठ - 265

इस प्रकार समाज में स्त्री शक्ति के अभ्युदय के सन्दर्भ में विनोबा जी का सर्वोत्कृष्ट योगदान यही है कि वह स्त्रियों को प्रेरित करते हैं कि वह अपना आध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास करके अपनी समस्याओं का निराकरण स्वयं करें इससे वह स्वरक्षिता बनेगी एवं उसकी पुरूषों पर निर्भरता समाप्त होगी। नि : सन्देह स्त्री समाज के विकास के लिये यह ठोस समाधान है। डा0 दशरथ सिंह के अनुसार

" If the women emerge as spitritual and social force, the whole attitudes of men towards woman will be. Changed, the foundation of society will be deeper and human culture and civilization will prosper."(39)

अश्पृश्यता निवारण -

विनोबा जी ने गाँधी जी के अश्पृश्यता निवारण की जगह 'स्पर्श भावना' का प्रयोग किया। जिसका व्यापक अर्थ है "हमारा कुल विश्व से स्पर्श हो जहाँ हम अपने को अलग समझेगे, दुनिया से कटे हुये समझेगे, वहाँ स्पर्श भावना व्रत का भंग होगा।" (40) उन्होनें कहा यह अमानवीय प्रथा है कि एक इन्सान दूसरे को अछूत माने।" (41) उनके अनुसार समाज में स्पृश्य - अस्पृश्य की भावना मिटने के लिये आवश्यक है कि सभी कार्यो का नैतिक सामाजिक एवं आर्थिक मूल्य समान हो। यह तभी संभव है जब अछूत कहे जाने वाले कार्यो को घृणारहित एवं निर्मल बनाया जाये। उनके मत में "कोई भी समाजोपयोगी कार्य नीच नहीं होता सबको बात मन में बिठानी चाहिये और उसे करने की तैयारी करनी चाहिये।" (42) किसी भी मनुष्य को छूत न मानने से अस्पृश्यता निवारण की इतिश्री नहीं होगी बल्कि काम की छूत को समाप्त करना होगा। स्वयं विनोबा जी ने हरिजन सेवा एवं अस्पृश्यता निवारण के लिये चमड़े का काम, भंगी काम, और बुनाई काम किया और लोगो को भी प्रेरित किया। उन्होनें कहा समाज में अछूत समझे जाने वालों को समाज की मुख्य धारा में शामिल करने के लिये हमें उदार एवं सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करना होगा।" (43)

---

39. Dr. Dashrath Singh, "Vinoba's contribution to upliftment of woman" , P - 25
40. विनोबा साहित्य - खण्ड - 14 पृष्ठ - 481
41. विनोबा साहित्य खण्ड - 18 पृष्ठ - 438
42. विनोबा साहित्य खण्ड - 14 पृष्ठ - 482 - 483
43. पूर्वोक्त - 482 - 484

जैसे - (क) हरिजन किसी भी बस्ती में जाकर रहे, दुकान खोले, धंधा करें किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

(ख) सभी प्रकार के धंधे हरिजनों के लिये खुले होने चाहिये।

(ग) अछूत समझे जाने वाले कार्यो को निर्मल बनाने के लिये आवश्यक है सभी लोग इसको करने में किसी प्रकार शर्म महसूस न करे। स्वयं विनोबा ने कार्यो को सेवाधर्म के रूप में अपनाया।

(घ) इस समाज का अज्ञान, अंधेरा, अनुदारता दूर करने के लिये ज्ञान का प्रकाश इन तक पहुँचे, इसके लिये आवश्यक है इनकी शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाये।

(ङ) मन्दिर, सार्वजनिक स्थानो में इनके प्रवेश को निषिद्ध करना अमानवीय एवं अधार्मिक है। अतः इसको समाप्त करना होगा।

विनोबा मानते है इन उपायो से अशपृश्यता निवारण में सहायता मिलेगी और समाज कृत्रिम विषमता एवं अधर्म से मुक्ति प्राप्त कर सकेगा।

इस प्रकार विनोबा जी के सम्पूर्ण सामाजिक चिंतन के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि केवल एक चिंतक के रूप में ही नहीं बल्कि सामाजिक वैज्ञानिक, सुधारक एवं समन्वर्याचार्य के रूप में उनकी भूमिका काफी विस्तृत एवं महत्वपूर्ण है। उन्होनें वर्तमान समाज की मूलभूत समस्याओं का न केवल विश्लेषण किया वरन् उनके समाधान की ठोस प्रक्रिया भी सुनिश्चित की। उनके विचारों में स्त्री - पुरूष, ऊँच - नीच, छोटा - बड़ा एवं गरीब - अमीर के बीच कोई द्वैतभाव नहीं हे। समन्वयपूर्ण आदर्श समाज को उन्हें प्रेम, ममता, त्याग एवं निवैरता के अटूट बन्धन में बाँधा है। जहाँ व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय में पूर्ण सांमजस्य है। अतः हम कह सकते है कि "विनोबा जी ने गांधी जी के आध्यात्मिक समाज को पूर्णता प्रदान की है।" (44)

---

44. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 372

1. बी0 एन0 गोखले :- 'इन्डियन कल्चर थ्रु आउट दि ऐशेज' पृष्ठ - 55

(ग) आर्थिक चिंतन

विनोबा जी के आर्थिक चिंतन का मूलस्रोत प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारधारा है "जिसमें मानवीय पहलुओं का सर्वोच्च स्थान दिया गया है और अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र को अन्योन्याश्रित माना गया है।" (1) अर्थात इसमें अर्थ की जगह मानव कल्याण को सर्वोच्च एवं नैतिकमूल्यों को आर्थिक जीवन की नियामक शक्ति के रूप में प्रस्थापित किया गया है। विनोबा जी भी कहते हैं कि जिस अर्थचिंतन में मानवकल्याण की भावना सर्वोपरि होती है वहीं "राष्ट्रीय अर्थशास्त्र या सच्चा अर्थाशास्त्र होता है।" (2) साथ ही उन्होनें कहा कि "आर्थिक क्षेत्र जीवन का बहुत बड़ा अंग है इसलिये धर्मशास्त्र, (3) इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता बल्कि इसके नियोजन और नियमन की जिम्मेदारी धर्मविचार पर ही आती है।"(4) उन्होनें इसी आधार पर पाश्चात्य अर्थशास्त्र की आलोचना करते हुये कहा कि नैतिक मूल्यों की सर्वथा अवहेलना एवं मानव कल्याण की जगह अर्थ पर ज्यादा जोर देने के कारण इस व्यवस्था में "सभी चीजों का मूल्य पैसे से आंका जाता है। प्रेम का कोई मूल्य नहीं समझा जाता।" (5) इस अर्थकेन्द्रित मानसिकता के कारण सामाजिक जीवन से प्रेम, सहयोग, सद्भाव, सत्य, अहिंसा और पारस्परिक विश्वास के सभी नैतिक मापदण्ड समाप्त हो रहे है। उनके मत में "पश्चिम ने स्पर्द्धा का अर्थशास्त्र विकसित किया है – 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' – जो सबसे ज्यादा बलवान कुशल और चतुर हो उन्हें ही जीने का अधिकार है .... इस स्पर्द्धात्मक समाज का सबसे बड़ा दोष है कि बलवान और शक्तिशाली दूसरे का शोषण करने लगते है।" (5)

विनोबा जी भारतीय परम्परा पर आधारित जिस अर्थशास्त्र का विकास करना चाहते है वह अस्तेय, अपरिग्रह, संयम, त्याग एवं शरीरश्रम आदि नैतिक मूल्यों पर आधारित होगा। उनके अनुसार 'अस्तेय (चोरी न करना) एवं अपरिग्रह (असंग्रह) से अर्थशुचिता का निर्माण होगा' (6) संयम अर्थात "अपने भोग की मात्रा निर्धारित करना, इस निर्धारण का सवोत्तम साधन त्याग है। 'तेन त्यक्तेन भुजीथाम्' – त्याग करके भोगों (7) एवं शरीर श्रम (Bread Labour) "अपने श्रम से अपनी रोटी

---

2. विनोबा साहित्य खंड – 18 साम्ययोगी समाज पृष्ठ – 275
3. विनोबा जी धर्म को 'शाश्वत एवं निरपेक्ष नैतिकता के रूप में लेते है' विनोबा चिंतन, अंक 55, 1970 पृष्ठ – 253, वह सत्य अंहिसा, अस्तेय, अकाम, अक्रोध, लोभ आदि को इसी अर्थ से धर्म मानते है – विनोबा चिंतन अंक – 40 – 41, 1969 पृष्ठ – 151
4. विनोबा साहित्य खंड – 18 पृष्ठ – 81
5. पूर्वोक्त पृष्ठ – 3
6. विनोबा साहित्य – खंड – 14 अध्यात्म और आश्रम पृष्ठ – 452
7. पूर्वोक्त पृष्ठ – 453

जुटाओं [8] आदि पर आधारित अर्थव्यवस्था अहिंसक एवं शोषणमुक्त होगी। इसी में देश की आर्थिक सम्पन्नता एवं गरीबी, बेकारी आदि का निदान संभव है। इस प्रकार की अर्थसंरचना में ही मनुष्य की भौतिक समृद्धि के साथ - साथ उसका नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होगा। उनके शब्दों में "भौतिक प्रगति एवं आध्यात्मिक विकास में कोई विरोध नहीं है। दोनों साथ - साथ चल सकते है शरीर और आत्मा साथ ही तो है और दोनों साथ - साथ बढ़ते है, तब हमारी सर्वांगीण उन्नति होती है।" [9] वह कहते है कि यदि भौतिक विकास के साथ आध्यात्मिक उत्थान नहीं हुआ तो मनुष्य का विनाश अवश्यभावी है।

विनोबा जी के अनुसार आर्थिक जीवन में न्याय समानता एवं मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के लिये आवश्यक है कि अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को बहुगुणित करने के स्थान पर उनका परीसीमन किया जाये। हमें अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ही उपभोग करना चाहिये। इसी में सच्चा सुख है क्योंकि "जीवन समुन्नत् बनाने की चेष्टा में हम निरन्तर आय के आंकड़े बढ़ाते जा रहे है .... फिर भी लोगों के मन में संतोष नहीं है .... अमेरिका एवं रूस के निवासियों के पास भौतिक सुख - समुद्धि के साधनों की कमी नहीं है परन्तु ये दोनों भयग्रस्त है।"[10] लोभलिप्सा का त्याग एवं मानसिक संतोष ही इस भय एवं अशांति को दूर कर सकता है। विनोबा जी द्वारा संचालित विभिन्न आन्दोलनों - भूदान, ग्रामदान एवं संपत्तिदान आदि में व्यक्ति की त्याग भावना का विकास कर समाज में संग्रह की जगह अपरिग्रह और अस्तेय के मूल्यो को प्रस्थापित करने का संकल्प है।

इस प्रकार विनोबा जी आर्थिक अवधारणा में भौतिक समृद्धि के साथ आध्यात्मिक विकास की प्रतिबद्धता, इच्छाओं एवं आवश्यकताओं का परीसीमन एवं नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का संदर्भ व्यक्ति के समग्र विकास की अपेक्षा में रखते है। और इसी आधार पर उन्होनें अर्थव्यवस्था के विभिन्न आधारों को समुन्नत बनाने का ठोस प्रयास किया है। अपरिग्रह, समानता, विकेन्द्रीकरण, ग्रामस्वलम्बन एवं स्वदेशी उनकी इस अर्थव्यवस्था के विशिष्ट सन्दर्भ है।

---

8. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 456
9. विनोबा (लेख) भौतिक प्रगति और आध्यात्मिक विकास मैत्री (पत्रिका) अगस्त 1991 पृष्ठ - 311
10. पूर्वोक्त

(क) अपरिग्रह

विनोबा जी ने अपरिग्रह – परायण समाज का आदर्श रखा। विनोबा जी के अनुसार "संग्रह करने से समाज में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य इन पाँच व्रतों का सामूहिक भंग होता है।"[11] इसलिये शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार ही संग्रह करें क्योंकि आवश्यकता से अधिक संग्रह असमानता दुःख एवं असंतोष की जड़ है। उन्होनें कहा अपरिग्रह का आदर्श स्वरूप सृष्टि (प्रकृति) है "सृष्टि का स्वरूप "अश्वत्य" है। यानि सृष्टि के पास कल का संग्रह आज नहीं है। मनुष्य को भी अश्वत्य संग्रह रखना चाहिये।" [12] उन्होनें कहा यह धारणा गलत है कि अपरिग्रह की साधना केवल आध्यात्मिक जीवन में ही हो सकती है बल्कि "अपरग्रिह केवल सन्यासियों के लिये ही नहीं बल्कि सामान्य नागरिकों के लिये भी है।" [13] अपरिग्रह की साधना से समाज में वैभव और संपत्ति का प्राचुर्य होगा व उसका सभी के बीच समान वितरण होगा।

विनोबा जी नवीन आर्थिक संरचना के सम्बन्ध में गांधी जी के ट्रस्टीशिप को मलकियत और आर्थिक वितरण के सम्बन्ध में एक नैतिक एवं अहिंसक प्रयास मानते है। उनके मत में "समाज में अपरिग्रह धर्म की स्थापना के लिये यह उत्तम एवं महत्वपूर्ण उपाय है।" [14] विनोबा जी के ट्रस्टीशिप का अर्थ है शरीर, बुद्धि और संपत्ति – तीनों में से जो भी प्रति हो उसे सबके हित में लगाना [15] विनोबा जी ने गांधी जी के ट्रस्टीशिप का विनियोग अहिंसक समाज रचना के निर्माण में किया और इसी आधार पर भूदान ग्रामदान एवं संपत्तिदान इत्यादि धारणाओं का विकास किया। उन्होनें कहा। "भूदान यज्ञ की बुनियाद में यह विचार है कि सारे समाज को अपना सर्वस्व समर्पण करना व्यक्ति का कर्तव्य है . ... यानि अपनी कुल शक्ति, संपत्ति, बुद्धि समाज की सेवा में समर्पित करें .... जो वापस मिले उसी को प्रसाद के तौर पर ग्रहण करें। [16] इससे स्वार्थपूर्ण संग्रह का निषेध होगा

---

11. विनोबा साहित्य खण्ड – 18 साम्ययोगी समाज पृष्ठ – 80
12. पूर्वोक्त – 80
13. पूर्वोक्त – 88
14. विनोबा भावे, सर्वोदय और स्वराज्य शास्त्र पृष्ठ – 133
15. विनोबा साहित्य खंड – 18 'साम्ययोगी समाज' पृष्ठ – 131
16. पूर्वोक्त पृष्ठ – 114

साथ ही आध्यात्मिक अपरिग्रह और समाज की भावना का समाज में प्रसार होगा। विनोबा जी के संपत्तिदान यज्ञ में स्वामित्व विर्सजन का संकल्प है। उन्होनें कहा संपत्तिदान अर्थात सम्पति के विर्सजन की प्रतिज्ञा .... बापू जिसे ट्रस्टी कहते थे, वैसे ट्रस्टी बनने का व्रत।" (17) यहाँ उल्लेखनीय है, कि विनोबा जी ने गांधी जी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में संशोधन किया। गांधी जी के ट्रस्टीशिप में कुछ अंश तक व्यक्तिगत स्वामित्व समाज के पवित्र धरोहर के रूप मे रहता है लेकिन भूदान ग्रामदान एवं संपत्तिदान व्यक्तिगत स्वामित्व नाम मात्र के लिये नही रहता ही शुलभ ग्रामदान में व्यक्तिगत स्वामित्व को सीमित रूप में स्वीकार किया गया है। इस प्रकार विनोबा जी स्वामित्व के मोह को तिलांजलि देकर अपरिग्रह को सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की बुनियाद बनाना चाहते है।

(ख) आर्थिक समानता

विनोबा जी ने समाज में विवेकपूर्ण आर्थिक समानता का समर्थन किया। उनके मत में समानता का अर्थ यह नहीं कि समाज को भौतिक सम्पदा का सबमें समान वितरण हो बल्कि इसका आशय यही है कि "प्रत्येक व्यक्ति का उसकी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त हो।" (18) अर्थात एक क्षमतावान व्यक्ति जिसकी आवश्यकतायें कम है उसे कम वेतन प्राप्त होगा ठीक इसकी तुलना में एक कम क्षमता वाला व्यक्ति जिसकी आवश्यकतायें अधिक है उसे अधिक वेतन प्राप्त होगा।" (19) इस प्रकार एक व्यक्ति को उसके द्वारा किये गये कार्यो के स्तर के अनुसार वेतन प्राप्त नहीं होगा वरन् इसका निर्धारण उसकी आवश्यकताओं से होगा। इस समानता को ही वह औचित्यपूर्ण समानता मानते है। उन्होनें कहा "हम गणितीय समानता नहीं चाहते .... हम विवेक युक्त समानता चाहते है क्योंकि एक माँ गणित का हिसाब लगाकर अपने बच्चों में बराबर खाना नहीं बांटती वरन् बच्चों की वय और आवश्यकतानुसार देती है सबसे छोटे को वह केवल दूध देती है उसें बड़ो को थोड़ा सा दूध और थोड़ी सी रोटी और बड़े बच्चों को सिर्फ रोटी देती है। इसी प्रकार समाज में भोजन - सामग्री का वितरण करने में हम विवेक से काम लेगे हर एक की भूख की तीव्रता और पाचन शक्ति का ख्याल रखेगें।" (20)

---

17. पूर्वोक्त - 114
18. Vinoba Bhave 'Swaraj Shastra' P - 74 - 75
19. Ibid, P - 74
20. विनोबा, 'हरिजन' 20-12-52

विनोबा जी मानते है। समाज में पूर्ण समानता की स्थापना असाध्य है परन्तु असन्तुलित असमानता भी नहीं होनी चाहिये। समाज में ऐसी समानता हो जो विभेदक होते हुये भी न्यायपूर्ण हो। ऐसी समानता हाथ की पाँच उंगलियों के बीच होती है। क्योंकि "ये पाँचों उंगलियां बराबर न होते हुये भी पूर्ण सहयोग से एक साथ मिलकर अनेक कार्य करती है। साथ ही उनकी असमानता इतनी बेहिसाब नहीं है कि एक तो एक इंच लम्बी हो और दूसरी एक फुट लम्बी। इससे यह शिक्षा मिलती है कि अगर पूरी समानता नहीं हो सकती, तो भयंकर असमानता भी होनी चाहिये, परन्तु तुल्यता होनी चाहिये।" (21) उनके मत में इसके लिये हमे एक ओर गरीब और अमीर के बीच की खाई को बढ़ने से रोकना होगा तथा दूसरी ओर उसे पाटने के भी प्रयास करने होगे।

(ग) विकेन्द्रीकरण

विनोबा जी ने सर्वोदयी अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिये औद्योगिक विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। उनके अनुसार "सर्वोदय विचार" में जो बुनियादी बाते मानी गयी है " (1) रोजमर्रा की सारी चीजें – खाना, कपड़ा आदि गाँव में ही पैदा हो। जो काम घर में हो सकते है जैसे रसोई, कताई आदि – वे घर में हो, जो गाँव में हो सकते है तेल – जूता आदि वे गाँव में हो। (2) लोहा, कोयला, अभ्रक, के बड़े – बड़े उद्योग जिनका सम्बन्ध न सारे देश बल्कि दुनिया के साथ है – किसी व्यक्ति की मालिकी न रहे। उन पर सारे समाज की मालिकी रहे।" (22) इस प्रकार विनोबा जी ने त्रिस्तरीय औद्योगिक व्यवस्था का समर्थन किया।

(क) लघु उद्योग जहाँ पर उत्पादन स्थानीय कच्चे माल एवं श्रमिकों की सहायता में होगा,

(ख) कुटीर उद्योग – इसमें उत्पादन कार्य एक परिवार विशेष तक सीमित होगा। परिवार द्वारा परम्परागत आधार पर ये उद्योग स्थापित हो।

(ग) विशाल उद्योग – इसमें पूंजीगत बड़े उद्योग होगें लोहा, इस्पात उद्योग एवं चीनी सीमेंट उद्योग इत्यादि। विनोबा जी के अनुसार यह बात असत्य है कि सर्वोदय विज्ञान और टेक्नोलॉजी का विरोधी है बल्कि "सर्वोदय से बढ़कर विज्ञान के लिये अनुकूल कोई विचार नहीं" (23) भारत में

---

21. विनोबा – 'हरिजन' 26-1-52
22. विनोबा साहित्य खण्ड – 18 साम्ययोगी समाज पृष्ठ – 195
23. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 186

आत्मज्ञान की परम्परा रही है उसका समन्वय हम विज्ञान से करके उसे लोककल्याणकारी बना सकते है। आज तक विज्ञान का विस्तार पूंजीपतियों केन्द्रित औद्योगिक व्यवस्था के विस्तार में किया, फलस्वरूप हिंसा और शोषण का जन्म हुआ। विज्ञान की प्रगति मुनष्य की योजना पर निर्भर करती है। आज विकेन्द्रित औद्योगिक व्यवस्था के लिये हम विज्ञान की मदद ले सकते है। उन्होने कहा "भारतीयों के उत्पादन के औजार बिल्कुल कमजोर है। वैज्ञानिक तकनीक द्वारा उन्हें अच्छा बनाया जाये। आज तो विज्ञान छोटे औजारो की तरफ देखता ही नहीं, विज्ञान की दृष्टि सर्वोदय के साथ जुड़ जाये तभी वह समर्थ होगा।" [24] विनोबा जी विज्ञान और टेक्नालॉजी का इस प्रकार लाभ उठाना चाहते है जिससे सभी को काम मिले, उत्पादन बढ़े, और साथ में लोकजीवन सुरक्षित रह सके।

ग्रामस्वावलम्बन

विनोबा जी ने विकेन्द्रित औद्योगिक व्यवस्था का सर्मथन केवल आर्थिक, अनिवार्यता के कारण नहीं किया वरन् ग्रामीण स्वावलम्बन के लिये भी इसे आधारभूत माना। उनके अनुसार अंग्रेजों के आने से पूर्व हमारी स्वावलम्बी ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी। प्रत्येक गाँव मे लघु एवं कुटीर उद्योग थे जो कि स्थानीय कच्चे माल से जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से सम्बन्धित पूरा माल तैयार करते थे। गाँवो में कृषि के पूरक ग्रामोद्योगों का समुचित विकास हुआ था। "ब्रिटिश सरकार की औपनवेशिक नीतियों के कारण ग्रामोद्योग का ह्रास हुआ।" [25] उनके मत में वर्तमान परिस्थितियों में भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये एवं स्वावलम्बी ग्राम अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिये ग्रामोद्योगों को पुर्नजीवित करना अनिवार्य है। उनके अनुसार भारत कृषि प्रधान देश है परन्तु बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति जमीन मुश्किल से 0.7 एकड़ है। [26] गाँवों में लोगों को वर्ष भर कार्य नहीं मिलता इसलिये "खेती के पूरक धन्धे के रूप में ग्रामोद्योग को बढ़ाना होगा।" [27] इससे प्रत्येक गाँव अपनी

---

24. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 186
25. पूर्वोक्त - 162 - 163
26. पूर्वोक्त - 160
27. पूर्वोक्त

प्राथमिक और द्वितीयक जरूरतों के बारें में आत्मनिर्भर बनेगें" [28] विनोबा जी के अनुसार ग्रामोद्योगों की स्थापना एवं विकास के लिये आवश्यक है कि जो कच्चा माल ग्राम में पैदा होता है उसको बाहर न भेजकर उसका पक्का माल भी वही बने जैसे "गाँवों में गन्ना होता है, तो गुड़ भी वहीं बने, गाँवों में मिट्टी है, तो मिट्टी के बर्तन भी वहीं बने .... इसी में बेकारी निवारण का शाश्वत सूत्र है।" [29]

विनोबा जी ने ग्रामस्वराज्य के आधार के रूप में ग्रामोन्मुख खादी उद्योग का विचार दिया। वह खादी विचार एवं कार्यक्रम को गांधी जी की विशेष देने मानते है। उनके शब्दो में "गाधी जी ने खादी को राष्ट्रीय उपासना बनाकर स्वराज्य संघर्ष, सामुदायिक सत्याग्रह को शांति एवं अहिंसा के मार्ग पर अग्रसर किया है।" [31] आज स्वतंत्रता उपरान्त खादी का महत्व और अधिक बढ़ गया है इसका सीधा सम्बन्ध ग्राम स्वावलम्बन से है उनके अनुसार खादी श्रमनिष्ठ जीवन का प्रतीक है "दुनिया में शोषण इसलिये है कि कुछ लोग श्रम करते है और कुछ लोग लाभ उठाते है घर - घर में सूत काता जायेगा इससे समाज में श्रमनिष्ठा बढ़ेगी और शोषण खत्म होगा" [31] बेरोजगारी निवारण एवं गाँव के वस्त्र स्वावलम्बन की दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण योजना है।

इस प्रकार विनोबा जी ग्रामस्वराज्य के लिये गाँवों की रचना ग्रामोद्योग के आधार पर करना चाहते है। उनके शब्दों में "ग्रामोद्योग खादी स्वावलम्बन यह किये बिना Socialist state by peaceful means (समाजवादी राज्य, शांतिमय साधनों से) संभव नहीं होगा।" [32]

स्वदेशी

विनोबा ने स्वदेशी का प्रयोग स्वधर्म और स्वावलम्बन के सिद्धान्त के रूप में किया है। उनके अनुसार "स्वधर्म अर्थात अपने आस - पास के लोगों द्वारा तैयार माल प्रेम से स्वीकारना हमारा धर्म

---

28. पूर्वोक्त
29. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 164 तथा 178
30. पूर्वोक्त - 289 का सांराश
31. पूर्वोक्त - 280
32. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 340

है।" [33] इसका आशय यही है कि हम अपने देश में निर्मित वस्तुओं का प्रयोग करें। क्योंकि यह हमारे राष्ट्रीय हितों एवं आत्म निर्भरता को मजबूती प्रदान करता है। जब हम "अपने नजदीक वाले मनुष्य ने जो चीज बनायी है उसे न खरीदते हुये दुनिया की चीजे खरीदते है तो यह 'संकुचित स्वार्थ एवं निष्ठुरता है।" [34] इसलिये आर्थिक समृद्धि एवं स्थायित्वपूर्ण विकास के लिये प्रत्येक व्यक्ति को स्वदेश में निर्मित वस्तुओं को प्रथम प्राथमिकता देनी चाहिये। उन्होनें कहा कि इसका यह आशय भी नहीं है कि स्वदेशी भावना विदेश निर्मित प्रत्येक वस्तु का विरोध करती है बल्कि इसका आग्रह यही है कि "जिन चीजों का हम अच्छी तरह निर्माण कर सकते है, उस काम का बोझ दूसरों पर डालना गलत है।" [35] अतः स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हमें अपने उपलब्ध संसाधनों, ज्ञान, एवं कौशल की सहायता से जितना संभव हो सके अपनी आवश्यकतओं की पूर्ति के लिये उत्पादन एवं निर्माण करना चाहिये। इससे हमारे घरेलू उद्योगों को संरक्षण मिलेगा जिसमें गरीबी, बेकारी अदि समस्याओं का भी निराकरण होगा।

इस प्रकार विनोबा जी का सम्पूर्ण आर्थिक चिंतन समानता, न्याय, अपरिग्रह एवं सहयोग पर आधारित है। "पाश्चात्य देशों में मानव कल्याण का अर्थ भौतिक संसाधनों की बढ़ोत्तरी से लिया जाता है, व्यक्ति के सुख का एक मात्र साधन उसकी आर्थिक प्रचुरता को माना जाता है।" [36] परन्तु विनोबा जी ने व्यक्ति का सर्वोत्तम कल्याण उसके आत्मिक उत्थान को माना है। इसके लिये उन्होनें सयंम और त्याग से पूर्ण जीवन को अपनाने पर बल दिया है। वह देश की गरीबी, बेकारी, विषमता एवं भ्रष्टाचार का निवारण स्वावलम्बन, सादगीपूर्ण जीवन, समानता एवं स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग से करना चाहते है। ग्रामीण जीवन की विपन्नता को दूर करने हेतु उन्होनें "कृषि प्रधान ग्रामोद्योग व्यवस्था" की स्थापना पर जोर दिया। ग्रामस्वावलम्बन के आदर्श की पूर्ति के लिये ग्रामोद्योगों को आधार बनाया इससे आत्मनिर्भरता के साथ गरीबी एवं बेकारी आदि समस्याओं का निदान भी होगा। हालांकि कुछ आलोचकों ने ग्रामोद्योगों की आलोचना करते हुये कहा। " 1. If the objective is merely one of providing full

---

33. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 169
34. पूर्वोक्त - 172
35. पूर्वोक्त - 171
36. Adi. H. Doctor 'Sarvodaya a palitical and economic study' P- 67

employment, one has merely to set up cottage industries in every village and see that each village produces its own cloth etc. But the problem is far deeper, than one of merely setting, so many hands to work, cottege industries have a higher cost of production ." (37)

2. and there product when compared to the machine product is distinctively inferior in finish and hence the demand for these tends to be less. It will therefore be difficult to persuade the people, to buy the costlier and comparatively less finished products of the cottage industries." (38)

विनोबा जी ने मशीनीकृत केन्द्रित बड़े उद्योगों की सम्पूर्ण व्यवस्था की वास्तविक स्थिति के विश्लेषण के बाद कहा कि "इनकी उत्पादित वस्तुयें किसी भी हालत में लघु एवं कुटीर उद्योगों से सस्ती नहीं पड़ती है। उनके शब्दो में कहा जाता है कि मिले सस्ती पड़ती है हम हिसाब करके दिखा देते है कि वे मंहगी है, मिलों में व्यवस्थापक, माल का ले जाना - लाना मालिकों अजस्र मुनाफा आदि कई आपत्तियां स्पष्ट है। लेकिन फिर भी मिल सस्ती मालूम पड़ती है तो या तो कोई जादू होना चाहिये या फिर हमारे ऐतराज गलत होने चाहिये। एतराज तो गलत नहीं कहे जा सकते तो फिर अवश्य तिलस्म है। वह जादू यह है कि मिल एक विराट यान्त्रिक रचना की जंजीर की कड़ी है। बड़े कारखानों में मुख्य उद्योग के साथ - साथ उससे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे का फुटकर उद्योग कराये जाते है .... इन गौण उद्योगों मे जो आमदनी होती है उससे प्रधान उद्योगों को लाभ होता है। और यह सब मिलाकर वह कारखाना आर्थिक दृष्टि से पुसाता है मिल की यही स्थिति है। वह एक समग्र विचार श्रंखला की कड़ी है।" (39) लेकिन इन स्थितियों में भी ग्रामोद्योग एवं उसकी उत्पादित वस्तुओ को बड़े उद्योगों की तुलना में मंहगा माना जाता है तो इसे हम निश्चित रूप से लाभप्रेरित अर्थ चिंतन एवं मशीनीकृत व्यवस्था का तिलस्म ही कह सकते है।

दूसरी आपत्ति है कि लघु एवं कुटीर उद्योगों में उत्पादित वस्तुयें मशीनीकृत उद्योगों की तुलना में तकनीकी दृष्टि से पिछड़ी हुई होती है।" विनोबा जी इसे स्वीकारते है और कहते है कि "विज्ञान एवं

---

37. V.V. Bhatt, 'Employment and capital formation in under developed economics, P - 61 - 64

38. Adi. H. Doctor 'Sarvodaya A political economics study, P - 185

टैक्नोलॉजी की सहायता से हमें परम्परागत उत्पादन के साधनों को अधिक कार्यश्रम एवं उपयोगी बनाना चाहिये।" [40] इस प्रकार ग्रामोद्योग के पीछे विनोबा जी को मूल दृष्टि यही है कि वह इनको आत्मनिर्भर ग्रामजीवन का सशक्त विकल्प बनाना चाहते है।

विनोबा जी उद्योगों के विकेन्द्रीकरण के माध्यम द्वारा एक ओर ग्रामोद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करना चाहते थे, वही सामाजिक अन्याय को रोकने के लिये तथा पूंजी के संग्रह एवं एकाधिकार को केवल गिने चुने हाथों में सीमित होने से बचाने के लिये औद्योगिक विकेन्द्रीकरण को ही एकमात्र उपाय मानते थे। उनका औद्योगिक विकेन्द्रीकरण का विचार स्वप्न मात्र नहीं आधुनिक जापान में औद्योगिक विकेन्द्रीकरण द्वारा प्रत्येक ग्रामीण परिवार छोटे - छोटे गृह उद्योगों द्वारा छोटे - मोटे कलपुर्जे तैयार करते है, जिन्हें सम्मिलित करके बड़ी मशीनों का उत्पादन किया जाता है इसे ग्रामीण जीवन को स्वावलम्बी बनाने में जबरदस्त सफलता प्राप्त हुई है, वही जापान आर्थिक विकास की दृष्टि विकसित देशों की अग्रिम पंक्ति में प्रतिष्ठित है। घरेलू उद्योगों के सरंक्षण के लिये उन्होनें 'स्वदेशी' को महत्व दिया। आज जापान और साउथ कोरिया ने स्वदेशी विचार को पूरी तरह अपना कर विकसित देशों की श्रेणी में अपने को मजबूती से खड़ा किया है।

" They did borrow foreign capital and technology, but did not encourage multinational's investment. South Koria's Industraial competence must be considered as resulting primarily from indegenous efforts." [41]

निश्चित रूप से स्वदेशी विचार स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था के निर्माण का सशक्त आधार है। स्वेदेशी विचार द्वारा एक और लोगों में स्वाभिमान एवं राष्ट्रीयता की भावना मजबूत होती है वहीं लोगों कों कठिन परिश्रम द्वारा अपनी अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण की प्रेरणा भी मिलती है।

विनोबा जी ने गांधी जी के ट्रस्टीशिप का विनियोग भूदान, ग्रामदान एवं संपत्तिदान के माध्यम से आर्थिक विषमता को मिलने के लिये किया। इस सन्दर्भ में उनकी सबसे बड़ी देन है यही है।

---

39. विनोबा साहित्य - खंड - 18 पृष्ठ - 282

40. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 186

41. Westphall Rhee and Pursell "Korean Industrial competence where it came from" world staff working paper, 1981 P - 169

क्योंकि "दान के द्वारा भूमि, संपत्ति की समस्या का हल निकालना और स्वावलम्बन युक्त परस्पर विश्वासपूर्ण समाज की रचना की कल्पना करना ट्रस्टीशिप का व्यापक प्रयोग है।" (42)

विनोबा जी की उपर्युक्त आर्थिक विचारों से स्पष्ट होता है वह एक ऐसी आर्थिक संरचना के निर्माण के प्रति सचेष्ट है, जो हिंसा, शोषण, एवं अन्याय से मुक्त हों। जहाँ आर्थिक नीतियों का नियमन इस प्रकार से हो कि सभी एक साथ शान्ति, सुख और आनन्द से जीवन बिता सके। वह सहयोगपूर्ण आर्थिक जीवन को ही मानव के सच्चे एवं सार्थक विकास की कसौटी मानते है क्यों कि उनका मानना है प्रतिद्वन्दितापूर्ण आर्थिक जीवन का आवश्यक परिणाम विषमता शोषण एवं स्थार्थपरता है। उनके शब्दो में "स्पर्द्धा का यह सिद्धान्त इतना मारक है कि भाई - भाई के बीच भी दरार पैदा कर देता है।" (43) अतः समाज से इन बुराइयों को समूल नाश किये जाने के लिये वह आर्थिक संरचना का निर्माण उपनिषद में निहित इस आधार वाक्य के अनुसार करना चाहते है "ईशावास्यामिदम् सर्व यत्किंचम जगत्याम जगत्। तेन व्यक्तेन भुंजीथाम .... अर्थात यह समस्त जगत् ईश्वरमय है और सर्मपण करके ही प्रसाद के रूप में उसका भोग करना चाहिये।" (44)

उनके अनुसार इस सत्य विचार से ही आर्थिक क्षेत्र में उस शक्ति का आविर्भाव होगा जिसमें इस देश की गरीबी, बेकारी, असमानता एवं अन्याय से लड़ने की भरपूर शक्ति है।

---

42. डा0 दशरथ सिंह, गाँधीवाद को विनोबा की देन, पृष्ठ - 437
43. विनोबा साहित्य - खण्ड - 18 पृष्ठ - 3
44. पूर्वोक्त - खंड - 18 पृष्ठ - 28

तृतीय अध्याय

विनोबाजी का राजनीतिक चिंतन

(क) राज्य व शासन सम्बन्धी विचार
(ख) लोकतन्त्र सम्बन्धी विचार
(ग) दलविहीन लोकतन्त्र के समर्थक
(घ) ग्रामस्वराज्य का दर्शन
(ङ) राजनीति बनाम लोकनीति
(च) लोकशक्ति
(छ) राजनीतिक विचारों की समीक्षा

विनोबा जी का राजनीतिक चिंतन

विनोबा जी का राजनीतिक चिंतन मानवतावाद पर आधारित है। जिसमे नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का सर्वोच्च स्थान है। इन्होनें पश्चिम की सत्तात्मक राजनीति को दोषपूर्ण बतलाकर अहिंसा धर्म और आध्यात्मिकता के आधार पर राज्य और राजनीति की नवीन कल्पना की है। भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ एवं उदात्त आदर्शो के प्रति समर्पित उनके चितंन में प्रेम, अहिसां, स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय को राजनीतिक जीवन में प्रस्थापित करने का सम्पूर्ण आग्रह है। उनका राजनीतिक चिंतन गांधी जी द्वारा अनुप्राणित सर्वोदय दर्शन का ही विकसित रूप है, जिनमें गांधीवादी मूल्यों की गहरी पैठ है। विनोबा जी ने अहिंसक राजनीतिक व्यवस्था के विचारों को अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ, स्वराज्य शास्त्र, में प्रस्तुत किया है। एक सैद्धान्तिक व्याख्याकार के रूप में राजनीति, राज्यपद्धति, सर्वोदय (साम्ययोग) लोकतंत्र ग्रामस्वराज्य लोकनीति एवं लोकशक्ति आदि की इन्होनें जो व्याख्या प्रस्तुत की वह शास्त्रीय एवं तार्किक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है।

विनोबा जी ने राजनीति की जगह लोकनीति का विचार दिया जो दलगत सत्तात्मक राजनीति के विकल्प के रूप में विनोबा के चिंतन में आती है। वर्तमान शासन की दण्डशक्ति को हिंसाधारित मानते हुये 'लोकशक्ति' का सर्मथन किया जो 'नागरिको की अहिंसक स्वावलम्बी शक्ति का सूचक है"। ग्रामस्वराज्य के रूप में विनोबा जी ने स्थानीय शासन को राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की योजना के अन्तर्गत पुनर्जीवित किया। राज्य के बदले उन्होनें स्वराज्य का विचार दिया जो व्यक्ति के आत्मशासन की अवस्था है।

विनोबा जी का राजनीतिक आदर्श शासनमुक्त, विकेन्द्रित ग्रामाधारित अहिंसक समाज व्यवस्था का निमार्ण है। सर्वोदय के लिये शासनमुक्ति अनिवार्य है यह संकल्प उनके राजनीतिक विचारों से स्पष्ट परिलक्षित होता है। क्योंकि उनके चिंतन में राज्य के बदले प्राज्य, शासित के बदले स्वशासित, हिंसक के बदले अहिंसक शासनमुक्त समाज का आदर्श है। आज के वैज्ञानिक युग में उन्होनें संकीर्ण व स्वार्थपूर्ण राजनीति की जगह अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय से पूर्ण सर्वोदय दर्शन की पूर्ण प्रतिष्ठा पर जोर दिया।

(क) राज्य व शासन सम्बन्धी विचार

(१) विनोबा जी का राज्य - सिद्धान्त

विनोबा जी के अनुसार मानवसमूह की व्यवस्था के लिये राज्य रूपी संस्था का उदय हुआ। प्राचीन समय में राज्य संस्था नहीं थी, लेकिन बाद में व्यक्तियों के आपसी संघर्ष को रोकने एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिये मानव समाज को इसकी आवश्यकता महसूस हुयी और इसका उदय हुआ। 'राज्य संस्था' के उदय से समर्पित कुछ महत्वपूर्ण कारण विनोबा जी ने प्रस्तुत किये है–

(क) "मेढ़को ने राज मांगा" :-

"पुरानी कहानी है। एक बार मेंढ़को को राजा की इच्छा हुयी। उन्होनें सोचा बिना राजा के अपना इन्तजाम अच्छा नहीं होता। उन्होनें भगवान से प्रार्थना की हमें राजा भेज दो – भगवान ने प्रार्थना सुन लीं और एक बैल भेज दिया। [1]

(ख) मनु महाराजा राजा बने ' :-

"मनुष्यों में जगह–जगह राजा की मांग होती थी। पहले–पहले जो राजा हुये वह जिम्मेवारी के साथ हुये। पुराणों में मनु महाराज की कहानी आती है। मनु जंगल में तपस्या करते थे। वे महाज्ञानी थें, तत्वज्ञान के चिंतन में लगे रहते थें। कोई राजा न होने पर लोगों का कारोबार ठीक नहीं चलता था। उन्हें इच्छा हुई कि कोई राजा हो तों अच्छा। उन्होनें सोचा कि चलो, मनु के पास चले। वे मनु के पास गये और उनसे कहा "महाराज आप हमारे राजा बन जाये, तो हमारा काम ठीक चलेगा। कृपा करके हमारे राजा बनिये।" मनु महाराज ने दो शर्ते रखी वे बोले "आप सब लोग एकमत से हमे कबूल करे तभी हम राजा बनेगें। हम बहुमत से राजा नहीं बनेगे। दूसरी शर्त यह है कि राजा होने में जो कुछ पाप होगें, उनकी जिम्मेदारी आप लोगों पर रहेगी" क्योकि राज्यान्ते नरक प्राप्तिः – जो राज्य करेगा सीधा नरक में चला जायेगा। इसलिये पाप की जिम्मेदारी आप लोग उठाओं तभी मै राजा बनूंगा, नहीं तो नहीं" लोगो ने कबूल किया, और मनु राजा हो गये" [2]

---

1. विनोबा साहित्य – खंड 16 तीसरी शक्ति 'राज्यसंस्था का उदय' पृष्ठ – 57
2. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 58

इस प्रकार विनोबा जी का मत है कि "व्यक्ति की समूह में रहने की प्रवृत्ति और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की भौतिक आवश्यकता के साथ-साथ सामाजिक जीवन में पारस्परिक सम्बन्धों की सुव्यवस्था एवं जीवकोपार्जन के साधन प्राप्त करने की लालसा राजनीति अथवा राजनीतिक संगठन के विचार को जन्म देती है" [3]

विनोबा जी के अनुसार प्राचीन काल में महत्वपूर्ण बात यह भी थी कि राज्यों में ऋषियों का अनुशासन था। [4] अर्थात राज्यकार्यो में राजा ऋषियों की सलाह से कार्य करते थें। राज्य के कार्य सीमित थे वह केवल संघर्ष और संकटो को दूर करने में मदद करती थी। लोक जीवन स्वतंत्र था। "व्यापारी, किसान, उत्पादक, और अन्य धंधे में संलग्न लोग स्वेच्छा से कार्य करते थें। राज्य का निजी कार्यो में कोई हस्तक्षेप नहीं था। [5]

शुरू में राज्य वंश परम्परा पर आधारित था। प्रजाजनों का भाग्य केवल राजा के हाथों में सौपे जाने से खतरे का आभास हुआ और फिर प्रतिनिधि चुनने की परम्परा शुरू हुयी अर्थात लोकतंत्र स्थापित हुआ। परन्तु आज राज्य सर्वव्यापी हो गया हैं। कला संस्कृति, धार्मिक जीवन, उद्योग व्यापार सभी पर राज्य का अधिकार है।

विनोबा जी ने कहा कि सामाजिक संघर्षो और हिंसा को रोकने के लिये राज्य ने जो दण्ड शक्ति का सीमित प्रयोग किया वह वर्तमान में काफी विस्तृत हो गया है। आज इसने अतिहिंसा का रूप ले लिया है। इसने व्यक्ति को स्वतंत्र विकास को बाधित किया है। उनके अनुसार "आजादी के बाद देश में कल्याणकारी राज्य की योजना बनी है .... इसमें जनता के जीवन को कसकर बांधा जाता है, उसमें जनता को स्वतंत्र रीति से कुछ भी काम नहीं करना होता है। देश के हर काम के लिये सरकार की ओर से योजना बनती है। समाज सुधार, खेती सुधार, वस्त्र सुधार - शिक्षण, साहित्यिकों को उत्तेजन देना, उद्योगों के बारे में पॉलिसी तय करना, रक्षण आदि सब सरकार करेगी और लोग रक्ष्य बनेगें, यह बिल्कुल जड़ दशा है, यह तो भेड़ों की अवस्था है।" [6]

---

3. विनोबा भावे 'लोकनीति' पृष्ठ - 13
4. विनोबा भावे : 'तीसरी शक्ति' पृष्ठ - 58
5. पूर्वोक्त
6. विनोबा भावे - लोकनीति - पृष्ठ - 47

विनोबा जी के अुनसार "राज्य अपनी नाभिकीय शक्ति के कारण वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व के विनाश की क्षमता रखते हैं।" [7] यह राज्य की हिंसा की और बढ़ती प्रवृत्ति है। उनके मत में "आधुनिक राज्यों की हिंसा शक्ति को सीमित करना, रोकना या अनुशासित करने की आशा रखना एक तरह का भ्रम है। इस सन्दर्भ में मानवता को बचाने का सबसे महत्वपूर्ण विकल्प यही होगा कि हम ऐसे समाज के निर्माण का प्रयास करे जहाँ पर राज्य की बाध्यकारी शक्ति का सर्वथा अभाव हो।" [8] राज्य ने हमारे आन्तरिक व बाह्य जीवन में पूर्ण एकाधिकार कर लिया है, अतएव दण्डमुक्त शासनमुक्त समाज के निर्माण के लिये राज्य की समाप्ति अनिवार्य है।

विनोबा जी ने कहा हम राज्य नहीं स्वराज्य चाहते है। "स्वराज्य हर एक का अपना राज्य।" [9] उनके मत में राज्य या सरकार हिंसापूर्ण होती है जबकि स्वराज्य की स्थापना अहिंसा के बिना असंभव हैं। अतएव हमें राज्य की इच्छा करनी चाहिये।" [10]

विनोबा जी को 'राजान्यते नरक प्राप्ति' एवं 'न त्वहम कामये राज्यम' उक्तियों में दृढ़ विश्वास है।" [11] वह राज्य को बाह्यकारी एवं केन्द्रीकृत एवं परिर्वतन विरोधी मानते है "जो न ही नयी समाज रचना का निर्माण कर सकती है न लोगों के जीवन में बुनियादी परिर्वतन ला सकती हैं।" [12]

विनोबा जी राज्यशक्ति और 'राज्यसत्ता' के स्थान पर लोकशक्ति और लोकसत्ता चलाना चाहते है। लोकशक्ति की हिंसाशक्ति, और 'दण्डशक्ति' से भिन्न स्वतंत्र जनशक्ति है। विनोबा जी राज्य की पूर्ण सार्वभौमिकता का निषेध करते हैं और व्यवहारिक रूप से संप्रभुता का वितरण जनजीवन में करने का सर्मथन करते हैं। विनोबा जी के अनुसार राज्य अपनी बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग पुलिस, न्यायालयों और बहुमत के शासन के आधार पर करता हैं अतः "सर्वोदय के अन्तिम आदर्श में हम शासन मुक्त

---

7. Geolfrey Ostergard - Vinoba's Gradulist Versus western imediatist Anarchism Gandhimarg. 1983, P - 521
8. पूर्वोक्त
9. विनोबा भावे - लोकनीति पृष्ठ - 26
10. बसन्त नरगोलकर 'दि क्रीड आफ विनोबा - पृष्ठ 162
11. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवादी को विनोबा की देन' पृष्ठ - 396
12. भूदान, 21 नवम्बर 1956
13. विनोबा, लोकनीति - पृष्ठ - 21

समाज की कल्पना करते है।" (13)

विनोबा जी राज्यविहीन शासनमुक्त समाज की ओर अशासन से नहीं बल्कि सुशासन से आगे बढ़ने का सर्मथन करते है। उनके अनुसार सरकार को तुरन्त क्रान्ति के द्वारा समाप्त करने के परिणाम अच्छे नहीं होते। सुशासन द्वारा लोगों का नैतिक विकास होगा और वह स्वयभेव आत्म अनुशासन के योग्य हो जायेगें इस स्थिति में किसी प्रकार के शासन की आवश्यकता नहीं रहेगी केवल नैतिक नियमन रहेगां राज्य स्वयं समाप्त हो जायेगा। भारतीय सन्दर्भ में विनोबा जी ने यह क्रम निश्चित किया था– "सर्वप्रथम स्वतंत्र केन्द्रीय सरकार (विदेशी शासन से मुक्त) तत्पश्चात विकेन्द्रीकरण अर्थात स्वतः शासित राज्य फिर शुद्ध अराजकता स्थिति। भारत ने प्रथम पीढ़ी प्राप्त कर ली है। दूसरी के लिये प्रयत्नशील है तीसरी स्थिति अभी बहुत दूर है।" (14) अतः उनके अनुसार "सत्ता आज से ही घटनी चाहिये। सत्ता घटने की क्रिया आज से ही शुरू हो जानी चाहिये। आज से कल राज्य की सत्ता कम हो कल से परसों कम, परसों से नरसों कम – इस प्रकार कम होते-होते अंत में राज्य खत्म होगा।" (15)

विनोबा जी ने अराजकतावादियों के समान राज्य के तिरोहित होने की संभावना व्यक्त की पर विनोबा जी को पूर्ण अराजकतावादी नहीं कह सकते।

विनोबा और पाश्चात्य अराजकतावादियों के दृष्टिकोण मे निम्न असमानतायें है।

(क) अराजकतावादी हिंसा के माध्यम से राज्य को समाप्त करना चाहते है विनोबा जी राज्यविहीन समाज स्थापित करने के लिये उस और सुशासन और सत्ता के विकेन्द्रीकरण के द्वारा आगे बढ़ने का मंत्र देते है जिसका आधार पूर्णतः अहिंसावादी है।

(ख) अराजकतावादी राज्य को वर्तमान परिस्थितियों में अविलम्ब समाप्त करना चाहते है परन्तु विनोबा जी समाज के पूर्ण विकास होने तक समाज व्यवस्था बनाये रखने के लिये राज्य के अस्तित्व को स्वीकार करते है उनके शब्दों में "जब तक स्वराज्य (आत्मशासन) नहीं आता तब तक राज्य ही चलेगा" (16)

(ग) विनोबा जी व्यक्ति को पूर्णतः सामाजिक प्राणी मानते है। उनके चिन्तन में व्यक्ति और समाज का

---

14. विनोबा, 'डेमोक्रेटिक वैल्यूज' पृष्ठ – 26
15. विनोबा साहित्य – खण्ड 16 तीसरी शक्ति पृष्ठ – 87
16. विनोबा भावे – लोकनीति – पृष्ठ – 26

सन्तुलित चित्र प्रस्तुत हुआ है जबकि "अराजकतावादियों का व्यक्ति एकाकी है जो समाज से पारस्परिक आदान-प्रदान की उपेक्षा करता है।" [17] इस प्रकार विनोबा जी एवं अराजकतावाद के बीच मूलभूत असमानताएं है। विनोबा जी के चिन्तन में, साधनों की पवित्रता का आग्रह, व्यक्ति और समाज का सन्तुलित सम्बन्ध एवं अहिंसक सुराज्य के लिये स्वाधीन संस्थाओं से निर्मित सरल और ग्रामीण राज्य (ग्राम्य स्वराज्य) की भावी योजना है।

(घ) विनोबा जी के राज्यविहीन समाज सम्बन्धी दृष्टि कोण में बाद में परिर्वतन हुआ। अन्तिम रूप से उन्होनें यह स्वीकार किया कि "पूर्ण राज्यमुक्त समाज का निर्माण मनुष्य की पहुँच के बाहर है अतः हमें राज्य के कार्य क्षेत्र एवं प्रभाव को सीमित करने का प्रयास करना चाहिये" [18] और इसके लिये उन्होनें सत्ता का व्यापक आधार, लोकशक्ति लोकनीति एवं ग्रामस्वराज्य का विचार दिया। अर्थात उन्होनें अहिंसक उपायों से राज्य की हिंसात्मक प्रवृत्ति और बाध्यकारी सत्ता समाप्त करने पर बल दिया । अतः विनोबा जी के विचारों से अराजकतावाद का पूर्णतादात्म असंभव है।

(२) सरकार (शासन) सम्बन्धी विचार

विनोबा जी का आदर्श एक अहिंसक एवं विकेन्द्रित शासन व्यवस्था के स्थापना के निर्माण का है। जहाँ व्यक्ति दमन और शोषण से पूर्णतया मुक्त होगा। विनोबा जी ने शास्त्रीय ढ़ंग से सम्पूर्ण शासन पद्वतियों का वर्गीकरण और विश्लेषण प्रस्तुत किया। साथ ही उनके गुण-दोषों पर भी प्रकाश डाला है। सामान्य दृष्टि से उन्होनें शासन पद्वतियों के तीन भाग किये है - "एकायतन, अनेकायतन, सर्वायतन।" [1]

"एकायतन शासन पद्वति में एक समर्श व्यक्ति सभी के लिये व्यवस्था करता है। अनेकायतन पद्वति में अनेक समर्थ व्यक्ति मिलकर सभी के लिये व्यवस्था करते है और सर्वायतन पद्वति में सब मिलकर समान उत्तरदायित्व के साथ अपनी व्यवस्था करते है।" [2]

उनके अनुसार "एकायतन पद्वति अर्थात एक व्यक्ति का शासन प्रारम्भ से चला आ रहा है।

---

17. डा0 पुरुषोत्तम नागर ' आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन' पृष्ठ - 389

18. विनोबा - भूदान से ग्रामदान पृष्ठ - 44

1. विनोबा भावे, लोकनीति - पृष्ठ - 14

2. विनोबा भावे, स्वराज्यशास्त्र - 158

भारतीय रियासतों एवं अन्य राज्यतंत्रों से इसी प्रकार का शासन रहा है। अनेकायतन के दो रूप है - अल्पसंख्यातन, बहुसंख्यातन। नाजी, फासिस्ट और सम्राज्यवाद, अल्पसंख्यातन के उदाहरण है। बहुसंख्यातन का उदाहरण रूसी साम्राज्यवाद है। सर्वायतन का दावा प्रचलित प्रजातंत्र में किया जाता है, जो वास्तव में नहीं है।" (3)

विनोबा जी के अनुसार सभी शासन पद्धतियां दोषपूर्ण रही है। उनके मत में "एकायतन पद्धति निरकुंश एवं अहम प्रमाणी रही है।

अल्पसंख्यातन पद्धति के स्वरूप "नाजीवाद, फासिस्ट्वाद, एवं साम्राज्यवाद के हिंसा, पूँजी का संग्रह एवं बड़े पैमाने पर योजनायें आदि प्रमुख शस्त्र रहे है।" (4)

बहुसंख्यातन पद्धति का उदाहरण रूस ने प्रस्तुत किया है। वास्वत में यह अल्पसंख्यातन ही है। "क्योंकि हिंसा पर आधारित कोई भी शासन पद्धति बहुजन समाज का अस्त्र नही सकतीं। तलवार से कमायी गयी यह व्यवस्था तलवार से चलायी जाती है ऐसे शासन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि शासन बड़े पैमाने पर अस्त-शस्त्रों से लैंस हो।" (5)

साथ ही "प्रजातंत्र का नाम धारण करने वाली और सर्वायतन होने का दिखावा करने वाली एक राज्य पद्धति (प्रजातंत्र) है। जिसका स्वाँग यूरोप और अमेरिका में रचा जा रहा है। लेकिन हिंसा पर आश्रित कोई भी पद्धति भले ही 'जितने सिर उतने मत' गिनने का दम्भ करे, वास्तव में सर्वायतन नहीं हो सकती।" (6)

विनोबा जी के अनुसार "जिसे हम आज सुशासन कहते है वह रूढ़ सत्तारूढ़ है। इसमें हम सब यंत्र की तरह जड़ बन जाते हैं। जिसे शासन में मनुष्य की बुद्धिमता का विकास नहीं हो पाता। आत्मबुद्धि जागृत नहीं होती, स्वयं बुद्धि, स्वयं प्रभा का उदय नहीं होता, तो भी विकास की दृष्टि से वह उपयोगी नहीं और उसे हम सर्वोत्तम व्यवस्था नहीं कह सकते है।" (7)

---

3. विनोबाभावे, लोकनीति, पृष्ठ - 14-15
4. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 15
5. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 16
6. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 14
7. विनोबा साहित्य - 'खण्ड - 16' तीसरी शक्ति - पृष्ठ - 65

इसलिये उपरोक्त शासन पद्वतियों में से किसी को निर्दोष नही कह सकते है। उन्होनें एक अहिंसक एवं विकेन्द्रित शासन पद्वति के सन्दर्भ में दस मूलभूत विशेषताओं का उल्लेख किया है[8] -

1. **सार्वराष्ट्रीय भ्रातृभाव** - सभी राज्य परस्पर भाईचारे को बनाये रखेगे।
2. **राष्ट्र के सभी लोगों का ज्ञानपूर्वक यथाशक्ति परन्तु सहजस्फूर्त हार्द्रिक सहकार** - इस राज्य में समस्त जनता बिना किसी दबाव के सोच समझकर हार्द्रिक रूप से राज्य का सहयोग करेगी।
3. समर्थ अल्पसंख्यकों और सर्वसाधारण बहुसंख्यको का हितैक्य
4. सभी के सर्वागीण और समान विकास की दृष्टि
5. राज्यसत्ता का व्यापकतम विभाजन
6. **अल्पतम शासन** - सरकार की ओर से कम से कम शासन या आदेश और दबाव होगा।
7. **सुलभतम मंत्र** - इसमें आज की व्यवस्था की तरह लालफीताशाही नही होगीं। प्रशासनतंत्र अधिक से अधिक विकेन्द्रित होगा।
8. **न्यूनतम व्यय** - प्रशासन तंत्र का खर्च कम से कम होगा। विकास पूरक कार्यो में व्यय ज्यादा होगा।
9. **कम से कम रखवाली** - राज्य की व्यवस्था इस प्रकार से होगी कि कम से कम सुरक्षा की आवश्यकता पड़े। विस्तारवादी नीति का परित्याग कर राष्ट्रों के प्रति अविरोधी नीति रहेगी।
10. सार्वजनिक अत्याहत तथा तटस्थ या मुक्त ज्ञान का प्रचार। राज्य का अर्थात निष्पक्ष ज्ञान होगा। ज्ञान-प्रचार में किसी प्रकार बाधा नहीं होगी।

इसकी साथ विनोबा जी ने आदर्श शासन प्रणाली के चार अनिवार्य लक्षण बताये-

1. क्षमता सम्पन्न व्यक्ति अपनी क्षमता का प्रयोग जन सेवा में करें - अर्थात एक निर्दोष शासन पद्वति में शक्तिशाली धनवान, और बुद्धिमान सभी अपने सामर्थ्य का प्रयोग लोक कल्याण हेतु करे,

"बुद्धि का उपयोग -

लोक जीवन को ज्ञानमय बनाने के लिये, शक्ति का प्रयोग लोकहितार्थ पराक्रम करने के

8. विनोबा भावे 'सर्वोदय विचार और स्वराज्य शास्त्र' पृष्ठ - 166

लिये और सम्पत्ति का उपयोग उचित रीति से समूचे समाज शरीर में उत्पादन शक्ति का प्रवाहशील एवं समान रूप से वितरण करने के लिये किये जाये।" (9)

2. जनता पूरी तरह से आत्मनिर्भर हो और एक दूसरे के साथ सहयोग करे – इस शासन व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के लिये पूर्ण स्वावलंबी होगा। "हर व्यक्ति के पास स्वायत उद्योग होगा।" साथ ही खेती के पूरक के रूप में ग्रामोद्योगों का जाल राष्ट्र में फैला होगा और उनके संरक्षण तथा स्थैर्य का प्रबंध राज्यव्यवस्था करेगी।" (10)

3. उनके सहयोग का नियमित आधार अहिंसा ही होना चाहिये तथा यदाकदा असहयोग अथवा प्रतिरोध विद्यमान होना चाहिये – अहिंसक एवं दोषमुक्त शासन व्यवस्था में नागरिकों को अहिंसक सहयोग असहकार और प्रतिकार के लिये पूरा विद्यान होगा जिसका प्रयोग वह आवश्यकतानुसार कर सकता है। सरकार के नीतिसम्मत कानूनों के प्रति जनता का नियमित सहयोग रहेगा। लेकिन जब व्यक्ति कानून से सहमत नहीं होगा तब वह उनका विरोध असहयोग अहिंसक तरीके से कर सकता है। जब असहयोग (असहाकार) करने पर भी प्रतिपक्षी का विवेक जागृत नहीं होता है, तब वह मर्यादापूर्वक अनुशासन में रहकर सरकार के कानूनों को अपनी मॉँगों के पूरा होने तक भंग भी कर सकता है।

4. प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया गया प्रामाणिक कार्य नैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से समान होगा – सेवा की वृत्ति से किये गये सभी के परिश्रमों का आर्थिक एवं नैतिक मूल्य समान होगा। राज्य "सभी के संगोपन और संरक्षण का भार लेगा।" (11)

इस प्रकार विनोबा जी सर्वोदयी समाज की ओर बढ़ने के लिये वर्तमान शासन व्यवस्था का पुर्नगठन करना चाहते है। इसलिये "सर्वोदय के विकेन्द्रीकरण और स्वशासन को व्यापाक रूप से प्रतिष्ठित करना चाहते है।" (12) इसी रूप में सर्वोदय की आदर्श शासन प्रणाली विकसित होगी। जिसके अर्न्तगत व्यक्ति का नैतिक विकास होगा, एवं वह आत्मानुशासन के योग्य हो जायेगा, फिर किसी प्रकार के शासन की आवश्यकता नही होगी। शनैः शनैः एक आत्मनिर्भर स्वशासी समाज का स्वरूप स्थिर हो जायेगा।

---

9. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 172
10. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 177
11. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 186
12. विनोबाभावे 'लोकनीति' पृष्ठ – 26

(ख) लोकतंत्र सम्बन्धी विचार

विनोबा जी लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को सभी शासन पद्धतियों में श्रेष्ठ मानते है। उनके मत में वर्तमान में इसमें कई दोष है। [1]

1. दूसरी पद्धतियों की तरह यह भी हिंसा पर आधारित है।
2. इसमें संख्या गिनती को महत्व दिया गया है, जो यांत्रिक है।
3. इसमें अनेक पक्षों का होना जरूरी माना गया है, जो हानिकारक है।
4. आज की हालत में वह संकुचित प्रदेश-भावनाओं का निवारण नहीं कर सकी है, जिसमें राष्ट्रवाद भी एक है।
5. लोकशाही का सबसे बड़ा दोष यह है कि हमारा सारा दारोमदार चंद लोगों पर है। लोकमत का कोई सवाल नहीं।

विनोबा जी के अनुसार यह पद्धति मूलरूप से बुरी नही है। उनके मत में हमने पश्चिम से आयतित लोकतंत्र के स्वरूप में भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल कोई ढांचागत परिर्वतन नहीं किया है। इसे ज्यो-त्यों अपना लिया गया है। इस प्रजातंत्र का आधार मतदान है। वोट के आधार पर शासक सारे कुकर्मो का दायित्व लोकमत या जनता पर डाल देते है। जहाँ वास्तव में कार्य एक या दो तीन व्यक्तियों की इच्छा से होता है, जो सत्ताधारी होते है। अतः "लोकशाही का सबसे बड़ा दोष जनता के सारे दायित्व को चन्द लोगों के हाथों में सौपना है।" [2] सर्वायतन होने का दावा करने वाली आधुनिक प्रजातांत्रिक व्यवस्था भी सही अर्थ में सवयितन नहीं है। यह राजतंत्र से अधिक खतरनाक इस अर्थ में है - कि "राजतंत्र में सारा गुणदोष राजा के सिर मढ़ा जाता है परन्तु प्रजातंत्र में सारे पाप लोकमत की आड़ में होते है।" [3]

विनोबा जी के अनुसार लोकतंत्र में जो चुनाव की प्रक्रिया है उसके भी कई दुष्परिणाम सामने आये है। चुनावों के लिये उम्मीदवार को चुनने का तरीका भी दोषपूर्ण है। उम्मीदवार का चयन दल के

---

1. विनोबा साहित्य खण्ड 16 तीसरी शक्ति पृष्ठ - 95
2. विनोबाभावे 'लोकनीति' पृष्ठ - 50
3. विनोबाभावे लोकनीति पृष्ठ - 49

प्रमुख नेताओं द्वारा होता है। उनके चुनाव में जनता का कोई हाथ नहीं होता। निर्वाचित सदस्यों का अपने दल के नेता से ही प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है। उनका जनता से भी खास सम्बन्ध नही होता अतः यह सच्चा प्रजातंत्र नहीं हो सकता। उनका विचार है -

"प्रजातंत्र की मांग है कि सरकार और जनता के मध्य जो मध्यस्थ इकट्ठे होते है उन्हें समाप्त कर दिया जाना चाहिये। उन्हें स्वशासित मंडिलियों में परिवर्तित हो जाना चाहियें [4] द्वितीय 'चुनाव का खर्च अत्यधिक होता है। पैसे के बल पर वोट खरीदे जाते है। आज की चुनाव प्रक्रिया में वही लोग भाग ले सकते है। जिनके पास ज्यादा संपत्ति है गरीब और मूक जनता की आवाज का कोई महत्व नही है।" [5] जातिवाद, साम्प्रदायिकता एवं ईर्ष्या व द्वेष की भावनायें उत्पन्न करके चुनाव में वोट प्राप्त किये जाते है। [6]

इसी सन्दर्भ में विनोबा जी ने 'वोट की अर्थहीनता' को बड़े तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया है। जिसे उन्होनें 'वोटिंग का ढ़ोंग' कहा है। [7] उनके अनुसार मान ले 100 मतदाता है। उनमें से 60 मत देते है, 40 नहीं। फिर 60 में 30 मत जिस पार्टी को मिलते है वहीं विजयी होते है। और राज्य चलाती है। इस प्रकार 40 + 30 = 70 मत बेकार हो जाता है। और 30 लोगों की सत्ता 100 पर चलती हैं। फिर 30 विजयी व्यक्तियों में यदि किसी प्रस्ताव के विपक्ष में 15 व्यक्ति हो तो भी विधेयक ऐसेबंली में पास हो जाता है और विरोध करने वालों को भी अनुकूलन वोट देना पड़ता है। इस तरह 100 लोगो के लिये 15 लोग एक बिल को पास करते हैं। उन 15 में भी एक मुख्य नेता होता या एक दो मंत्री, होते हैं। बाकी उनकी बात माननें वाले सदस्य होते है। इस प्रकार अन्तोगत्वा 100 मतदाताओं पर तीन मनुष्यों का शासन चलता है।" [8] इसके बाद "संकट काल में तो सारी सत्ता व अधिकार प्रधानमंत्री को सौप दिये जाते है और वह एक प्रकार का तानाशाह बन जाता है।" [9] इस तरह से यह मात्र औपचारिक लोकतंत्र हैं।

---

4. बसन्त नरगोलकर क्रीड आफसेन्ट विनोबा - पृष्ठ - 190
5. विनोबा साहित्य खण्ड 16 तीसरी शक्ति पृष्ठ - 104
6. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 105
7. विनोबा भावे - लोकनीति - पृष्ठ - 50
8. पूर्वोक्त - 50
9. पूर्वोक्त - 51

विनोबा जी के अनुसार दलीय व्यवस्था की कमियों ने वर्तमान लोकतंत्र को कमजोर किया हैं। राष्ट्र को इन्होनें विभिन्न गुटों में बांध दिया हैं। लोगों के विचार संकुचित हुये है। समाज में सर्वत्र कटुता, विद्वेष और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है। विभिन्न दलों में बंधे लोगों की समाज के विकासोन्मुख कार्यो में भी सामूहिक भागेदारी नहीं होती है। इससे देश की सर्वाधिक हानि हुयी है। आज लोगों की रचनात्मक शक्तियों का परस्पर योग नहीं होता है।

विनोबा जी के अनुसार आधुनिक लोकतंत्र में आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों ही क्षेत्रों में सत्ता का केन्द्रीयकरण हो रहा हैं। प्रशासन जनता के व्यक्तिगत जीवन का नियमन कर रही है व्यक्ति प्रशासन का पुर्जा बन कर रह गया है। शासन के जनकल्याणकारी स्वरूप के नाम पर केन्द्रीकरण बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में इस "वेलफेयर स्टेट का अर्थ है कि अधिक से अधिक सत्ता कुछ लोगों के हाथ में रहेगी और वे लोगों का सारा जीवन नियन्त्रित करेगें। .... जीवन के जितने भी अंग प्रत्यंग है सभी विषयों की दिल्ली में बात तय होगी।" (10) उन्होनें कहा कि चन्द लोगों के हाथ में सत्ता कोई वेलफेयर नही है।" (11)

इस प्रकार विनोबा जी ने वर्तमान संसदीय लोकतंत्र की कमियों की आलोचना की और साथ में ही इसके निराकरण के लिये महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये। उनके मत में प्रजातंत्र में लोककल्याणकारी होने का दावा करके मानव जीवन के समस्त क्षेत्रों में एकाधिकार कर लिया है। लोकतंत्र में लोककल्याणकारी राज्य की जगह लोककल्याण समाज की स्थापना का आग्रह होना चाहिये। जहॅा जनता अपने विकास की योजनायें स्वयं बनाये व उन्हें क्रियान्वित करें। इसके लिये राजनीतिक एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण होना अनिवार्य है।

विनोबा जी के मत में आज लोकतंत्र का आधार बहुमत का शासन है। पर लोकतंत्र में निर्णय सर्वानुमति से होनी चाहिये। (12) सर्वसम्मति से निर्णय होने से समाज में अल्पमत और बहुमत के झगड़े नहीं होगें। उनके अनुसार "हमारी ग्राम पंचायतों में भी पंच बोले परमेश्वर (सर्वानुमति) का न्याय ही चलता था। वहॅा सब मिलकर काम करते थे .... उनके निर्णय में ईश्वर की आवाज

---

10. विनोबा भावे तीसरी शक्ति - पृष्ठ - 118 - 119
11. विनोबा भावे - लोकनीति - पृष्ठ - 56
12. पूर्वोक्त - 56

होती थीं।" [13] "भारत विभिन्न धर्मो, जातियों, एवं भाषाओं का देश है इस स्थिति में बहुतमत के स्थान पर सर्वानुमति के आधार पर निर्णय होना चाहिये। इससे अल्पसंख्यक भयमुक्त होगें और बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दोनों ही अपनी जिम्मेदारियों का अहसास करेगें।" [14]

लोकतंत्र में चुनाव की प्रक्रिया के दृष्परिणामों को दूर करने के लिये विनोबा जी ने महत्वपूर्ण सुझाव दिये -

प्रथम -

ग्राम पंचायत के चुनाव केवल प्रत्यक्ष तरीके से हों। जिसमें गाँव के वयस्क लोग सर्वसम्मति से पंचायत के सदस्यों को चुनेगें। फिर तहसील पंचायत के सदस्यों को प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा नही अपितु ग्रामपंचायत के सदस्यों द्वारा चुना जायेगा। जिला पंचायत के सदस्य तहसील पंचायत द्वारा निर्वाचित होगें। और जिला पंचायतों के सदस्य प्रान्तीय प्रशासन के सदस्यों को चुनेगे फिर इसी प्रकार केन्द्रीय प्रशासन करने वाले व्यक्ति परोक्ष रूप से चुने जायेगे।" [15] विनोबा जी के मत में चुनाव की अप्रत्यक्ष प्रणाली से कई महत्वपूर्ण लाभ होगें।

(क) जातिवाद, साम्प्रदायिकता व ईर्ष्या व द्वेष की भावनायें समाप्त होगी। [16]

(ख) चुनाव का खर्च कम होगा।

(ग) लोकतंत्र की स्वस्थ प्रणाली का विकास होगा। द्वितीय, सभी राजनीतिक दलों को एक साथ मिल कर एक आचार संहिता बनाना चाहिये और पूरे चुनाव के दौरान व उसके बाद उसके नियमों का दृढ़ता से पालन करना चाहिये उनके बीच से तनाव, आरोप प्रत्यारोप एवं दुश्मनी आदि समाप्त होगी एवं

---

13. पूर्वोक्त - 58
14. डा0 विश्वनाथ टंडन सर्वोदय आफटर गांधी पृष्ठ 131
15. डा0 बी0 एल0 फडिया 'भारतीय राजनीतिक चिंतन' पृष्ठ - 304 एवं डा0 बसन्त नरगोलकर - फ्रीड आफ विनोबा - पृष्ठ - 196
16. विनोबा जी के अनुसार प्रत्यक्ष निर्वाचन में इन भावनाओं को उत्पन्न करके वोट प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। विनोबा साहितय - खण्ड 16 तीसरी शक्ति पृष्ठ - 105

जिनका चुनाव के बाद भी समाज पर लम्बे समय तक दुष्प्रभाव रहता है।" [17]

अतएव विनोबा जी ने वर्तमान लोकतंत्र के कल्याणकारी स्वरूप बहुमत के सिद्धान्त, दलव्यवस्था और प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली की आलोचना की। इसके स्थान पर उन्होनें सर्वानुमति, दलविहीन लोकतंत्र [18] एवं अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली (प्रत्यक्ष चुनाव केवल गॉव स्तर पर) को लोकतंत्र के अपरिहार्य तत्व के रूप में प्रस्तुत किया।

विनोबा जी ने पाश्चात्य प्रणाली पर आधारित भारतीय लोकतंत्र की संकीर्णताओं की आलोचना ही नहीं की अपितु सहभागी लोकतंत्र का सशक्त विकल्प भी प्रस्तुत किया। " जिसमें जनता की सार्थक सहभागिता के लिये जनता की भूमिका को मतदान तक ही सीमित नहीं रखना होगा। इसके लिये सत्ता को तथा राजनैतिक, आर्थिक, और सामाजिक मामलों में निर्णय लेने की शक्ति को वास्तविक अर्थो में विकेन्द्रीकृत करना होगा। तथा जनता में ऐसी प्रेरणा, सामर्थ्य व दक्षता उत्पन्न करनी होगी कि वह स्वयं शासन की शक्ति का वास्तविक उपयोग कर सके"। [19]

इस प्रकार सत्ता का व्यापक आधार, सामूहिक निर्णय प्रक्रिया सभी के विकास की समान एवं समग्रदृष्टि एवं सुलभतम् तंत्र के रूप में लोकतंत्र का विकास ही विनोबा जी के सहभागी लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप है क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास है।

" where a great deal of power is concentrated in the name of the welfare of the people and an army is maintained for its protection, democracy digs its own grave." [20]

अतः लोकतंत्र के आधार वाक्य "जनता का शासन जनता के लिये व जनता के द्वारा ही सार्थक अभिव्यक्ति के लिये वह विस्तार मानते है कि लोकतंत्र में व्यक्ति के जीवन के वैयक्तिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक पक्षों के स्वायत्त एवं स्वतंत्र विकास की समग्र एवं सम्पूरक दृष्टि विकसित होनी चाहिये।

---

17. बसन्त नरगोलकर 'दि क्रीड आफसेट पृष्ठ - 105 विनोबा पृष्ठ - 197
18. दलविहीन लोकतंत्र की विस्तृत चर्चा आगे है।
19. डा0 मधुकर श्याम चतुर्वेदी 'प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक पृष्ठ - 115
20. भूदान - 3.12 - 1958

(ग) दलविहीन लोकतंत्र के समर्थक

विनोबा जी का विचार है कि दलीय व्यवस्था की कमियों ने वर्तमान लोकतंत्र का क्षय किया है। विनोबा जी इसे "लोकतंत्र की सबसे बड़ी आन्तरिक कमजोरी मानते है।" उनके अनुसार दलगत राजनीति से समाज में नैतिक पतन, भ्रष्टाचार और स्वार्थ परायणता को बढ़ावा मिला हैं। वर्तमान लोकतंत्र में राजनीति दलों का मुख्य उद्देश्य शक्ति एवं सत्ता प्राप्त करना है। बहुसंख्यक दल शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर लोकतांत्रिक शासन के स्थान पर स्वेच्छाचारी शासन की स्थापना करता हैं। लोक सम्मति के दावों के बावजूद व्यवहार में सर्वशक्तिमान दलों का ही अधिपत्य रहता है।

विनोबा जी के शब्दों में –

"लोगों की कर्तव्यशक्ति क्षीण करने वाले अनेक कारणों में से एक कारण है आज के ये राजनीतिक पक्ष। राजनैतिक पक्षवालों का पूरा विश्वास सत्ता पर है। इसलिये पार्टियों के मुख्य मुख्य लोग सरकार में शामिल हो गये। और जो लोग बाहर रह गये, वे सत्ता प्राप्त लोगों से ईष्या करने लगे है। दूसरे दलों के नेता है वे सत्ता प्राप्त करने के लिये अवसर की ताक लगाये बैठे है। भारत में ये जो भिन्न-2 पार्टी वाले खड़े है वे लोगों का आत्मविश्वास खत्म करते है और उन्हें पर विश्वास सिखातें। वे कहते है कि तुम हमे वोट दो, कोई यह नहीं कहता कि तुम्हारा कल्याण तुम ही करोगे। तुम्हारा भला तुम्हारें हाथ में है।" (1) विनोबा जी के मत में इन दलों ने ईर्ष्या, सत्तास्पर्धा की राजनीति को देशव्यापी बना दिया है।

विनोबा जी का मत है विचारो की विभिन्नता अपने आप में बुरी नही है, क्योकि यह तो मानव जीवन का आवश्यक लक्षण है। लेकिन वैचारिक भिन्नता के आधार पर जब समाज में विभिन्न दल बनते है तो उससे एक वैचारिक संकीर्णता उभरती हैं अतएव इससे आज दलबन्दी से ज्यादा देश में दिलबन्दी को प्रोत्साहन मिला हैं।" लोगों के दिल दिमाग एवं विचार संकुचित हो गये है। समाज में सर्वत्र कटुता विद्वेष और भ्रष्यचार को बढ़ावा मिला है। इससे देश के स्वस्थ, वातावरण के विकास में बाधा पहुँची है। उनके शब्दों में "दलगत राजनीति के जरिये कभी क्रान्ति नहीं होती है। वह तो जनमानस में होती है? अतः उसे पक्षातीत होना चाहिये। इसके लिये एक दूसरे के सामने अपने दिल खोलकर रखना

1. विनोबा साहित्य खण्ड 16 तीसरी शक्ति पृष्ठ - 97

चाहिये। लेकिन आज कल के पक्षवाले (दल) एक दूसरे के अखबार तक नही पढ़ते है जैसे वैष्णवपंथी, शैवपंथियों, की कोई भी बात नहीं अपनाते है। पार्टियाँ एक - दूसरे से भारी नफरत करती है उनके लिये पार्टी की पुस्तकें ही वेद वाक्य होती है। उनके विचार संकुचित होते है। इनके कारण दलबन्दी ही नहीं दिलबन्दी फैल रही जो दलबन्दी से कहीं ज्यादा खराब है ऐसी स्थिति में क्रान्ति रुक जाती है।" [2]

विनोबा जी के अनुसार दलगत राजनीति में अच्छाई या सत्य के लिये कोई स्थान नही है। इसकी मुख्य विशेषताये है [3] आत्मप्रशंसा दूसरों की निन्दा, असत्य, सत्ता की किसी भी मूल्य पर प्राप्ति, समाज के बदले पक्ष या दल के प्रति वफादारी। उन्होनें कहा कि दलगत राजनीति के जरिये लोकरक्षा होना भ्रमपूर्ण है। विनोबा जी की राय में - "जो लोग शासन और सेवाभार चन्द प्रतिनिधियों पर सौपेगें, धर्म और चिंतन की जिम्मेदारी चंद लोगो पर सौपेगें, वे बिल्कुल निस्सार होगें, उनके जीवन में कोई प्राणतत्व न रहेगा।" [4]

विनोबा जी के अनुसार यह धारणा भी गलत है कि लोकतंत्र में विरोधीदल की रचनात्मक एवं सुधारक भूमिका होती है। वह उसे भी सत्ताभिलाषी मानते है। उनके शब्दों में "आजकल सोचा जाता है कि लोकतंत्र में सिर्फ सत्ताधारी दल रहने में खतरा है, उसे सुधारने के लिये (करेक्टिव) विरोधी दल चाहिये। अगर यह मान भी लिया जाये तो भी क्या विरोधी दल से सुधार हो सकता है। यह सोचने की बात है, एक रहता है सत्ताधारी दल दूसरा रहता है सत्ताभिलाषी, दोनों सत्ता के इर्द गिर्द घूमते है। इसलिये दोनों मे कुछ दोष आ ही जाते है। जातिभेद न मानने वालो को भी जातिभेद का विचार करना पड़ा हैं। सत्ताभिलाषी दल सत्ताधारी दल का प्रतिबिंब होता है। स्याही सोखने वाले कागज की तरह वह सत्ताधारी दल के दोष गृहण करता है ....।" [5]

अतएव दलगत राजनीति के दुष्प्रभावों के कारण विनोबा जी ने दलविहीन लोकतंत्र का

---

2. विनोबा भावे - लोकनीति पृष्ठ - 44
3. सुरेश राम ' विनोबा एण्ड हिजमिशन' पृष्ठ - 440 - 41
4. विनोबा भावे - लोकनीति - पृष्ठ - 54
5. विनोबा तीसरी शक्ति पृष्ठ - 96

समर्थन किया। इसका अर्थ यह नहीं है। "वह दल व्यवस्था को पूर्णतया एवं तुरन्त समाप्त करना चाहते है। बल्कि इसे क्रमशः क्षीण करने के लिये महत्वपूर्ण उपाय एवं कार्यक्रम प्रस्तुत करते है।" (6)

प्रथम -

विनोबा जी के मत में जनतंत्र को यथार्थ रूप देने के लिये आवश्यक है कि ग्रामपंचायतों के सदस्यों का चुनाव दलीय प्रणाली की कार्यविधियों से मुक्त जनता की सर्वसम्मति से हो। इन ग्रामपंचायतों के मार्फत ऊपर के चुनाव अप्रत्यक्ष तरीके से हो। इससे दलीय राजनीति और वर्तमान निर्वाचन की कार्यपद्धति की जगह सर्वसम्मति का विकास होगा।

द्वितीय -

समाज के विकासपरक कार्यक्रमों को करने हेतु विनोबा जी ने सभी दलों के सहयोग का आह्वान किया हैं। वैचारिक भेद होने पर भी यदि विभिन्न दल सहयोग करने हेतु तैयार हो जाये तो इस दिशा में यह रचनात्मक कदम होगा। क्योंकि इससे उनमें सामुदायिक भावना का विकास होगा साथ ही सर्वोदय के मूल उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वह संगठित प्रयास करन के लिये तत्पर होगे। उनके शब्दों में "जहाँ तक विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रति हमारी नीति का प्रश्न है .... उन्हें सामान्य सम्मति से स्वीकृत कार्यक्रमों को पूरा करने के लिये अच्छे निष्ठावान व्यक्तियों का मोर्चा बना लेना चाहिये इस उद्देश्य से मै जनता के सामने एक ऐसा कार्यक्रम रख रहा हूँ जो सबको स्वीकार हो सकें। जिसमें सब लोग अपना मतभेद भूलकर सम्मिलित हो सके। इसमें राजनीति दल एक दूसरे के निकट आयेगें और परिणाम यह होगा कि उनके मतभेद कम होगें और सहमति तथा मेलमिलाप की वृद्धि होगीं। भूदान इसी प्रकार का कार्यक्रम है। यह सबको स्वीकार्य है उसमे देश प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा। और इस प्रकार जनशक्ति का विकास होगा।" (7)

तृतीय -

विनोबा जी का मत है। कि लोकतंत्र में निर्णय बहुमत के आधा पर न होकर सर्वसम्मति से हो। क्योंकि इसने दल व्यवस्था को मजबूत करने में योग दिया है। उनके शब्दों में "पाँच लोगों में

---

6. विनोबा तीसरी शक्ति पृष्ठ - 62 - 64
7. विनोबाभावे भूदान गंगा पृष्ठ - 106

से तीन लोगों का एक मत हो और दो लोगों का एक मत हो तो वर्तमान लोकशाही में तीन लोगों का मत सही मान लिया जाता हैं। बहुमत और अल्पमत के झगड़े ने अनके दलों को खड़ा किया है।" [8] अतः सर्वानुमति या सर्वसम्मति से दलीय राजनीति का प्रतिकाकर किया जा सकता है।

चतुर्थ -

विनोबा जी ने लोकनीति को वास्तविक अर्थो में दलविहीन लोकतंत्र अथवा विकेन्द्रित लोकतंत्र के रूप में प्रस्तुत किया। लोकनीति, लोकशक्ति, जनकल्याण, सत्यनिष्ठ ह्दय की एकता पर आधारित है। माध्यम से जब इस पक्षातीत व्यवस्था के शासन व्यवस्था का संगठ्न होगा, तब सत्ता विकेन्द्रित होकर अन्त में विलीन हो जायेगी। इसमें "मै अपना स्वामी और अपना सेवक अर्थात एक ही व्यक्ति में शासक और शासित के गुणो का संगम होगा। हम सब भाई-भाई, साथी या सहोदर। एक विचार-उदर से हमारा जन्म। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि कोई विचार भेद नहीं होगा। मतलब इतना ही कि हार्दिक विचार एक होगा बौद्विक विचार अलग-अलग हो सकते है। इस तरह पक्षो (दलों) की शुद्वी होगी और वे नजदीक आयेगें शुद्विकरण, एकीकरण, और अन्त में उन पक्षों का विलीनीकरण यह प्रक्रिया होगी।" [9]

पंचम -

विनोबा जी के अनुसार

(क) चुनाव भले ही अपनी पार्टी की विचारधारा और कार्यक्रम के अनुसार लड़े जाये। लेकिन विजयी उम्मीदवारों को लोकसभा और विधानसभा में लोक प्रतिनिधि के रूप में प्रवेश करना चाहिये। [10]

(ख) पार्टी अनुशासन के लिये ह्विप जारी नहीं होना चाहिये सदस्यों को मत की स्वतंत्रता होनी चाहिये। [11]

(ग) मंत्रियों का चयन दलगत आधार पर नहीं हो। वरन् प्रत्येक सदस्य की इच्छा से नामों की सूची बना लेना चाहिये। इसके बाद ही मंत्रिमण्डल का निर्माण होना चाहिये। यदि कोई दलीय आधार पर मंत्री बन भी जाता है तो तटस्थ रहकर स्पीकर की तरह कार्य करे।" [12] इससे इन संस्थाओं

---

8. विनोबा भावे - लोकनीति पृष्ठ - 57
9. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 65
10. पूर्वोक्त पृष्ठ - 69
11. पूर्वोक्त
12. बी0 एल0 फडिया 'भारतीय राजनीतिक चिंतन' पृष्ठ - 306

के निर्दलीयकरण मे सहायता मिलेगी।

इस प्रकार विनोबा जी ने लोकसत्ता को सही रूप में प्रतिष्ठित करने के लिये दलनिरपेक्ष लोकतंत्र का विचार किया। इसका मूल उद्देश्य यही है कि व्यक्ति दलगत संकीर्ण विचारों को त्यागकर सर्वोदय की मूल भावना के अनुसार कार्य करें। इससे दलों की अहमन्यता एवं अवसरवादिता समाप्त होगी। प्रत्येक व्यक्ति समाज के अविभाज्य अंग के रूप में लोकतंत्र की गरिमा एवं स्वस्थविकास हेतु सत्त प्रयत्नशील रहेगा। इससे सही अर्थो में लोकतंत्र स्थापित होगा जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता आत्मगरिमा एवं स्वावलम्बन के उच्च आदर्श की व्यापक रूप से प्रतिष्ठा होगी।

(घ) ग्राम स्वराज्य का दर्शन

आधुनिक भारतीय चिंतन में विकेन्द्रीकरण की अवधारणा सर्वोदय विचारधारा पर अवलम्बित है। [1] सर्वोदय का प्रमुख लक्ष्य यही है कि कल्याणकारी राज्य के नाम पर केन्द्रीकरण, राष्ट्रीयकरण तथा राज्य समाजवाद को प्रोत्साहन देने की बजाय जनता को स्वयं अपनी आर्थिक, सामाजिक तथा प्रशासकीय समस्याओं का सुयोग्यता पूर्वक प्रबन्ध करने की कला से प्रशिक्षित किया जाये। विनोबा जी के मत में स्वराज्य के बाद केन्द्रीकृत शासन ने हमारे सम्पूर्ण जीवन पर प्रभाव जमा रखा है। शासन के बढ़ते हुये हस्तक्षेप ने मानवीय गरिमा, एवं स्वतंत्रता को हास्यापद बना दिया है। "आज सारी राज्यसत्ता दिल्ली में इकट्ठी हुई है।" [2] इसी कारण हमें उसके कल्याणकारी प्रभाव की अनुभुति नही होती है।

विनोबा जी के अनुसार स्वराज्य अथवा स्वशासन में ही विकेन्द्रीकरण का भाव निहित है। इसलिये "इस सिद्धांत को हर व्यवहारिक सीमा तक लागू करता है, जीवन के सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में क्रियान्वित करना है।"[3] स्वशासन का एक पहलु विकेन्द्रित सत्ता है, अर्थात सारी सत्ता गॉव-गॉव में बिखरी होनी चाहिये और गॉव के लोगों को अपना कारोबार स्वयं चलाना चाहिये।" [4] विनोबा जी के मत में अंग्रेजों ने अपने शासन काल में गॉवों की ग्रामपंचायतों एवं

---

1. डा0 पुरूषोत्तम नागर ' आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन' पृष्ठ - 670
2. विनोबा भावे लोकनीति - पृष्ठ - 106
3. विनोबा भावे, भूदान टू ग्रामदान पृष्ठ - 41 तंजार 1956
4. विनोबा भावे लोकनीति - पृष्ठ - 106

ग्रामोद्योग को नष्ट कर दिया। गॉव पूर्णतया नष्ट हो गये। लेकिन देश के स्वतंत्र होने के बाद भी गॉव पराधीन है। सारी सत्ता दिल्ली में केन्द्रित है। गॉव अधिकार विहीन है।[5] इसीलिये "हम तो गॉव-गॉव में राज्य चाहते है। हम तो चाहते है कि सारी सत्ता गॉव के हाथों में रहे। प्रान्तीय सरकार का काम गॉव पर सत्ता चलाना नहीं, लेकिन एक गॉव का दूसरे गॉव से सीधा सम्बन्ध बना रहें, यह देखना हैं। जितनी ऊँची सरकार उतना व्यापक काम उसके पास रहे, लेकिन सत्ता कम रहे। सारी भौतिक सत्ता गॉवो में रहे और केन्द्र में नीतिमान, चरित्रयशील लोग जाये, जिनकी नैतिक सत्ताा रहे"[6] इस प्रकार " Gram Swaraj means direct government of the local community by the whole community it self, with out as far as posible any un - warranted out side interference, in the affairs of the village"[7]

विनोबाजी ग्रामस्वराज्य को सहभागी लोकतंत्र का सही स्वरूप मानते हैं जो वर्तमान में स्थापित औपचारिक लोकशाही को वास्तविक रूप में प्रतिष्ठित करने में सफल होगा। विनोबा जी ने ग्रामदानी गॉवों में ग्राम्यस्वराज्य की स्थापना पर बल दिया। उन्होनें ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य का उद्घोष किया। "ग्रामदान में हर व्यक्ति अपनी जमीन का 20वॉं हिस्सा, अपनी फसल का 40वॉं हिस्सा और अपनी नौकरी की आमदनी का 30वॉं हिस्सा गॉव के विकास के लिये ग्राम-कोश में देने की प्रतिज्ञा करता हैं। ग्रामसभा गॉव के प्रबन्ध का भार लेती है। भारत के जनतंत्र (ग्रामस्वराज्य) के लिये इससे सुन्दर वातावरण कहा मिलेगा ? राजनैतिक जनतंत्र आर्थिक जनतंत्र के बिना ढकोसला, हैं। यहॉं ने केवल राजनैतिक और आर्थिक जनतंत्र है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जनतंत्र भी हैं।"[8] अतएव ग्रामदान स्वराज्य के लिये ठोस आधार प्रस्तुत करता है ।

विनोबा जी ने ग्रामस्वराज्य के माध्यम से स्थानीय शासन को राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की योजना के अर्न्तगत पुर्नजीवित किया। इससे प्रत्येक गॉव एक स्वशासित इकाई के रूप में अपने कार्यो

---

5. वर्तमान में सर्वोदय (गांधी) की भावना के अनुरूप पंचायती राज्य की स्थापना का प्रयास किया जा रहा है।
6. विनोबा भावे - लोकनीति - पृष्ठ - 112
7. Basant Nargalkar 'The Creed of saint Vinoba - P. 162
8. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 550

का निष्पादन स्वयं करे और स्वशासन के माध्यम से अपनी कठिनाइयों का निराकरण भी स्वयं करें। मानव को सामजिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों में प्रतिष्ठित करने का सशक्त मार्ग यही है। यही आधारभूत लोकतंत्र के निर्माण का सिद्धान्त है जो लोकतंत्र को सच्चे अर्थो में जनता तक पहुँचाता हैं। ग्रामाधारित विकेन्द्रित सत्ता, एवं अहिंसक समाज व्यवस्था का निर्माण उनके ग्रामस्वराज्य का मूल उद्देश्य है ।

ग्रामस्वराज्य में केवल राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का ही आदर्श नही है। आर्थिक पक्ष भी इसमें सन्निहित है। विनोबा जी प्रत्येक गाँव को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाना चाहते है। प्रत्येक गाँव अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की वस्तुओं का स्वयं निर्माण करे। खादी की योजना विनोबा जी के ग्रामस्वराज्य का ही अंग है। यह परिश्रमशीलता, अशोषण एवं आत्माभिव्यक्ति का प्रतीक हैं जो गाँव की बेकारी को दूर करने के साथ-साथ वस्त्र स्वावलम्बन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। [9] विनोबा जी लघु एवं कुटीर उद्योगों से ग्रामों के पुर्ननिर्माण पर बल देते है। औद्योगीकरण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति ने ग्रामोद्योगों का विनाश किया है। इससे गाँव आर्थिक रूप से कमजोर हुये है। "इसलिये बिना ग्रामोद्योगो के ग्राम का उत्थान नहीं हो सकता है।" [10] ग्रामस्वालम्बन के लिये विनोबा जी का प्रमुख संकल्प यही है।

ग्रामस्वराज्य का आधारभूत ढाँचा प्रस्तुत करते हुये विनोबा जी ने इसके मुख्य पहलु सामने रखे -

ग्रामसभा [11]

प्रत्येक गाँव में 21 वर्ष से ऊपर के सब लोगों की एक ग्रामसभा बनेगी। इन्हीं लोगों की सर्वसम्मति से संचालन समिति चुनी जायेगी। जिसमें पाँच-सात या दस सदस्य होगें। ये सदस्य गाँव से सम्बन्धित विभिन्न मामलों का संचालन करेगें। सभी निर्णय सर्वानुमति के आधार पर होगें। ग्रामसभा स्वशासन की जीवन्त इकाइयों के रूप में कार्य करेगी। गाँव की समस्त भूमि ग्रामसभा की सामूहिक

---

9. विनोबा साहित्य - खण्ड 18 पृष्ठ - 329
10. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 177
11. विनोबा सर्वोदय विचार और स्वराज्य शास्त्र पृष्ठ - 178

सम्पत्ति होगी।

ग्रामकोष -

विभिन्न स्रोतों से होने वाली आय को एकत्रित करने के लिये एक ग्रामकोष का निर्माण किया जायेगा। इसका 40% भाग विकास कार्यो खेती सुधार, सिचाई व्यवस्था, स्कूल, वाचलनालय, औषधि की व्यवस्था आदि में व्यय होगा।

शान्ति सेना -

वर्तमान राज्य व्यवस्था का आधार पुलिस एवं सेना है। विनोबा जी के मत में "ग्रामस्वराज्य अथवा अहिंसक समाज व्यवस्था में पुलिस और सेना के लिये कोई स्थान नही है।" (12) यहाँ की आन्तरिक सुरक्षा पुलिस के स्थान पर शान्ति सेना करेगी। इसका गठन अहिंसा और देश सेवा में विश्वास रखने वाले लोगों के ऐच्छिक सहयोग से होगा।" (13) शान्ति सेना सामान्य समय में समाजसेवा और विशिष्ट मौकों पर शांति स्थापना का कार्य करेगी। "शांति सेना की स्थापना से समाज को लाठी और बंदूक से मुक्ति मिल जाती है।" (14)

इस प्रकार "प्रत्येक गाँव अपनी भूमि का स्वामी ग्रामसभा-गाँव की नियामक शक्ति, ग्रामकोष गाँव की पूंजी, ग्राम शान्ति सेना, गाँव की शांतिरक्षक होगी।" (15) विनोबा जी ने ग्रामस्वराज्य का सम्पूर्ण स्वरूप प्रस्तुत किया है। अहिंसक समाज व्यवस्था के निर्माण के प्रथम सोपान के रूप में उन्होनें ग्रामस्वराज्य को सर्वोपरि माना है।

विनोबा जी के ग्रामस्वराज्य का प्रमुख अभिक्रम गाँवों को संगठित, स्वायत्त और स्वाश्रयी इकाई के रूप में मजबूत करना है। वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था का प्रायोगिक स्वरूप सर्वोदय की विचारधारा को प्रतिध्वनित करता है, विनोबा जी इससे सहमत नहीं है। वह इसकी आलोचना करते है।

---

12. विनोबा भावे लोकनीति पृष्ठ - 116
12. बसन्त नरगोलकर 'दि क्रीड आफसेन्ट विनोबा पृष्ठ - 164
13. पूर्वोक्त
14. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 550
15. राममूर्ति 'इतिहास में अंहिसाः गांधी, विनोबा की देन' पृष्ठ - 9

"ग्राम पंचायत सत्ता का एक टुकड़ा हैं इसमें सेवा का अंश नही है। इसमें सत्ता की होड़ आ गयी है। .... ग्राम पंचायतों के राजनैतिक पक्ष घुस आये हैं। हर एक को लगा है कि यह एक सत्ता का स्थान है यहाँ सत्ता हाथ में आ जायें तो ऊपर विधानसभा में और लोकसभा में जा सकेगें।"(16) विनोबा जी के ग्रामस्वराज्य में "दलीय या सत्ता की राजनीति के लिये कोई स्थान नही है इसका आधार विशुद्ध लोकशक्ति है जो हिंसा की विरोधी दण्डशक्ति से भिन्न एवं स्वतंत्र है। जो राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का आधार बन सकती है।

ग्रामस्वराज्य केवल राजनीतिक एवं आर्थिक पुनर्निर्माण का कार्यक्रम नहीं है "बल्कि इसमें विश्वशांति के बीज निहित है।" आज दुनिया अन्याय उत्पीड़न एवं शोषण से ग्रस्त है। सत्ता और सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण ने मानव जाति को दास बना रखा है। अतः अहिंसा, अशोषण एवं न्याय की दिशा को तय करने के लिये ग्रामस्वराज्य महत्वपूर्ण कदम है। ग्रामस्वराज्य में जयजगत की कल्पना है। विनोबा जी के मत में "विश्वम पुष्टम ग्रामे अस्मिन् अनातुरम, हमारे गाँव में परिपुष्ट और अरोग्यवान विश्व के दर्शन हो।" (17) उन्होनें कहा कि "विश्व की भावी व्यवस्था में केवल दो ही वस्तु रहेगी ग्राम और विश्व। सुविधा के लिये दुनिया के नक्शे पर विभिन्न देशों के नाम रहेगे परन्तु विश्व और गाँव के बीच अन्य किसी तंत्र का अस्तित्व नही रहेगा। जीवन के भौतिक पक्ष से सम्बन्ध रखने वाली सत्ता गाँवों में रहेगी सम्पूर्ण जगत के नैतिक विकास और प्रगति की सत्ता विश्व केन्द्र के हाथों में होगी। राज्य और जिले केवल ग्राम - समाज के प्रतिनिधि रहेगें। सम्पूर्ण समाज व्यवस्था का आधार ग्राम होगें .... ।" (18) इस प्रकार लोकसत्ता के साकार रूप में विकेन्द्रित राज्य की सैनिक शक्ति से मुक्त स्वायत ग्राम होगे जो सम्पूर्ण मानवता की स्वतंत्रा समानता एवं न्याय का समग्र आधार प्रस्तुत करेगे।

इस प्रकार विनोबा जी ने ग्रामस्वराज्य को आदर्श जनतंत्र के रूप में प्रस्तुत किया है। ग्रामस्वराज्य में हर व्यक्ति गाँव की सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था में समान रूप से सम्मिलित होता है। इससे सही अर्थो में लोकनीति और लोकशक्ति पर आधारित राज्यमुक्त स्वशासित अहिंसक समाज व्यवस्था के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होता है।

---

16. विनोबा भावे ' लोकनीति' पृष्ठ - 109
17. विनोबा साहित्य - खण्ड 16 'तीसरी शक्ति' पृष्ठ - 242
18. विनोबा - भूदान यज्ञ 8-9 - 1962

(ड़) राजनीति बनाम लोकनीति

विनोबा जी ने राजनीति में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के लिये दलगत सत्तात्मक राजनीति के विकल्प के रूप में लोकनीति को प्रस्तुत किया। विनोबा जी ने "राजनीति शास्त्र को नाम-घोषाकार के विचार राक्षसर शास्त्र के रूप में स्वीकार किया और लोकनीति को देवतार शास्त्र के रूप में प्रस्तुत किया।" (1) उन्होनें कहा दलगत सत्तात्मक राजनीति संकीर्ण राजनीति है। इसका आधार सेना और दण्डनीति है।" (2) आज की राजनीति धर्म, जाति, सम्प्रदाय क्षेत्रीयता के नाम पर इस देश की समन्वय वादी संस्कृति एवं समाज को खण्डित कर रही है। उनके शब्दों में "आज की राजनीति दिलों को जोड़ने वाली नहीं है। वह हर हालत में तोड़ने वाली है। कैंची लेकर अनेक निमित्त से दुनिया को दो टुकड़े करने की प्रक्रिया चल रही है। जातिवादी जाति की, धर्मवादी धर्म की, राष्ट्रवादी राष्ट्र की एवं पक्षवादी पक्ष की कैंची लेकर दुनिया के दो टुकड़े कर रहे। इस तरह हमारा चिंतन खण्डित होता है।" (3)

विनोबा जी राजनीति को समाप्तकर लोकनीति की स्थापना करना चाहते है। वह मानते है कि "राजनीति, शोषण, षड़यंत्र और अन्य अनैतिक कार्यो को प्रोत्साहित कर सार्वजनिक जीवन में मानवीय मूल्यों को तिरोहित करती है। सत्तालोलुप व्यक्तियों द्वारा राजनीतिक शक्ति का प्रयोग अपने विरोधियों को कुचलने के लिये किया जाता है। राजनीति में मानव के शोषण का प्रतिकार करने का छद्मरचा जाता है। वास्तविक अर्थो में राजनीति स्वयं जनसाधारण का शोषण करती है (4) उनके मत में "सत्ता वासना है, इसलिये सत्ता द्वारा सेवा भ्रम है।" (5) इसलिये राजनीति के शुद्धिकरण के लिये राजनीति की जगह लोकनीति की स्थापना करना चाहते हैं। उनके मत में "लोकनीति दण्ड निरपेक्ष एवं

1. विनोबा साहित्य खण्ड 16 तीसरी शक्ति पृष्ठ - 147
2. डा0 दशरथ सिंह ' गांधीवाद को विनोबा की देन पृष्ठ - 416
3. विनोबा साहित्य - तीसरी शक्ति - 142
4. डा0 पुरुषोत्तम नागर - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, पृष्ठ - 640
5. विनोबा भावे - लोकनीति पृष्ठ - 88
6. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 8
6. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 90

सत्ता निरपेक्ष है।" वह लोकनीति को "सेवा, भक्ति और निरहंकारिता का मार्ग मानते है।" (6) लोकनीति मानव को सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों में प्रतिष्ठित करती है। लोकनीति के दो पक्ष है – एक सेवा द्वारा समाज के सभी व्यक्तियों के आपस में मिलाना और समाज के टुकड़े करने वाली चीजों को तोड़ना।" (7) चूँकि दलगत राजनीति समाज को तोड़ती है, अतः लोकनीति में सभी पक्षों को तोड़कर एक समरस समाज की स्थापना करने का प्रमुख संकल्प हैं।

विनोबा जी के अनुसार गांधी जी ने सदैव लोकनीति ही चलायी। बहुत लोगों को भ्रम है कि उनकी राजनीति पर पकड़ थी। उन्होनें "परतंत्र भारत में जो कार्य किया गया वह वास्तव में उनकी लोकनीति का ही अखंड साधना थी।" (8) उन्होनें हिंसा विहीन राजनीति का सूत्रपात कर स्वतंत्रता, समानता और न्याय को राष्ट्रीयजीवन में समीकृत किया। गांधी जी के विचारों में "सत्याग्रह रचनात्मक कार्यक्रम, शांतिसेना, और स्वयंसेवक के विचार पूर्ण लोकनीति के विचार है जिन्हें अंतिम रूप से इकाईबद्ध करने पर सर्वोदय का विचार बनता है" (9) विनोबा जी का दृढ़ विश्वास है कि "गाँधी का लक्ष्य भारत में सत्तात्मक राजनीति के बदले लोकनीति की स्थापना थीं।" (10) लेकिन जहाँ बापू राजनीति का आध्यात्मीकरण करना चाहते थे, वही विनोबा "राजनीति के वृक्ष का पूर्ण उच्छेद करना चाहते है" (11) क्योंकि उनके मत में "स्वतंत्रता के पश्चात दलगतता नौकरशाही तथा हिंसा-प्रतिरोध पर आधारित जीवन दृष्टि तथा व्यवस्था का आगमन अनिष्ट का सूचक है। अल्पमत और बहुमत का भेद डालकर कारोबार चलता है वहाँ राजनीति को कायम रखकर आध्यात्मीकरण का दावा भी अव्यवहारिक बन जाता है।"(12)

विनोबा जी के अनुसार लोकनीति में विकेन्द्रित शासन व्यवस्था आग्रह है। लोक की प्रतिष्ठा बढ़े, आत्मजीवन में केन्द्रीय सत्ता का दखल कम हो, शासन पर जनता का अंकुश हो और जनता पर सर्वहितकारी विचार का नियमन हो, लोकनीति का प्रमुख उद्देश्य यही है। **विनोबा जी के शब्दों में** –

"लोकनीति का अर्थ क्या है? लोकनीति में सत्ता एक-एक करके लोगों के ही हाथ में आ

---

7. पूर्वोक्त –
8. पूर्वोक्त – 85
9. सुरेशराम 'विनोबा एण्ड हिज मिशन' पृष्ठ – 446 – 47
10. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ – 416
11. विनोबा – लोकनीति पृष्ठ – 86
12. कांतिशाह भाई, 'गांधी – जैसा देखा समझा विनोबा ने – पृष्ठ – 75 – 80

जानी चाहिये। सरकार सदा परदे के पीछे रहें अथवा कुम्हला कर झड़ जायें। और उनके स्थान पर लोक-व्यवस्था बने। कर्तव्य की लगाम लोगों के हाथ आ जायें और लोग उसके उपयोग की इच्छा और शक्ति दिखाये। राजनीति में ऊपर से नीचे जाने की प्रक्रिया हैं। लोकनीति में नीचे से ऊपर जाने की प्रक्रिया है। राजनीति में केन्द्र मे सारी सत्ता रहती हैं। लोकनीति में गॉव-गॉव में राजनीति में ऊपर वाले चंद लोग हुकुम चलाते है, लोकनीति में सारा अभिक्रम लोगों के हाथ में रहता है।" (13)

विनोबा जी के अनुसार आज की सत्ता प्रधान राजनीति का प्रवाह क्षुद्र राष्ट्रवाद की ओर है। लोकनीति भारत की वैश्वानर संस्कृति के अनुकूल है। जिसमें एक विश्व का सपना समाहित है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में राष्ट्र की सीमायें सिकुड़ गयी है। सभी राष्ट्र एक हो गये है। इस विज्ञान युग में "धर्म पद और राजनीति नहीं टिकेगी।" (14) उनकी राय में "अब हमें विश्व-व्यापक राजनीति का विचार करना चाहिये। हम ऐसी व्यापक विशाल राजनीति को लोकनीति कहते है जिसमें सारा विश्व एक है, हम सारे उसके नागरिक है, जिसमें किसी का किसी पर अनुशासन नही चलता हर मनुष्य का अपने पर अनुशासन चलता है।" (15)

दलगत प्रजातांत्रिक राजनीति मे निर्णय का आधार बहुमत हैं। लोकनीति में निर्णय का आधार सर्वानुमति है। बहुमत के निर्णय में अल्पमत की सुरक्षा नहीं होती है। परन्तु "जहॉं अल्पमत ही रक्षा होती हैं वही लोकमत और लोकनीति है। भीड़ की वृत्ति लोकनीति नहीं।" (16)

उपयुर्क्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि लोकनीति राजनीति से सवर्था भिन्न हैं। लोकनीति और राजनीति की प्रक्रिया में निम्न लिखित मूलभूत अन्तर है -

(क) लोकनीति का मुख्य आधार लोकशक्ति है जबकि राजनीति का आधार दण्ड शक्ति, कानूनी शक्ति एवं सैनिक शक्ति है। (17)

---

13. विनोबा साहित्य - 'तीसरी शक्ति' - 147
14. विनोबा भावे, लोकनीति, पृष्ठ - 98
15. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 100
16. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 8
17. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ट - 422

(ख) राजनीति राज्य संस्था को लोककल्याण का मुख्य उपकरण मानती है, इसलिये वह लोगों का राज्यावलम्बी एवं सत्ता – अभिमुख बनाती है, लोकनीति नागरिकों को एक दूसरे की स्वतंत्रता के अभिभावक मानकर उनके अभिक्रम से स्वायत संस्थाओं के द्वारा लोकहित का मार्ग प्रशस्त करती है।[18]

(ग) राजनीति में प्रशासन अधिक विस्तृत और तीव्र होता जाता है, लोकनीति में प्रशासन की जगह अनुशासन एवं आत्मसंयम होता है।[19] राजनीति में सत्ता की प्रतिस्पर्द्धा और अधिकार ग्रहण तथा प्रतिनिधित्व के लिये उम्मीदवारी होती है। लोकनीति में लोक-चारित्रय के विकास की तत्परता होती है, उम्मीदवारी का निषेध होता है।[20]

(घ) राजनीति से राष्ट्रवाद पुष्ट होता है लोकनीति से नागरिक के पुरूषार्थ को प्रोत्साहन मिलता है[21] अतएव लोकनीति दलीय एवं सत्तात्मक राजनीति से भिन्न लोकशक्ति स्वायत शासन नागरिक स्वतत्रंता, एवं लोक चारित्रय के विकास पर आधारित है। इस प्रकार यह केवल व्यवस्था सूचक पद ही नही बल्कि सम्पूर्ण रूप से एक विशेष प्रकार की जीवन पद्धति एवं समाज व्यवस्था का सूचक है।

क्योंकि –

"As a way of life, it stands for the self-regulation of individual conduct .... as a form of social order it envisages a society in which police and military will have little to do, and law will interfere least with life"[22]

इस प्रकार लोकनीति का आधार लोकशक्ति है यह आत्मनियन्त्रित जीवन पद्धति को प्रोत्साहित करती है ओर लोगों की सामाजिक संवेदनशीलता के विकास को भी प्रोत्साहित करती है। यह व्यक्ति की राज्यावलम्बी प्रवृत्ति को समाप्त कर स्वायत संस्थाओं द्वारा उसके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

---

18. विनोबा – लोकनीति (प्राक्कथन में दादा धर्माधिकारी के कथन) पृष्ठ – 11
19. पूर्वोक्त
20. पूर्वोक्त
21. पूर्वोक्त
22. डा० विश्वनाथ टंडन, 'सर्वोदय आफ्टर गाँधी' पृष्ठ – 125

(च) लोकशक्ति

विनोबा जी ने सर्वोदयी समाज की रचना के लिये लोशक्ति के निर्माण पर बल दिया। यह हिंसा शक्ति और राज्य की दण्ड शक्ति से सर्वथा भिन्न है। विनोबा ने स्वतंत्र लोकशक्ति के निर्माण का आवाहन करते हुये सर्वोदय सम्मेलन चांडिल (बिहार 1954) में कहा था -

" I said that we should create - swatantra lok shakti - the self relient power of the people .... It should be distinguished from the other two front of power - the power of violince (Hinsa shakti) and power of the state (Dand shakti). The power of the people is opposite to the power of violence and though. there is no such Trenchant opposition between the power of the people and power of state, yet two different. There is of course an element of violence in the power of the state too, but in as much as the power has been entrusted to the state by the people, its character differs from the that of naked violence and the two can not be put together in the same class we how ever intend to go further ahead of it and create conditions which will do away with the need to use even the power of the state." (1)

विनोबा जी उपरोक्त कथन से तीन बातें स्पष्ट होती है। (2) प्रथम - वह सामाजिक परिवर्तन के लिये हिंसा शक्ति का विरोध करते है

द्वितीय - वह राज्य की दण्डशक्ति को मान्यता देते है, क्योंकि यह लोगों की इच्छा शक्ति पर आधारित है।

तीसरा - वह इन दोनों के स्थान पर लोकशक्ति का निर्माण करना चाहते है क्योंकि समाज में स्थायी परिर्वतन इसके माध्यम से ही लाया जा सकता हैं। विनोबा जी के मत में "लोकशक्ति का सामान्य अर्थ जनता के प्रबुद्ध विचार पर आधारित जनमत की शक्ति है।" (3)

विनोबा जी ने लोकशक्ति का प्रयोग भिन्न-2 अर्थो में किया है। प्रथम अर्थ में "लोकशक्ति"

---

1. Vinoba Bhave "Bhoodan yojna" P - 86 - 87
2. Nageshwer Prasad 'Vinoba's consensual revolution' Gandhi Marg P- 531

नागरिक शक्ति, नागरिकों की अहिंसक स्वावलंबी शक्ति का सूचक है।" [4] इसमें जनता अपनी समस्याओं को पहचानने लगती है तथा उसके समाधान के लिये राज्य पर निर्भर न होकर स्वयं प्रयत्नशील होती है तथा अपने को दूसरे की सहायता करने योग्य बना लेती हैं। तब इस अर्थ में जनता द्वारा वास्तविक लोकशक्ति का निर्माण होता है।" [5]

दूसरे अर्थ में "लोकशक्ति नागरिको के शासन के प्रति प्रतिरोधात्मक कार्य के रूप में प्रकट होती है" [6] इस अर्थ में लोकशक्ति के उदय के लिये नागरिकों में कष्ट-सहन और सत्याग्रह की शक्ति का विकास होना अनिवार्य है। [7] तृतीय अर्थ में "लोकशक्ति संस्थाओं और नागरिकों की परिस्थितियो में परिर्वतन लाने वाली शक्ति की सूचक है।" [8] इसके अर्न्तगत जनता लोकमत के प्रतिकूल सरकार को अपदस्थ करके अपनी इच्छा के अनुसार नयी सरकार का सृजन कर सकती है। इसमें जनता असहयोग प्रतिरोध एवं अन्य अहिंसक साधनों का प्रयोग करेगीं। इस प्रकार लोकशक्ति नागरिकों की स्वावलम्बी वृत्ति, प्रतिरोधात्मक शक्ति एवं समाज परिर्वतन की समन्वयात्मक शक्ति की सूचक है।

विनोबा वर्तमान समाज की राज्यमुखी प्रवृत्ति की आलोचना करते है। वह मानते है "राज्य की शक्ति नागरिकों द्वारा प्रदत्त है जो नागरिक शक्ति की तुलना में नगण्य और अमहत्वपूर्ण है।" [8] उनके अनुसार यदि राज्य के कानून लोकमत के अनुकूल नहीं है तो उसका पालन सामाजिक जीवन में असंभव है। "जनतम की तुलना विनोबा जी इकाई व राज्य की तुलना शून्य से करते है।" [9] यदि जनमत की इकाई है, तो कानून रुपी शून्य का भी मूल्य हो जाता है। अतएव विनोबा जी लोकशक्ति को ही वास्तविक शक्ति मानते है। यही राज्य की शक्ति का मूल आधार है।

---

3. सुरेशराम 'विनोबा एण्ड हिज मिशन' पृष्ठ - 97
5. Narayan J.P. " The concept of lok shakti" towards a philosophy of social work in India (ed.) S. Das Gupta, P - 107
6. पूर्वोक्त पृष्ठ - 108
7. डा0 सुरेशराम "विनोबा एण्ड हिज मिशन" पृष्ठ - 409
8. डा0 दशरथ सिंह गांधीवाद को 'विनोबा की देन' पृष्ठ - 414
9. सुरेश राम 'विनोबा एण्ड हिज मिशन' पृष्ठ - 407

विनोबा जी मानव समाज के परिवर्तन एवं पुनर्निमाण के लिये प्रेम, अहिंसा एवं करूणा पर आधारित लोकशक्ति को मूलभूत मानते है। उन्होने कहा स्वतंत्र लोकशक्ति के निर्माण के लिये आवश्यक है कि जनता अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहे। शासन के हाथों में सम्पूर्ण शक्ति सौपकर केवल सरकारी सेवा के भरोसे रहने से मनुष्य की सृर्जनात्मक क्षमता का ह्रास होता है। अतः दण्ड मुक्त शासन के निर्माण के लिये तीसरी शक्ति (लोकशक्ति) को स्थापित करने के लिये दो बाते अनिवार्य है।" [10]

(क) हमें सत्ता और शक्ति का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण करना होगा ताकि लोग अपनी समस्याओं का निदान स्वयं करें।

(ख) हिंसा में शक्ति है ऐसा हम हरगिज नहीं मानते है, प्रेम और अहिंसा में ही मानते है। इस तरह का शिक्षण, इस तरह का मानसशास्त्र और तत्वज्ञान लोगों में चलाना अर्थात प्रेम और अहिंसा की शक्ति का सामाजिक जीवन में विस्तार करना ही लोकशक्ति है।

इस प्रकार विनोबा जी हिंसा शक्ति की विरोधी और दण्ड शक्ति से भिन्न लोकशक्ति को सर्वोदय की अन्तिम शक्ति मानते है। "हिंसा सर्व की शक्ति नहीं हो सकती अतः वर्जित है। दण्डशक्ति शासन शक्ति है, सर्वोदय में शासन नहीं अनुशासन अपेक्षित है।" [11] अतः लोकशक्ति ही सर्वोदय के शासनमुक्त समाज के निर्माण का आधार है। भूदान-ग्रामदान इत्यादि आन्दोलन के द्वारा विनोबा इसी लोकशक्ति के निर्माण का प्रयत्न करते है।" [12]

---

10. विनोबा साहित्य खण्ड - 16 तीसरी शक्ति पृष्ठ - 88 - 89
11. आत्रेय 'विनोबा की देन' गांधीमार्ग, 1983 पृष्ठ - 49
12. सुरेशराम, विनोबा एण्ड हिज मिशन पृष्ठ - 413

(छ) विनोबा जी के राजनीतिक विचारों की समीक्षा

विनोबा जी अद्वितीय राजनीतिक चिन्तन थे। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के पुनर्निमाण के लिये उन्होनें हिंसा और शोषण पर आधारित मूल्यविहीन राजनीति, पाश्चात्य प्रणाली पर आधारित लोकतंत्र एवं दलीय अधिनायकतत्व की आलोचना की और उसके स्थान पर लोकनीति लोकशक्ति, ग्रामस्वराजय एवं दलविहीन सहभागी लोकतंत्र का विचार दिया। उन्होनें एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना की जो हिंसा व शोषण से पूर्णतया मुक्त हो। जहाँ व्यक्ति पर बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता न्यूनतम हो। जहाँ स्वशासन में ही मानवीय समाज की व्यवस्था का आग्रह हो।

विनोबा जी ने कहा कि हम राज्य नहीं स्वराज्य चाहते हैं अर्थात हर एक का अपना राज्य अथवा स्वशासन में ही विकेन्द्रीकरण का भाव निहित है। और उन्होनें अपने विकेन्द्रित एवं अहिंसक समाज के निर्माण का व्यवहारिक आदर्श 'ग्रामस्वराज्य' के रूप में प्रस्तुत किया। जिसमें न केवल राज्य की आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण का भाव निहित है। वरन् लोकसत्ता को व्यापक रूप से प्रतिष्ठित करने का आग्रह भी है।

विनोबा जी के ग्रामस्वराज्य का प्रमुख अभिक्रम गाँवों को संगहित स्वायत्त और स्वाज्रयी इकाई के रूप में प्रतिष्ठित करना है निः संदेह महत्वपूर्ण है। जिसका प्रथम पहलु विकेन्द्रित सत्ता है। अर्थात सत्ता गाँव - गाँव में बिखरी होनी चाहिये और गाँव के लोगों को अपना कारोबार स्वय चलाना चाहिये।" [1] यहाँ उल्लेखनीय है कि संविधान का 73 वाँ संविधान संशोधन अधिनियम (पंचायतीराज व्यवस्था) गांधी एवं विनोबा के ग्रामस्वराज्य के स्वप्न को साकार करने की दिशा में पहला कदम है। इसमें 11 वीं अनुसूचि को जोड़कर गाँवों को कार्यो के लिये 29 विषय दिये गये है। जैसे - भूमि सुधार, लघु सिंचाई, बाल विकास, पशुपालन, बालविकास इत्यादि। प्रथम बार ग्रामसभा को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ है। अभी इस दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाने बाकी है। क्योंकि इसमें अभी पूर्णता नहीं है।

उनके ग्रामस्वराज्य विचार के दूसरे पहलू जिसके अन्तर्गत उन्होनें कहा था कि "सारी भौतिक सत्ता गाँवों में रहे और केन्द्र में नीतिवान चरित्रशील लोग हो जिनकी नैतिक सत्ता रहे" [2] अर्थात् केन्द्र

1. विनोबा - लोकनीति - पृष्ठ - 106
2. विनोबा - लोकनीति - पृष्ठ - 112

एवं प्रान्तीय सरकार की शक्तियों को समाप्त करके या न्यूनतम करके सारी शक्तियाँ ग्रामपंचायतों को सौप दी जाये या दूसरे शब्दों में कह सकते है कि जितनी ऊँची सरकार हो उनके पास सत्ता उतनी ही कम हो। यह वर्तमान में व्यवहारिक दृष्टि से असंगत है।

क्योंकि "हमारी बढ़ती हुई आवश्यकता और समस्याओं की पूर्ति केवल एक ग्रामद्वारा ही असंभव है .... साथ ही व्यवस्था, सुरक्षा, शान्ति एवं न्याय की दृष्टि से भी केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों की एक उपयोगी भूमिका है" [3] इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

विनोबा जी ने पाश्चात्य प्रणाली पर आधारित संसदीय लोकतंत्र के स्थान पर सहभागी लोकतंत्र का विचार दिया। जिसमें उन्होनें बहुमत के सिद्धान्त की जगह सर्वसम्मति के सिद्धान्त के पालन पर जोर दिया। हालांकि बहुमत के सिद्धान्त के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किये जाते है। [4]

A- Since Majority is expected to command qreater physical force to impose its will, it is safer to go by its opinion.

B- Since democracy postulates equal worth of every individual conscience the majority opinion has a better title to be accepted.

C- If the right of minority to rule is accepted and insuprable difficulity arises as to what minority should be accorded this right?

लेकिन इन तथ्यों को लोकतंत्र की मूलभावना के अनुसार नही माना जा सकता क्योंकि - There is no guarantee that majority would be able to compell minority to accept its point of view. and secondly, the very Idea of force should find no place in an arguement for democrracy" [5]

अतः विनोबा का सर्वसम्मति का सिद्धान्त अल्पमत और बहुमत के झगड़े को समाप्तकर लोकतंत्र को सही अर्थो में प्रतिष्ठित कर सकती है। क्योंकि - " The decision in a truly democratic government there should not merely be the decisions of the Majority, But they must reflect com-

---

3. बी एल फडिया 'आधुनिक राजनीतिक चिंतन' पृष्ठ - 319 का सार
4. H. Finer : The Theory and practice of Modern Government, P - 81
5. Dr. V. Tondon 'Sarvodaya after Gandhi P - 130

promises in which all the idea are reconciled and which can be acceptable to all because they bear the imprint of all" (6)

विनोबा जी मानते है कि ग्रामपंचायतों से सर्वसम्मति के सिद्धान्तों की शुरूआत होने से ही सरकार की उच्चतर इकाइयों में इसकी सफलता सुनिश्चित हो सकेगी।

विनोबा जी के राजनीतिक विचारों में 'दलविहीन लोकतंत्र'' महत्वपूर्ण है। हम देखते है "हमारी दलीय विरोधवादी और राज्यनिष्ठ राजनीति ऐसी जगह पहुँच गयी है, जहाँ उसे जाति, सम्प्रदाय, और निहित स्वार्थो के अलावा दूसरे सामाजिक और आर्थिक आधार ही नहीं मिलते। वह लोकशक्ति को दलीय ढ़ाचे में ढ़ालकर काम करती है। क्योंकि उसे स्वतंत्र स्थान ही नहीं देती" (7) इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि लोकतंत्र के संचालन में राजनीतिक दल की सार्थक भूमिका होती है। जनमत को शिक्षित करने एवं राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय प्रश्नों एवं समस्याओं के सन्दर्भ में जागरूक बनाने के साथ राजनीतिक दल सरकार और जनता के बीच कड़ी के रूप में कार्य करते है। परन्तु वर्तमान में राजनीतिक दल अपनी इस भूमिका के प्रतिउदासीन आज सत्ता की राजनीति के कारण "राजनीतिज्ञ राष्ट्र या जनहित की उपेक्षा करके ज्यादातर समस्याओं पर दलीयहितों के आधार पर विचार करते है।"(8) लेकिन दलों को तुरन्त समाप्त करना न तो आसान है न ही व्यवहारिक। विनोबा जी भी इस सत्य से परिचित थे। अतः वह दलगत राजनीति के प्रभाव को सीमित एवं उनकी भूमिका को रचनात्मक बनाने के लिये महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत करते है।

विनोबा जी ने अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली का सर्मथन किया है। लेकिन इसको सहभागी लोकतंत्र के विकास में बाधक माना गया है। अदी० एच० डाक्टर के अनुसार "आज प्रत्येक व्यक्ति को राज्य विधानसभा और लोकसभा के सदस्यों को प्रत्यक्ष रूप से चुनने का अधिकार है। जबकि सर्वोदय के दलविहीन लोकतंत्र की योजना में व्यक्ति को केवल ग्रामपंचायतों के सदस्यों का प्रत्यक्ष रूप से चुनने का अधिकार होगा। उसे ब्लाक जिला पंचायत, राज्य विधानसभा और लोकसभा के चुनावों में मत देने

---

6. E Barker : Reflection on government P - 35
7. राममूर्ति 'इतिहास में अहिंसा गांधी विनोबा की देन' गाँधी मार्ग नवम्बर 1983 पृष्ठ - 32
8. ओ० पी० गावा 'राजनीति शास्त्र की रूपरेखा पृष्ठ - 266

का अधिकार नहीं होगा (क्योंकि ग्रामपंचायत से ऊपर के चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा सम्पन्न होगें) इस से नागरिक अपने महत्वपूर्ण राजनीतिक अधिकार से वंचित हो जायेगें।" [9]

विनोबा जी ने लोककल्याणकारी राज्य के नाम पर शासन के बढ़ते हुये प्रभाव को मानवीय स्वतंत्रता के लिये बाध्य माना है। परन्तु लोककल्याण कारी राज्य ने आज नागरिको के कल्याण की दिशा में सकारात्मक भूमिका निभानी शुरू की है। इसका कारण औद्योगिक क्रान्ति एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से मानवीय संबधों में इतने त्वरित और व्यापक परिवर्तन हुये कि शासन को समाज नियंत्रण के लिये नई भूमिका संभालनी पड़ी।" [10] आर0 एस0 मैकाइवर के अनुसार "कल्याणकारी राज्य का ध्येय ऐसी व्यवस्था करना हैं जिससे राज्य की छत्रछाया में सर्वसाधारण अभाव व असुरक्षा से पीड़ित नहीं उनके स्वास्थ की रक्षा हो और कुशलक्षेम बनी रहे।" [11] आज हम देखते है कि सरकार सार्वजनकि उपयोग के लिये बिजली, पानी, ईंधन, परिवहन, डाकतार, स्कूल, पुस्तकालय, अस्पताल एवं खेल क मैदान आदि का निर्माण एवं सुरक्षा, बाढ़, भूकम्प आदि प्राकृतिक आपदाओं के शिकार लोगों को यथासंभव सहायता प्रदान करती है।" [12] हालांकि इन सार्वजनिक सेवाओं का विस्तार समाज में निष्पक्ष ढंग से नहीं हो पाता हैं, तो इसका महत्वपूर्ण कारण हमारी व्यवस्था जन्य विकृतिया है, जिसमें भ्रष्टाचार, लालफीताशाही इत्यादि प्रमुख है। भारत में संविधान के अध्याय 3 (मौलिक आधार) और अध्याय (4) में नीति निदेशक तत्वों की व्यवस्था करके लोककल्याणकारी राज्य के उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार विनोबा जी के कुछ राजनीतिक विचारों मे व्यवहारिक दृष्टि से कतिपय कमियां दृष्टि गोचर होती है, परन्तु इस बात में कोई सन्देह नहीं कि उनमें मानव कल्याण एवं सेवा का मूलभाव है। उन्होनें नैतिक रूप से राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया। साथ ही राजनीतिक क्षेत्र में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा पर जोर दिया है। उन्होनें हिंसाशक्ति एवं दण्डशक्ति से भिन्न लोकशक्ति का विचार दिया जिसका ध्येय यही है कि प्रेम, करूणा और अहिंसा की शक्ति का समाज में विस्तार हो।

---

9. अदी0 एच0 डाक्टर 'सर्वोदय पोलोटीकल एण्ड एकानमिक स्टडी' पृष्ठ - 167
10. ओ0 पी0 गावा 'राजनीतिक सिद्धान्त की रुपरेखा पृष्ठ - 300
11. पूर्वोक्त
12. पूर्वोक्त

विनोबा जी ने लोकतंत्र की त्रुटियों को दूर करने के जो उपाय बतलाये उसके प्रकाश में हम वर्तमान दलीय व्यवस्था, बहुमत के शासन एवं चुनाव प्रणाली की कमियों को दूर कर सकते है। उनका लोकनीति का विचार निः संदेह शोषण एवं हिंसा पर आधारित राजनीति का सशक्त विकल्प है। उन्होनें क्षुद्र राष्ट्रवाद को नकारकर जयजगत का उद्घोष किया। जिसका लक्ष्य संकुचित भेदों को समाप्तकर मानव समाज को एकाकार करना हैं स्वतंत्रता का इस प्रकार विनोबा जी के राजनीतिक विचारों में स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय को मानव जीवन में प्रस्थापित करने का प्रमुख संकल्प है। अंत में डा0 वी0 पी0 वर्मा के शब्दों में कह सकते है "विनोबा जी का राजनीतिक दर्शन आध्यात्मिक आदर्शवाद पर अवलम्बित राजनैतिक एवं सामाजिक पुर्नगठन की योजना बनाने का शक्तिशाली बौद्धिक प्रयत्न है। [13]

---

13. डा0 बी0 एल फडिया 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन से उघृत' पृष्ठ – 319

चतुर्थ अध्याय

विनोबाजी का सर्वोदय दर्शन

(क) सर्वोदय समानता का दर्शन
(ख) सर्वोदय समाज की परिकल्पना
(ग) सर्वोदयी शासन प्रणाली का स्वरूप
(घ) सर्वोदय के अर्थ व्यवस्था का स्वरूप
(ड) विभिन्न वाद और सर्वोदय
  (१) सर्वोदय और साम्यवाद
  (२) सर्वोदय और अराजकतावाद
  (३) सर्वोदय और उपयोगितावाद

विनोबा जी का सर्वोदय दर्शन

(क) सर्वोदय समानता का दर्शन

सर्वोदय का विचार नवीन नहीं है। इसकी जड़े प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्र में अन्तर्व्याप्त रही है। सर्वोदय शब्द का पहला प्रयोग दो हजार वर्ष पूर्व के जैनाचार्य सुमन्त भद्र के साहित्य में मिलता है। उन्होनें लिखा है -

" सर्वायदा यंतकरम निरतम सर्वोदय तीथीगिदी तथैव" (1) अर्थात सर्वोदय अन्तर्निहित एवं सब विपत्तियों का विनाशक हैं यह मेरा तीर्थ निस्तारक ही है। इसका दूसरा प्रयोग उपनिषदों में इस भावना के रूप में मिलता है -

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वेसन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भागभवेत अर्थात सभी सुखी हो, सभी निरोगी हो, सब मंगलों का दर्शन करें, कोई भी दुःख न पाये। इस श्लोक में जो भाव है वहीं सर्वोदय में निहित है। गीता के सर्वभूतहितेरता का तात्पर्य भी सर्वोदय है।

'ईशोपनिषद' के प्रथम श्लोक में सर्वोदय की भावना को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। गांधी जी बहुधा इस श्लोक को उद्वत करते थे -

"ईशावास्या मिद्म सर्व यत्किंचम जगत्याम जगत! तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृघः कस्य स्विद धनम्।"

अर्थात अखिल बाह्मण्ड में जो कुछ जड़-चेतन स्वरूप है वह समस्त ईश्वर में व्याप्त है। इस ईश्वर को साक्षी रखते हुये त्याग पूर्वक इसे भोगते रहो। इसमें आसक्त मत हो क्योंकि धन भोग्य पदार्थ किसका है? अर्थात किसी का नही। वस्तुतः पुराण एवं उपनिषद के आध्यात्मिक दर्शन में जिस मंगल की कामना की गयी है, वह सर्वोदय विचार के समीप ही है।

सर्वोदय विचार को आधुनिक संदर्भ प्रदान करने का श्रेय गांधी जी को है। अतः वर्तमान समय में जो सर्वोदय की विचारधारा एवं कार्यक्रम है वह गांधी जी की ही देन है। सर्वोदय शब्द का पहला प्रयोग गांधी जी द्वारा रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' में प्रतिपादित विचारों के अन्तरभाव को स्पष्ट करने हेतु किया गया। इस सन्दर्भ में गांधी जी ने कहा कि "मेरा यह विश्वास है कि जो मेरे अन्तरतम

---

1. सुमन्त भद्र युक्त्यानुशासन 'सरसावा वीर सेवा मन्दिर 1951', श्लोक 61

में बसी हुयी थी उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैने रस्किन के ग्रन्थ 'अन्टू दिस लास्ट' में देखा और इस कारण उसने मुझ पर अपना अधिकार जमा लिया। और अपने विचारों के अनुसार मुझसे आचरण कराया।" (2) अन्टू दि लास्ट का शाब्दिक अर्थ है 'अन्त वाले का भी उदय' अर्थात अन्त्योदया गांधी जी ने इसका अर्थ सर्वोदय से ही लिया। उन्होनें सर्वोदय के सिद्धान्त को इन तीन वाक्यों में सूत्रवद्ध किया है। (3)

(क) सबसे भले में अपना भला है

(ख) वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक होनी चाहिये। क्योंकि आजीविका का हक दोनों का एक सा है।

(ग) मजदूर और किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।"

सर्वोदय की रूपरेखा स्पष्ट करते हुये गांधी जी ने लिखा है "यदि हम चाहते है कि हमारा सर्वोदय अर्थात सच्चे लोकतंत्र का सपना सच्चा साबित हो तो हमें छोटे से छोटे भारतवासी को भारत का उतना ही शासक समझेगे जितना देश के बड़े से बड़े आदमी को। इसके लिये शर्त यह है कि सब शुद्ध हो या, न हो तो शुद्ध हो जाये। और शुद्धता के साथ बुद्धिमानी भी होनी चाहिये। तब कोई भी अपने दिल में जाति-पाति और सवर्ण-अवर्ण के बीच भेदभाव नहीं रखेगा। हर एक सबको अपनी बराबरी का समझेगा और उन्हें प्रेम के रेशमी जाल में बांध रखेगा। कोई किसी को अछूत नहीं मानेगा। हर मेहनत करने वाले मजदूर धनी पूंजीपति को समान समझेगें सबको अपनी पसीने की कमाई से ईमानदारी की रोटी कमाना आता होगा और वे मानसिक व शारीरिक श्रम में कोई फर्क नही करेगें। यह आदर्श स्थिति जल्दी लाने के लिये हम अपने आपको स्वेच्छ से भंगी बना लेगें। जिस किसी में भी बुद्धि होगी वह कभी अफीम शराब व किसी नशीली चीज को नहीं छुयेगा। प्रत्येक पुरूष स्वेदशी का पालन जीवन व्रत के रूप में करेगा और हर एक स्त्री को जो अपनी पत्नी नहीं है, उसकी उम्र के हिसाब से अपनी माता, बहन या पुत्री समझेगा और अपने हृदय में उसके प्रति कभी काम वासना नही रखेगा। जब जरूरत पडेगी वह अपने प्राण देने को तैयार होगा, मगर दूसरे की जान लेने की कभी इच्छा नहीं करेगा।" (4)

गांधी जी के प्रिय शिष्य विनोबा जी उनके सर्वोदय विचार के प्रबल उपासक रहे है। सर्वोदय

---

2. गांधी जी सर्वोदय संपादक भारतन कुमारप्पा पृष्ठ - 3 नवजीवन प्रकाश अहमदाबाद 1955
3. पूर्वोक्त पृष्ठ - 3 - 4
4. गांधी जी - हरिजन - 18-1-48

के अर्थ को स्पष्ट करते हुये विनोबा जी ने कहा है "सर्वोदय यानि सबका उदय। किसी का उदय और किसी का अस्त ऐसी बात नहीं। सर्वोदय शब्द अच्छा है उसे महात्मा गांधी जी ने गढ़ा हैं इसमें सर्वभूते हितेरतः_की कल्पना भरी है। बाइबिल में भी यही विचार आता है। रस्किन ने उसी को आकार बनाकर अपनी 'अन्टू दिस लास्ट' लिखी। इसका मतलब है कि "पहले दर्जे वाले जितनी ही आखिरी दर्जे वाले की रक्षा। परमेश्वर के यहाँ हाथी को मन तो चीटी को भी कन मिलता ही है। सेवक को भी ऐसी दृष्टि रखनी चाहिये।" (5) इसी सन्दर्भ में उन्होनें आगे कहा "हमें चन्द लोगों का उदय नहीं करना है, अधिक लोगों का उदय भी नहीं करना है। अधिक से अधिक लोगों के उदय से भी हमको संतोष नहीं है, सबके उदय से ही हमारा समाधान होगा। छोटे बड़े, दुर्बल-सबल, जड़-बुद्धिमान सबका उदय होगा, तभी हम चैन लेगें। ऐसा विशालभाव यह शब्द हमें दे रहा है।" (6)

विनोबा जी ने सर्वोदय को साम्ययोग कहा है। उनके अनुसार "हम इस साम्ययोग के आधार पर सर्वोदय समाज का निर्माण करना चाहते है। सर्वोदय समाज बहुसंख्यक का नहीं सारे समाज का हित चाहता है। साम्ययोग का मानना है कि हर प्राणी मे एक ही आत्मा बसती है। साम्ययोग मानव-मानव में भेद नहीं करता बल्कि मानव आत्मा और प्राणीमात्र की आत्मा में भी बुनियादी भेद नहीं मानता। चूँकि सृष्टि मात्र में एक ही आत्मा का अधिष्ठान है, इसलिये जहाँ तक हो सके हमे प्राणीमात्र की रक्षा का प्रयत्न करना चाहिये।" (7)

अतः सर्वोदय सम्पूर्ण की मंगल कामना है। सर्वोदय बिना किसी भेदभाव के सभी के कल्याण की बात करता है। वह आत्मवत् सर्वभूतेषु के आधार पर भूतल पर स्थिति सभी प्राणियों की भलाई की घोषणा करता है। डा0 विश्वनाथ टंडन के अनुसार -

"सर्वोदय मानवकृत विषमता का निराकरण करना चाहता है, जीवमात्र के लिये, प्राणीमात्र के लिये, समादर प्रत्येक के लिये सहानुभूति ही सर्वोदय का मार्ग है।" (8) इसी प्रकार - दादा धर्माधिकारी ने कहा कि "सर्वोदय समान निरपेक्ष शाश्वत और व्यापक मूल्यों की स्थापना करना चाहता है। यह बाधक मूल्यों का निराकरण करना चाहता है।" (9)

---

5. विनोबा भावे 'सर्वोदय विचार और स्वराज्यशास्त्र' पृष्ठ - 48
6. पूर्वोक्त - 43
7. विनोबा साहित्य खंड - 15 आरोहण - 532 - 533
8. विश्वनाथ टंडन - 'सर्वोदय की ओर', पृष्ठ - 15

इस प्रकार सर्वोदय दर्शन मानवमात्र की समानता में अनिवार्यतः विश्वास करता है। सबके उदय को एक साथ सुनिश्चित करने के लिये वह मानवमात्र के हितों के मध्य एकरूपता और अद्वैतवादिता को स्थापित करता है। जैसे दादा धर्माधिकारी ने कहा कि -

"सर्वोदय सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करना चाहता है। अपने आदर्श के रूप में अद्वैत का सहारा लेता है और समन्वय के पक्ष में रहता है। अद्वैत हमारा आदर्श है। समन्वय हमारी नीति का समन्वय साधन है। और अद्वैत साध्य है।"

सर्वोदय की परिकल्पना में मनुष्य की सर्वागीण एवं समान उन्नति निहित है। सर्वोदय - सबका उदय, सर्वहित सर्वविकास, इन अन्तर्भूत भावों के लिये राजनीतिक दर्शन का एक विलक्षण प्रयोग है। सर्वोदय का उद्देश्य एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना है। पूर्ण व्यक्तित्व का निमार्ण करने के लिये लोगों की भौतिक, शारीरिक, धन सम्बन्धी, बौद्धिक, और आत्मिक तरक्की होनी चाहिये, आर० आर० दिवाकर ने लिखा है कि "सर्वोदय का ध्येय नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक मनुष्य का विकास है, ऐसे मनुष्य का विकास जो न केवल अपने व्यक्तित्व की क्षमताओं को विकसित करे बल्कि वह 'बसुधैव कुटुम्बकम' के आदर्श को चरित्रार्थ करता हुआ अपनी सारी योग्यताओं और क्षमताओं को उस मानवता के चरणों में अर्पित करे जो उसके भाग्य और जीवन की विधायिका हैं" (10)

अतः सर्वोदय में केवल भौतिक विकास को ही मानव कल्याण के लिये आवश्यक नहीं माना गया है बल्कि मानव जीवन के सभी पक्षों की समुचित एवं समान उन्नति पर बल दिया गया है। राकेश कुमार झा के शब्दों में -

"सर्वोदय की गांधीय धारणा में जिस उदय की परिकल्पना की गई है, वह वस्तुतः भौतिक परिलब्धियों या संसाधनों की उपलब्धि की ओर नहीं, अपितु भौतिक नैतिक व आध्यात्मिक परिलब्धियों के निश्चयवाद न्यायसम्पत वितरण की आवश्यकता प्रतिपादित करती है इस प्रकार सर्वोदय का आध यात्मिक संदर्भ जहाँ मानवमात्र द्वारा परमश्रेय की उपलब्धि से सम्बन्धित है, वहीं उसका भौतिक संदर्भ समाज में वितरणात्मक न्याय की प्रस्थापना की अनिवार्यता को रेंखाकित करता है।" (11)

---

9. दादा धर्माधिकारी - 'सर्वोदय दर्शन', पृष्ठ - 7
10. आर० आर० दिवाकर 'मानस विकास की गांधीवादी अन्तदृष्टि' लेख दिन रात (इटावा), दिनांक 30.1.78 के अंक से ।
11. राकेशनाथ झा 'गांधीय चिन्तन में सर्वोदय' पृष्ठ - 33

(ख) सर्वोदय समाज की परिकल्पना -

सर्वोदय विचारधारा ऐसे समाज की रचना करना चाहती है जिसमें लोगों का पारस्परिक भाईचारा तथा सामुदायिक भावना उच्च स्तर की हो। जहाँ लोग छोटे-छोटे संगठित समाज में रहते हो और ये संगठित लघुसमाज, या ग्राम आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो। जब ये सभी तत्व समाज में सफलतापूर्वक क्रियाशील हो जायेगे, तभी यह समाज वर्गविहीन शोषणमुक्त समाज बन सकेगा। वर्गहीनता से आशय समानता से है। इस समाज में आर्थिक, धार्मिक, जातीय या क्षेत्रीय पर विषमता एवं भेदभाव नही रहेगा। चूँकि सर्वोदय अहिंसक समाज व्यवस्था की स्थापना के लिये प्रतिज्ञावद्ध है। अतः इस समाज में उत्पादन बाजार व रोजगार की क्रियाओं में किसी प्रकार का शोषण न हो सकेगा। यहाँ सभी लोगों में परस्पर मित्रता रहेगी। प्रेम, सहयोग, सत्यनिष्ठा एवं अहिंसा इस समाज के आधारभूत तत्व होगें।

सर्वोदय का सर्वोत्कृष्ट आग्रह यही है कि मानव समाज के कल्याण के लिये हमें परिवार, स्वजन, ग्रामनगर धर्म एवं राष्ट्र आदि की संकुचित भावनाओं से ऊपर उठकर अपने चिन्तन को विस्तृत करना चाहिये। ताकि सबके उदय के उद्‌देश्य से हर व्यक्ति जुड़ सके। सर्वोदय समाज की परिकल्पना एक इकाई की कल्पना है तदनुसार हमें सम्पूर्ण समाज को एक शरीर के रूप में देखना चाहिये। सम्पूर्ण समाज में कौटुम्बिक भावना पायी जानी चाहिये। इसका आधार प्रेम है इसमें बिना किसी अपवाद सब के लिये समान स्थान होगा चाहे युवराज हो या कृषक, हिन्दू हो या मुसलमान, गोरा हो या काला सन्त हो या पापी किसी व्यक्ति एवं समुदाय को दबाने, शोषित करने या दबाने का भाव इसमें नहीं है। सभी इस सामाजिक व्यवस्था में समान रूप से भागीदार होगें। अपने श्रम का प्रयोग करेगें, सबल निर्बलों की रक्षा और संरक्षण करेगे। सभी सबके कल्याण कार्य करेगें।

महात्मा गांधी ने आदर्श समाज को रामराज्य कहा है। रामराज्य का स्वरूप निश्चित करते हुये उन्होनें कहा था कि "रामराज्य यानि शोषण रहित राज्य जिसमें गरीब या दुर्बल को समृद्धि की कीमत नही चुकानी पड़ेगी न ग्रामों की कंगाली पर शहरों की इमारते खड़ी होगी।" (1) इस भारत में न कोई कंगाल होगे न कोई अमीर मालिक होगा न आधा पेट खाने वाला कर्मचारी। लोगों को अपनी

---

1. 'योजना' 12-10-69 की सम्पादकीय

इच्छानुसार रोटी के लिये श्रम करने में गर्व और आनन्द का बोध होगा।" [2] "इसमें स्त्रियों को वहीं अधिकार होगें जो पुरूषों का होगे।" [3] सभी पढ़े लिखें होगें उनके ज्ञान का निरन्तर विकास होगा, धनी अपने धन का बुद्धिमता से प्रयोग करेगा।" [4] ये सभी विशेषतायें रामराज्य वाले भारत में होगी। वह सामाजिक भेदभाव के अभाव के कारण लोगों का जीवन मीनार की शक्ल में नही होगा जहाँ ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौके पाये पर खड़ा होना होता है अर्थात कुछ थोड़े लोग अल्प बहुसंख्यक लोगों का शोषण करते है, वहाँ तो लोगों की जिन्दगी लहरों की भांति एक के पश्चात एक के रूप में होगी अर्थात सभी समान धरातल पर होगें सभी में समानता रहेगी। " [5]

गांधी जी के इस मर्यादित समाज में अहिंसा आवश्यक सामाजिक सदगुण होगी। [6] व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के बीच सामंजस्य होगा [7] "वर्णाश्रम धर्म पर आधारित समाज में भौतिक महत्वकाक्षायें मर्यादित होगी" [8] समाज में स्त्री पुरूष को समान अधिकार प्राप्त होगें। [9] अस्पृश्यता के लिये समाज में कोई स्थान नहीं होगा। [10] इस प्रकार गांधी जी ने आदर्श समाज व्यवस्था का यह स्वरूप निर्धारित किया। गांधी जी ने सर्वोदय समाज को ग्रामप्रधान सरल ईमानदारी व सेवाभावना से ओतप्रोत होने का संदेश दिया।

गांधी जी की मृत्युपरान्त उनके सहयोगी और अनुयायी शिष्यों ने मार्च 1948 में सेवाग्राम में एकत्र होकर 'सर्वोदय समाज और कार्यक्रम का विस्तृत रूप देश के सामने रखा। उन्होनें जिस संस्था को स्थापित किया। उसे सर्वोदय समाज की संज्ञा दी गई। आचार्य विनोबा भावे ने सर्वोदय समाज के

---

2. 'योजना' 7-12-72 की सम्पादकीय
3. गांधी : यंग इण्डिया - 10-9-41
4. गांधी : सर्वोदय (वेलफेयर आफ आल) पृष्ठ - 71 - 72
5. गांधी 'मेरा समाजवाद' पृष्ठ - 59
6. गांधी सर्वोदय - पृष्ठ - 61
7. पूर्वोक्त
8. पूर्वोक्त - 62
9. पूर्वोक्त - 68
10. पूर्वोक्त - 62

निम्न मूल तत्व सामने रखे। [11]

1. समाज में सर्वोपरि कोई शक्ति नहीं होगी वहाँ केवल शुभ विचारों का अनुशासन होगा।
2. सभी सुविधायें समाज को समर्पित होगी जिसका उपयोग समाज प्रत्येक व्यक्ति के विकास और लाभ के लिये करेगा।
3. सभी व्यवसायों के आधारभूत नैतिक और आर्थिक मूल्यों का ईमानदारी व समान रूप से पालन किया जाना चाहिये।

साथ ही इसी सम्मेलन में 'सर्वोदय समाज' के प्रमुख उद्देश्य को भी इंगित किया गया कि

"समाज को सत्य और अहिंसा के आधार पर आगे बढ़ाना होगा। जहाँ पर किसी भी प्रकार की विषमता नहीं होगी। शोषण की गुजाइंश नहीं होगी। और सभी व्यक्ति और समुदायों को विकास के तमाम अवसर समान रूप से उपलब्ध होगें।" [12]

आचार्य विनोबा ने सर्वोदय समाज के लिये दो बाते निश्चित की। एक वर्णाश्रम धर्म पर आधारित श्रमप्रदान कृषि औद्योगिक समाज व्यवस्था। दूसरी, शरीर श्रम व बौद्धिक श्रम का साथ-साथ चलना। सर्वोदय समाज की सफल स्थापना के लिये समाज में ये दोनों चीजें होनी चाहिये। उन्होनें स्पष्ट रूप से कहा "अलग-अलग उद्योग तो रहेगे पर जातियां नहीं, प्रवृत्तियां रहेगी। हर कोई कहेगा कि मेरी वृत्ति बढ़ई बुनकर या चमार की है, लेकिन साथ ही हर कोई किसान भी होगा।" [13] "हर व्यक्ति कुछ घंटे खेती करेगा और हर एक को कला संस्कृति, धर्म की तालीम मिलेगी 2-3 घंटे खेती करने के बाद हर कोई अपना अपना उद्योग करेगा, जिसमें साधारणतयः बेटा बाप का ही धन्धा करेगा .... लेकिन अपवाद रूप में कोई दूसरा भी धन्धा कर सकता है।" [14] "कुछ तो मालिक प्रधान मजदूर रहेगें, जो हाथ का काम करते हुये भी दिमाग के काम को प्रधानता देगे और कुछ मजदूर प्रधान मालिक होगे जो दिमाग का काम करते हुये भी हाथ के कामको प्रधानता देगें। श्रम प्रधान बुद्धि का काम करने वाले और

---

11. तापस शंकर दत्त 'सर्वोदय मूवमेन्ट आफ्टर गांधी', गांधी ज्योति - (पत्रिका) 1988 पृष्ठ - 52
12. पूर्वोक्त 'सर्वोदय' (लेख) वेंकटराव पृष्ठ - 3
13. विनोबा : क्रान्ति की राह पर, पृष्ठ - 153
14. पूर्वोक्त

बुद्धि प्रधान शरीर श्रम करने वाले, ऐसी आस्था समाज में होनी चाहिये।" [15] ऐसा समझा गया कि विनोबा जी का यह विचार जातीय भेदभाव को समाप्त कर समाज में संतोषप्रद धंधे को विकसित करेगा व साथ ही शरीर श्रम में निष्ठा जागृत करेगा जो सर्वोदय का मूलाधार है।

आज का सामाजिक परिवेश जिन मूल्यों पर टिका है सर्वोदय उसे नकारता है। समाज को सर्वोदय की ओर मुड़ना होगा। यह तभी सम्भव है जब समाज में कौटुम्बिक भावना पायी जाये। इसका विकास तभी होगा जब परिवार में पाये जाने वाले स्नेह, त्याग एवं बलिदान का समाज में विस्तार किया जाये एवं इन्हें सामाजिक संगठन का आधार बनाया जायें। सर्वोदय के मूल आदर्शो से इसकी सिद्धि संभव है क्योंकि विनोबा जी ने कहा है कि "सर्वोदय में आस्था रखने वाला निजी जीवन में, व्यापार व्यवसाय में, सामाजिक जीवन में और प्रत्येक जगह असत्य का व्यवहार नही कर सकता है .... महान सत्यनिष्ठा ही सर्वोदय का आधार है।" [16] सत्य, अहिंसा, आर्थिक विकेन्द्रीकरण, अपरिग्रह एवं समता पर आधारित समाज ही सर्वोदय का लक्ष्य है, और यह समाज वर्गहीन जातिविहीन और शोषणमुक्त होगा। प्रसिद्ध सर्वोदयी विचारक शंकर देव के अनुसार "सर्वोदय समाज, अहिंसा और सत्य के आधार पर स्थापित वर्गविहीन और जातिविहीन होगा। इसमें कोई किसी को शोषण नहीं कर सकता और इसमें प्रत्येक व्यक्ति अथवा समूह को अपना सम्पूर्ण विकास करने के अवसर और साधन प्राप्त होगें। ऐसे समाज की स्थापना करना सर्वोदय का लक्ष्य है।" [17]

आर्थिक समानता सर्वोदयी समाज का प्रमुख लक्ष्य है। यदि समाज आर्थिक विषमता से ग्रस्त है एवं धनी निर्धनों का अपने लाभों के लिये शोषण कर रहे है तो यह आर्थिक असमानता समाज में अन्याय और अत्याचार को जन्म देती है। गाँधी जी के अनुसार "आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ है जनता के सब मनुष्यों के पास एक समान सम्पत्ति होनी चाहिये, यानि सबके पास इतनी सम्पत्ति होनी चाहिये कि वे अपनी कुदरती (बुनियादी) आवश्यकतायें पूरी कर सके।" [18]

यानि व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार साधनों की प्राप्ति हो। विनोबा जी के अनुसार

---

15. विनोबा 'मजदूरों से' पृष्ठ - 17
16. विनोबा - सर्वोदय, विचार और समाज शास्त्र, पृष्ठ - 52
17. शंकरदेव 'सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र' पृष्ठ - 9
18. गांधी जी हरिजन - 25-8-40

"आर्थिक समानता का अर्थ यह नहीं कि समाज की भौतिक सम्पत्ति का सब में समान रूप से वितरण हो बल्कि इसका अर्थ यह है कि एक व्यक्ति जो समाज के हित में अपनी सम्पूर्ण क्षमता से कार्यो को करता है वह अपनी आवश्यकतानुसार धन प्राप्त करें। सर्वोदयी विचारधारा समाज में प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार प्रदान किया जाये, का समर्थन करती है।" (19)

साथ ही सर्वोदयी समाज रचना में सर्वधर्म समन्वय को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। धर्म के नाम पर विभिन्न धर्मालम्बियों के मध्य वैमनस्य एवं कटुता अहिंसक समाज के निर्माण की दृष्टि से अहितकर है। अतः सर्वोदयी विचारको ने सर्वधर्म समन्वय का आदर्श रखा। विनोबा जी के अनुसार हमारी संस्कृति समन्वयात्मक रही है।

"हिन्दू धर्म का समन्वय इस्लाम, ईसाई आदि धर्मो से होना चाहिये तथा समन्वय केवल विचार के स्तर पर न रहकर जीवन में उतरना चाहिये।" (20)

उन्होनें इस बात से इन्कार किया कि भारतीय समाज धर्म के आधार पर बटाँ हुआ है। अतः विभिन्न धर्मो के आदर्शो को एकत्र करके नये मानवधर्म की स्थापना करनी होगी।
जैसे - ईसाई धर्म की सेवाभावना (21) इस्लाम का धर्म के सम्बन्ध में लोकतांत्रिक विचार, जैनों की तपस्या (22) उपनिषदों में निहित ईश्वर का सत्य स्वरूप (23) ये सभी आपस में समन्वय के विषय है। सर्वधर्म समन्वय से ही समाज में सर्वधर्म समभाव की निष्ठा उत्पन्न होगी और सत्य, प्रेम, करूणा और सेवा पर आधारित सच्चा मानव धर्म स्थापित हो सकेगा। गांधी जी भी विभिन्न धर्मो की अनेकता में एकता का अनुभव करते हुये दूसरे धर्मो के गुणों का अपने धर्म के साथ समन्वय करना चाहते है। उनके शब्दों में "जैसे हर वृक्ष का एक ही तना होते हुये भी बहुत सी डालियां और पत्तियां होती है, उसी प्रकार सच्चा और सम्पूर्ण धर्म एक ही है, परन्तु जब वह मानवीय माध्यम से गुजरता है तब उसके अनेक

---

19. विनोबा - स्वराज्य शास्त्र - पृष्ठ - 74 - 75
20. विनोबा चिंतन अंक - 10-11 पृष्ठ - 20
21. विनोबा चिंतन अंक - 16 पृष्ठ - 169
22. उपरिवत - पृष्ठ - 180
23. टी0 एन0 आत्रेय (संपा) धर्म समन्वय (गांधी पीस फाउन्डेंस) नई दिल्ली, 1974 - पृष्ठ - 37

रूप बन जाते है।" (24)

अतः परस्पर सहिष्णुता और आदर से विभिन्न धर्मो की आन्तरिक एकता को मजबूत कर धर्म का परिष्कार कर सकते है। धर्मान्धिता के हट्ते ही धर्म समन्वय का विचार बनता है। गाँधी जी मानते है कि धर्मो की आधारभूत एकता की अनुभूति ही मानवता के विकास की सही दिशा निर्धारित करेगी।

इस प्रकार सर्वोदय वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की असमानताओं को समाप्त करके एक सुन्दर स्वस्थ एवं आदर्श समाज के निर्माण के प्रति जागरूक है। इस समाज में सभी को रोजगार मिलेगा। अपनी प्रतिभाओं का विकास करने के अवसर मिलेगे। यहाँ मालिक मजदूर, श्रम-जीवी व बुद्धिजीवी का भेद नहीं रहेगा। न कोई भूखा रहेगा, न कोई विलासी जीवन में रह पावेगा। शोषण समाप्त होगा। गरीबी एवं बेकारी नहीं रहेगी। व्यवसायों के द्वार बिना भेदभाव के सभी के लिये समान रूप से खुले रहेगें। यह समाज व्यवस्था वर्गविहीन, शोषणमुक्त पक्षातीत तथा विकेन्द्रित होगी।

भारतन कुमारप्पा के शब्दों में – "सर्वोदय का अर्थ आदर्श समाज – व्यवस्था है इसका आधार सर्वव्यापी प्रेम है। इसलिये निरपवाद रूप से राजा-रंक, हिन्दु मुसलमान छूत-अछूत, काले-गोरे, सन्त-पापी, सभी के लिये स्थान है किसी भी व्यक्ति या समूह का दमन शोषण या विनाश नहीं किया जायेगा। इस व्यवस्था में सब बराबर के सदस्य होगे, सबको उनकी मेहनत पैदावार में हिस्सा मिलेगा बलवान दुर्बलों की रक्षा करेगें और उनके ट्रस्टी का काम करेगे तथा प्रत्येक सदस्य सबके कल्याण का ध्यान रखेगा।" (25)

सर्वोदय समाज व्यवस्था की आलोचना भी की जाती है प्रमुख आलोचना समाज में वर्ण व्यवस्था को मान्यता देने के कारण हुयी है। लेकिन वर्णधर्म इस व्यवस्था में रोजगार के आधार पर स्वीकार किया गया है। जैसे गांधी जी के अनुसार "यह उन नीति सम्मत आजीविकाओं का सूचक है जो कुटुम्ब विशेष में जन्म लेने के कारण कर्तव्य भावना से गृहण किया जाता है।" (26) दूसरे "इसमें सभी वर्णो के बीच आपस में ऊँच-नीच का भेद-भाव न पैदाकर समानता का भाव पैदा किया जाता है।"(27)

---

24. मंगल प्रभात 1945 पृष्ठ – 38 – 40
25. गांधी जी 'सर्वोदय' पृष्ठ – 3 से उधृत
26. किशोरीलाल, धनश्यामलाल मशरूवाला 'गांधी विचार दोहन' पृष्ठ – 36
27. पूर्वोक्त – 37

कुछ आलोचकों का कहना है कि सर्वोदय समाज व्यवस्था एक काल्पनिक व्यवस्था है। इसकी वास्तविक रूप से स्थापना नहीं हो सकती। "यह सत्य है कि यह एक काल्पनिक विचार है परन्तु यह कहना अनुचित है कि इस विचार के आधार पर समाज व्यवस्था का निर्माण नहीं हो सकता। शून्य का भी कोई आकार नहीं होता। वह भी एक विचार या कल्पना मात्र है परन्तु शून्य के आधार पर ही गणित व भौतिक शास्त्र के सभी सिद्धान्तों की रचना हुई है। जब काल्पनिक 'शून्य' गणित की रचना का आधार बन सकता है तो सर्वोदय समाज व्यवस्था का विचार वास्तविक सर्वोदय समाज की रचना का आधार क्यों नहीं बना सकता। सर्वोदयी विचारधारा जिस व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था मानती है उसकी स्थापना असम्भव नहीं है। कठिन अवश्य है। सर्वोदयी विचारकों द्वारा श्रमनिष्ठ जीवन, सर्वधर्म समन्वय, वर्गविहीन समाज एवं स्त्री पुरुष समानता के आधार पर सामाजिक जीवन की कल्पना की गयी है, उसकी प्रासंगिकता आज सामाजिक कटुता, आर्थिक विषमता एवं साम्प्रदायिकता आदि के वातावरण में निश्चित रूप से बनी हुयी है।

(ग) सर्वोदयी शासन व्यवस्था का स्वरूप

सर्वोदय का राजनीतिक आदर्श शासनमुक्त समाज है। सर्वोदय के अधिष्ठाता गांधी जी ने इस 'रामराज्य' के रूप में प्रस्तुत किया। इसको स्पष्ट करते हुये कहा। "इस रामराज्य का अनुवाद धार्मिक दृष्टि से पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य किया जा सकता है, राजनीतिक दृष्टि से इसका अनुवाद ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र है, जिसमें सम्पत्ति, रंग, जाति, धर्म या लिंग के आधार पर खड़ी असमानतायें लुप्त हो जाती है। इसमें जनता ही भूमि और राज्य की अधिकारिणी होती है। न्याय तुरन्त और शुद्ध मिलता है और पूजा, भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता होती है और यह सब इसलिये होता है क्योंकि इसमें नैतिक नियत्रण के स्वयंस्वीकृत कानून का शासन होता है। इस प्रकार का राज्य सत्य और अहिंसा पर आधारित होना चाहिये और वह समृद्धशाली सुखी और सेवाश्रयी ग्रामों तथा ग्राम समाजों का बना होना चाहिये।" (1)

गाँधी जी ने अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित स्वराज्य की कल्पना में राज्य का स्वरूप सत्य और अहिंसा से ओत प्रोत लोकतांत्रिक राज्य को माना है। इसलिये गांधी जी प्रचलित संसदीय

1. गाँधी 'दि हिन्दू' 22-6-1945

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के कटु आलोचक थे। उन्होनें कहा कि संसदीय प्रजातंत्र में "दलगत राजनीति कार्य करती है जिसमें जनता के प्रतिनिधि होते है, परन्तु वास्तव में कर्तव्यनिष्ठा या तो अपने परिवार या पार्टी तक ही सीमित रहती है। जनता के कल्याण के लिये वे कुछ भी नहीं कर पाते अतः उनकी स्थिति उस वैश्या और बंध्याकृत महिला की स्थिति है जो क्रमशः न तो किसी के प्रति वफादार होता है और न जिसमें सृजन की क्षमता ही होती है।" [2]

कल्याणकारी शासन के नाम पर वह शासन की बढ़ती हुई शक्तियों से चिन्तित थे। उन्होनें थोरों के इस ऐतिहासिक वक्तव्य का समर्थन किया कि वह सरकार सबसे अच्छी है जो कम से कम शासन करती है क्योकि वह मानते है "यह राज्य पूर्ण अहिंसात्मक है, जिसमें जनता पर कम से कम शासन किया जाता है ...." [3] अतः उन्होनें राज्य की सत्ता का विरोध करते हुये स्वशासन का समर्थन किया हैं। उनके शब्दों में "स्वशासन का अर्थ है, सरकारी नियत्रंण से स्वतंत्र होने का प्रयत्न फिर सरकार विदेशी हो या चाहे राष्ट्रीय, स्वराज्य सरकार की हास्यापद चीज बन जायेगी अगर जीवन की हर छोटी-छोटी बात के लिये उसके मुँह की तरफ देखने लगेगें।" [4] विनोबा जी के शब्दों में "स्वराज्य आ चुका है किन्तु क्या जनता को उसके कल्याणकारी प्रभाव की अनुभूति होती है? स्वराज्य में ही, स्वशासन मे ही विकेन्द्रीकरण का भाव निहित है, इसलिये इस सिद्धान्त को हर व्यवहारिक सीमा तक लागू करना है।" [5]

सर्वोदय विकेन्द्रीकरण और स्वशासन को व्यापक रूप से प्रतिष्ठित करना चाहता है। गाँधी जी के अनुसार "सच्चा लोकतंत्र केन्द्र में बैठे बीस आदमियों से नहीं चल सकता, उसे हर गाँव के लोगों को नीचे से चलाना होगा।" अर्थात "सारी सत्ता गाँव-गाँव में वितरित होनी चाहिये और गाँव के लोगों को अपना कारोबार खुद चलाना चाहिये।" [6]

सर्वोदयी शासन व्यवस्था का संगठन स्वावलम्बी, स्वशासित और सत्याग्रही गाँवों के आधार पर होगा। क्योंकि सर्वोदय में शक्ति का वितरण निम्नतम स्तर पर किया जाता है, ताकि प्रत्येक व्यक्ति

---

2. नारायन, श्रीमन 'दि सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा, खण्ड - 4, पृष्ठ - 113
3. गाँधी 'दि हिन्दू' 22-6-1945
4. गाँधी यंग इण्डिया - 6 अगस्त - 1925 - पृष्ठ - 276
5. विनोबा भावे - भूदान से ग्रामदान - पृष्ठ - 141
6. गाँधी जी 'हरिजनसेवक' 18-1-39

इसमें भाग ले सके। इसी को गांधी जी ने सच्चा लोकतंत्र या जनसाधारण का स्वराज्य कहा है।

सर्वोदय की शासन व्यवस्था अहिंसात्मक होगी। "इसमें पूर्वाग्रह अज्ञान और अंधविश्वास के लिये कोई स्थान नहीं है। यह पूर्णतः ज्ञान और अनुशासन पर आधारित है।"(7) इसके अर्न्तगत सबल और निर्बल सबको विकास का समान सुअवसर मिलता है।"(8) इसमें भौतिक आर्थिक, आध्यात्मिक विभिन्न प्रकार के साधनों का उपयोग सामान्य सुख के लिये होता है।"(9) धर्मनिरपेक्षता और सहिष्णुता इस शासन के आवश्यक गुण है। विनोबा जी ने इस जनपयोगी शासन के कुछ अनिवार्य तत्व बतलायें है - सत्ता का व्यापक आधार अल्पमत का संरक्षण, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निष्पक्ष व सरल न्याय प्रणाली, सार्वजनिक शिक्षा का प्रबन्ध व सुधारक दण्डनीति " (10)

सर्वोदयी शासन व्यवस्था में केवल बहुमत के निर्णय को ही पर्याप्त नही माना जायेगा वरन् अल्पमत को पूर्ण संरक्षण मिलेगा। क्योंकि "बहुमत के नियम का संकुचित उपयोग है, अर्थात तफसील की बातो में बहुमत को मानना चाहिये लेकिन बहुमत जो भी निर्णय कर दे उसे मानना दासता है। लोकतंत्र में ऐसी रचना नही है, जिसमें लोग भेड़ों की तरह आचरण करें।" (11) महत्वपूर्ण सार्वजनिक मामलों में अल्पमत के निर्णय को ठुकराया नही जा सकता क्योंकि "अन्तरात्मा से सम्बन्ध रखने वाली बातों में बहुमत के कानून का कोई स्थान नहीं है।" (12)

सर्वोदयी शासन व्यवस्था का आधार पुलिस या फौज का सहारा नहीं होगा। बल्कि पुलिस भी स्वयंसेवक की तरह इसमे काम करेगी। यह जनता की मालिक नहीं वरन् सेवक होगी। यद्यपि उनके पास अस्त्र होगें, परन्तु उन्हें कदाचित ही काम में लिया जायेगा। "अहिंसक राज्य में अपराध होगें, परन्तु अपराधियों को रोगी की तरह समझा जायेगा .... जेल ऐसे रोगी अपराधियों के लिये अरोग्य केन्द्र

7. प्यारेलाल - टूवर्डस न्यू होरीजन - पृष्ठ - 9 - 12
8. हरिजन 14-7-46 - पृष्ठ - 220
9. यंग इण्डिया - 29-9-1926 - पृष्ठ - 339
10. विनोबा भावे - लोकनीति - पृष्ठ - 19
11. यंग इण्डिया 2-3-1922
12. यंग इण्डिया 4-8-1920

होगा जहाँ उनका मानसिक उपचार होगा।" (13)

विनोबा जी ने भी कहा कि वर्तमान शासन-व्यवस्था का आधार सेना और पुलिस है। लेकिन ग्राम स्वराज्य की स्थापना होने पर गाँव की आन्तरिक सुरक्षा के लिये पुलिस के स्थान पर शान्ति होनी होगी। शान्ति-सेना शान्ति के समय ग्रामदान का कार्य करेगें और विशिष्ट मौकों पर सिर समर्पित करने को तैयार रहेगें।" (14) इस प्रकार उनके कार्यो में क्रान्ति और शान्ति का संगम है।

इस प्रकार सर्वोदय की आदर्श शासन व्यवस्था ग्राम्याधारित लोकतांत्रिक एवं पूर्ण अहिंसात्मक होगी। इस शासन व्यवस्था में वास्तविक सत्ता जनता के पास होगी। यहाँ व्यक्ति स्वयंशासित एवं स्व-नियत्रिंत होगा। नैतिक मूल्यों का सर्वोच्य स्थान होगा। इसमें सत्ता का व्यापक आधार होगा क्योंकि सर्वोदय के अनुसार "शासन के निम्नतम स्तर पर सत्ता में जनता की व्यापक जीवन्त और सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करके ही वास्तविक लोकतांत्रिक प्रणाली की सफलता की कल्पना की जा सकती हैं।" (15) इस प्रणाली में व्यक्ति बाहरी नियंत्रणों से मुक्त होगा। और इसी से पूर्ण आत्मनिर्भर एवं स्वायत्त मानव जीवन का आदर्श प्रस्थापित होगा। अतः सर्वोदय आत्मनियंत्रण और आत्मनुशासन को ही शासन का विकल्प बनाना चाहता है।

(घ) सर्वोदय की अर्थव्यवस्था

सर्वोदय विचारधारा पूंजीवादी व साम्यवादी अर्थव्यवस्था से भिन्न एक नयी अर्थव्यवस्था स्थापित करना चाहती है। पाश्चात्य आर्थिक चिन्तन में मनुष्य का धन कमाने का साधन माना जाता हैं "पूंजीवादी विचार उत्पादन के व्यक्तिगत स्वामित्व का सर्मथन करता है। जिसमें व्यक्ति को अपनी क्षमता भर उपार्जन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। ऐसी अर्थरचना का मुख्य आधार मांग और पूर्ति का नियम है। इस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था का आवश्यक परिणाम प्रतिस्पर्धा, उपनिवेशवाद, अमीर-गरीब के बीच विषमता, शोषण और स्वार्थपरता है। .... समाजवादी विचार पूंजीवादी

---

13. हरिजन 1-9-40, पृष्ठ - 265
14. विनोबा भावे 'शान्तिसेना', पृष्ठ - 17
15. डा० मधुकर श्याम चतुर्वेदी "प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक", पृष्ठ - 115

व्यवस्था का घोर विरोधी है। अतः उत्पादन एवं वितरण को राज्य के हाथों में सौपता है। ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति की उत्पादन की प्रेरणा समाप्त हो जाती है तथा वह सारी स्वतंत्रता खोकर यन्त्रवत् जीवन व्यतीत करता है .... ।"[1] इस तरह पाश्चात्य अर्थचिन्तन मनुष्य की स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व की बात करता है लेकिन वास्तविकता पूर्णतया भिन्न है। इस चिन्तन से प्रभावित क्षेत्र से मनुष्य अपने को एकान्तिक व खोया हुआ महसूस करता है। इस सभ्यता में 'हर सवाल के आर्थिक पहलु सोचे जाते है। हर कठिनाई का उपचार भी अर्थतंत्र के द्वारा किया जाता है .... जो कुछ भी सवाल उठता है अर्थशास्त्र की परिभाषा में ही उसकी चर्चा होती है। और सब इलाज अर्थ के द्वारा ही किये जाते है।"[2]

सर्वोदयी अर्थशास्त्र उस भारतीय धारणा से अनुप्राणित है जिसके अनुसार आर्थिक क्रियाकलापों का केन्द्र व्यक्ति होता है, न कि धन प्राचीन भारत में धन या रूपयें की उपयोगिता मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास तक ही मानी जाती थी। सर्वोदय अर्थचिन्तन राष्ट्रीय परम्पराओं पर आधारित है। सेवा की अर्थव्यवस्था, न्यूनतम आवश्यकताओं पर आधारित आर्थिक जीवन, ग्रमीण आत्मनिर्भरता, स्वदेशी, वर्णाश्रम धर्म के आधार वाला श्रम विभाजन एवं अहिसंक अर्थव्यवस्था आदि इस व्यवस्था के आधार है। सर्वोदय की अर्थव्यवस्था नैतिकता पर आधारित है। सर्वोदय अर्थचिन्तन में प्रत्येक क्रिया का औचित्य नैतिकता से मापा जाता है। गांधी जी के शब्दों में "मै अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र में किसी प्रकार का अन्तर नहीं मानता, पाश्चात्य अर्थशास्त्र जो व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण पर प्रहार करता है, अनैतिक है इसलिये पापमय है।"[3]

सर्वोदय की अर्थव्यवस्था सेवा की अर्थव्यवस्था है। एस0 एस0 गुप्ता का कहना है कि "गांधी जी की सेवा का अर्थव्यवस्था स्थापित करने का लक्ष्य था, जिसे उन्होने सर्वोदयी अर्थव्यवस्था कहा। उन्होनें अनुभव किया था कि केवल यही अर्थव्यवस्था सभी के लिये सुख ला सकती है। स्पष्टतः यह अर्थव्यवस्था उत्पादन कुशलता व प्रमुख सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता का सम्मिश्रण होगी।"[4] इसी सन्दर्भ में विनोबा जी ने कहा है संसार में तीन प्रकार के मनुष्य होते है -

---

1. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ - 428
2. काका कालेकर 'समन्वय संस्कृति की ओर' पृष्ठ - 22
3. गांधी 'सत्य के साथ प्रयोग (आत्मकथा) पृष्ठ - 220
4. एस0 एस0 गुप्ता 'दि एकानमिक फिलासफी आफ गांधी' पृष्ठ - 2

(1) काश्तकार (2) दूसरे धन्धे करने वाले (3) कुछ भी धन्धा न करने वाले जैसे बूढ़े, रोगी बच्चे बगैरह। सच्चे अर्थशास्त्र का नियम है कि इन तीन वर्णो में जो प्रामाणिक है इन सबको पेट भर अन्न, वस्त्र और छाया की आवश्यक सुविधायें प्रदान करें .... इसी का नाम राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, या सच्चा अर्थशास्त्र है।" [5]

सर्वोदयी अर्थरचना में औद्योगिक विकेन्द्रीकरण को महत्व दिया गया है। इसमें वृहत एवं अधिक औद्योगीकरण को रोका जायेगा तथा विकेन्द्रीकरण के लिये छोटी मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जायेगा ताकि क्षेत्रीय आत्मनिर्भरता की स्थिति प्राप्त की जा सके। गाँधी जी के अनुसार "बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण का अनिवार्य परिणाम यह होगा कि ज्यो-ज्यों प्रतिस्पर्द्धा और बाजार की समस्यायें खड़ी होगी, त्यों-त्यों गाँवों का प्रकट या अप्रकट शोषण होगा .... ।" [6]

अतः सर्वोदय के अर्थचिन्तन में राज्य की विभिन्न इकाइयों को विकेन्द्रित तथा स्वावलम्बी बनना एक मौलिक सिद्धान्त है इस सिद्धान्त के अनुसार "प्रत्येक ग्राम या इकाई को अपनी जरूरत के लिये पर्याप्त सामग्री पैदा करनी चाहिये। जो सामग्रियां छोटी इकाईयां पैदा न कर सके उन्हें अन्तरग्राम और अन्तर राज्य इकाई उद्योगों द्वारा पैदा करना चाहियें। अंतोगत्वा केन्द्र को उन्हीं को हाथों में लेना चाहिये जो विकेन्द्रीकृत आधार पर संगठित नहीं किये जा सके।" [7] इस व्यवस्था में तीन प्रकार के औद्योगिक क्षेत्र होगें। प्रथम, निजी क्षेत्र जहाँ उपयोगी मशीनों से छोटे व आत्मनिर्भर उत्पादक, उत्पादन का काम करेगें। द्वितीय ट्रस्टीशिप क्षेत्र जहाँ उपयोगी मशीनों से ट्रस्ट के नियंत्रण में उत्पादन किया जायेगा। तीसरा, सरकारी क्षेत्र जहाँ उत्पादन राजकीय नियंत्रण में होगा। इस क्षेत्र में सर्वाधिक जटिल मशीनों का प्रयोग किया जायेगा। इस प्रकार इस व्यवस्था में छोटी सम्पत्तियों का निजी स्वामित्व तथा बड़ी सम्पत्तियों की न्यासी प्रणाली होगी। सर्वोदय की यह अर्थव्यवस्था "व्यक्तिवाद, समाजवाद और आदर्शवाद का सुन्दर समिश्रण है .... ।" [8]

सर्वोदयी अर्थचिन्तन स्वावलम्बी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्थापित करना चाहता है। इसके

---

5. विनोबा साहित्य - खण्ड - 18 'साम्ययोगी समाज' पृष्ठ - 275
6. गांधी 'हरिजन' 29-8-1936
7. गोपीनाथ दीक्षित 'गांधी जी की चुनौती कम्युनिज्म को' पृष्ठ - 108
8. योजना 3-11-1968 पृष्ठ - 12

लिये ग्रामोद्योग को विकसित करना चाहता है। गाँधी जी के अनुसार "भारत का मोक्ष उसके ग्रामोद्योग में निहित है भारत जैसी अर्थव्यवस्था में जहाँ पूँजी का अभाव और बेरोजगारी की बहुलता है, वहाँ ग्रामोद्योग अर्थात् लघु एवं कुटीर उद्योग आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी पहलुओं के औद्योगिक विकास की आधारशिला है।" (9) ग्रामोद्योग के पीछे मूलभाव यही है कि ग्राम अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में आत्मनिर्भर हो क्योंकि गाँव के बहुमुखी विकास हेतु यह जरूरी है। विनोबा जी ने कहा कि "यदि गाँव की उन्नति करनी है तो गाँव में उद्योग बढ़ाने होगें।" (10)

सर्वोदय अर्थव्यवस्था विकेन्द्रित योजना नीति को मान्यता देती है। योजना बनाकर विकास कार्यक्रम चलाने वाले देशों में अधिकतर योजनाऐं केन्द्रीय सत्ता द्वारा बनायी व लागू की जाती है। परन्तु सर्वोदय अर्थचिन्तन में उन्हीं लोगों को योजना बनाने का अधिकार दिया जाता है, जिनके सम्बन्ध में ये बनती है। इस सन्दर्भ में विनोबा जी ने कहा कि "पाँच लाख गाँवों का आयोजन यदि चन्द हाथ में रहेगा तो यह अत्यन्त खतरनाक चीज है, अगर प्रत्येक गाँव अपना-अपना आयोजन करे, तो उसमें दोष भले ही रह जाये, पर उसकी हानि दूसरे गाँव को नहीं होगी और सबकी बुद्धि का विकास होगा ....दिल्ली की योजना देहात में नहीं चल सकती।" (11) इस प्रकार ग्रामीण या क्षेत्रीय भावना की पद्धति सर्वोदय को स्वीकार है। इस पद्धति से प्राथमिकताओं का निरूपण होता है।

सर्वोदय अर्थव्यवस्था में स्वामित्व का माध्यम मार्ग होता है। वह राजकीय स्वामित्व के लिये ट्रस्टीशिप व्यवस्था चाहता हैं। इसमें निजी व सरकारी दोनों ही स्वामित्वों के दोष दूर हो जायेगें। ट्रस्ट की सम्पत्ति की व्यवस्था न्यासी स्वामी की भांति करेगा लेकिन लाभ सामान्य जनता को प्राप्त होगा। क्योंकि "यहाँ व्यक्तिगत स्वामित्व समाज की पवित्र धरोहर के रूप में रहता है। अतः सामाजिक सम्पदा भोग के लिये नहीं, बल्कि जनकल्याण के लिये मानी जाती है .... यह अमीरों और गरीबों के बीच विषमता मिटाने का अहिंसक समाजवाद है।" (12) गाँधी जी का ट्रस्टीशिप धनी लोगों द्वारा सामान्य

---

9. पंतसुधा – 'भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ग्रामोद्योग गांधीवादी दृष्टिकोण' खादी ग्रामोद्योग वर्ष्ज्ञ – 28 अंक चतुर्थ जनवरी, पृष्ठ – 206
10. विनोबा साहित्य – खण्ड – 18 साम्ययोगी समाज पृष्ठ – 177
11. पूर्वोक्त – पृष्ठ – 244
12. गाँधी जी हरिजन, 25-5-1952

जनहित के लिये स्वयं की सम्पत्ति की व्यवस्था करने का सिद्धान्त है। इस प्रकार "ट्रस्टीशिप सिद्धान्त विशेष रूप से मिल्कियत और आर्थिक वितरण के प्रश्न पर नैतिक और अहिंसक समाधान का एक प्रयास है।" (13)

सर्वोदयी अर्थव्यवस्था अहिंसक अर्थव्यवस्था होगी। जहाँ न विषमता होगी और न किसी प्रकार का शोषण। सभी को उसके काम का उचित पुरस्कार मिलेगा। डा0 भारतन कुमार गुप्ता के शब्दों में इस व्यवस्था में "उत्पादन की आर्थिक पद्धति की अच्छाई बुराई की जाँच उस धन से नहीं की जायेगी जिसका वह उत्पादन करता है बल्कि इससे कि क्या सर्वाधिक मात्रा में अहिंसा को प्रोत्साहित करता है या दूसरे शब्दों में आत्मविश्वास, सहकारिता उपयोगिता तथा लोगों में भाई-चारे को बढ़ाता हैं।" (14) इस व्यवस्था में उद्योग अहिंसा के आधार पर चलेगें। गाँधी जी के अनुसार "अहिंसक धन्धा वह है जो बुनियादी तौर पर हिंसा से मुक्त हो और जिसमें दूसरों का शोषण या ईर्ष्या नहीं हो ....।" (15)

ऐसे उद्योगो में श्रमिक और मालिक सम्बन्ध भी अच्छे होगें। "अभिकर्ताओं व मिल श्रमिकों के मध्य के सम्बन्ध बच्चों व पिता या खून के रिश्ते वाले भाईयों की भाँति होने चाहियें।" (16)

अधिक सामान रखने वाला व्यक्ति हिंसक होता है इसलिये अहिंसक अर्थव्यवस्था में न्यूनतम आवश्यकताओं का आग्रह किया गया है इस अर्थव्यवस्था में वितरण योगदान के अनुसार नहीं होगा। योगदान क्षमताओंनुसार होता है तथा क्षमताओं में भिन्नता होती है। इस प्रकार ऐसे वितरण से विषमता बढ़ेगी जो हिंसा को जन्म देगी। इस व्यवस्था में योगदान भले ही चाहे योग्यतानुसार हो लेकिन वितरण आवश्यकतानुसार होगा। गाँधी जी भी चाहते थे कि "अर्थरचना ऐसी होनी चाहिये कि किसी को भी अन्न और वस्त्र की तंगी न सहनी पड़े।" (17)

यह अर्थव्यवस्था शरीर श्रम को प्रधानता देती है। यह भोजन के लिये शरीर श्रम करना

---

13. डा0 (मेजर) जनार्दन पाण्डेय 'सर्वोदय का राजनीतिक दर्शन' पृष्ठ - 180
14. भारतन कुमारप्पा 'कैपीटलिज्म् सोशलिज्म् विलेजिम्म् पृष्ठ - 109
15. गांधी 'मेरा समाजवाद' पृष्ठ - 39
16. गांधी 'यंग इण्डिया' 10-5-28
17. गांधी 'मेरा समाजवाद' पृष्ठ - 39

अनिवार्य घोषित करती है। चाहे डाक्टर, वकील या न्यायाधीश ही क्यों न हो शारीरिक श्रम सब को करना चाहिये। शरीर श्रम समाज में क्रियात्मकता को जागृत रखने तथा राष्ट्रीय सम्पत्ति की वृद्धि का महत्वपूर्ण उपाय है। गाँधी जी के शब्दों में "यदि सब अपने ही श्रम से रोटी खाये, तो सब के लिये पर्याप्त भोजन और पर्याप्त अवकाश उपलब्ध हो जायेगा। तब न तो अत्यधिक आबादी की चिल्लाहट मचेगी, न कोई रोग फैलेगा और न हम चारों और देखते है वैसे कोई विपत्ति सतावेगी।" (18)

विनोबा जी के शब्दों में "शरीर परिश्रम की निष्ठा, उत्पादक श्रम की प्रतिष्ठा निर्माण हुये बगैर न भूदान-यज्ञ सफल होगा न यहाँ के गरीबी का उत्थान होगा, न गरीब अमीर का भेद मिट सकेगा, न सर्वोदय समाज की स्थापना होगी।" (19) अतः उत्पादक श्रम को दबाब या बेकार के रूप में नहीं, वरन पूजा या यज्ञ के रूप में करना चाहियें।

सर्वोदय की अर्थव्यवस्था में विवेकपूर्ण आर्थिक समानता को महत्व दिया गया है एक व्यक्ति जो अपनी क्षमतानुसार समाजहित में अपने कार्यो को ईमानदारी पूर्ण करता है, उसे जीविकोपार्जन का समान अधिकार मिलना चाहिये। लेकिन इसका अर्थ यह नही कि प्रत्येक व्यक्ति को एक समान वेतन प्राप्त होगा। सभी को समान संरक्षण अवश्य प्राप्त होगा अर्थात प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार वेतन प्राप्त होगा जिसको गाँधी जी ने स्पष्ट किया है "मेरी कल्पना की आर्थिक समानता का अर्थ यह नही कि प्रत्येक को शब्दशः एक ही रकम मिले। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार मिलें" (20) इसी सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि एक अधिक क्षमतावान व्यक्ति जिसकी आवश्यकतायें कम है उसे कम वेतन प्राप्त होगा, और कम क्षमतावान व्यक्ति जिसकी आवश्यकतायें ज्यादा है, उसे ज्यादा प्राप्त होगा।

विनोबा जी ने भी औचित्यपूर्ण, आर्थिक, समानता का समर्थन किया है यदि यह भेदमूलक भी है तो भी उचित है जैसे "माता अपने बच्चों की वय पाचन शक्ति एवं आवश्यकतानुसार भोजन देती है। सबसे छोटे का थोड़ा सा दूध और रोटी, बड़े बच्चों को सिर्फ रोटी देती है।" (21)

यह समानता विभेदक होते भी आदर्श पूर्ण है। अतः सर्वोदय की अर्थव्यवस्था में औचित्यपूर्ण आर्थिक समानता का आग्रह है।

---

18. गांधी जी हरिजन 23-2-47

19. विनोबा साहित्य खंड - 18 'साम्ययोगी समाज' पृष्ठ - 67

20. गांधी, हरिजन सेवक 31-3-1946 पृष्ठ - 63

21. विनोबा - 'हरिजन' 20-12-1952

निष्कर्ष : इस प्रकार सर्वोदय के अर्थचिन्तन का सभी वर्गों के लिये महत्व है। उपभोक्ता, श्रमिक व व्यवस्थापक आदि सभी को इससे दिशा मिलती है। उपभोक्ता न्यूनतम आवश्यकतायें रखकर संयमी जीवन व्यतीत करे जिससे सभी को आवश्यक सुविधायें मिल सके अनावश्यक कीमत वृद्धि न हो तथा सम्पन्न व विपन्न के वर्गभेद में उग्रता न आवे। श्रमिक प्रतिष्ठान को अपना समझकर कार्य करें जिससे देश की आवश्कता बढ़े तथा देश आत्मनिर्भर और सम्पन्नता की ओर चलें। व्यवस्थापक या स्वामी वर्ग अपने को समाज का ट्रस्टी मानकर प्रतिष्ठनों का प्रबन्ध करें व धन का केन्द्रीकरण न होने दें।

इस प्रकार सर्वोदय अर्थचिन्तन सभी से अपने कर्तव्यों के पालन के लिये आग्रह करता है और जटिल परिस्थितियों में उनका दिशा निर्देशन करने के लिये नीतियां प्रदान करता है, जिससे सुन्दर समाज व्यवस्था का निर्माण हो सके।

सर्वोदय अर्थव्यवस्था में विकेन्द्रीकरण का विचार आदर्शोन्मुख है, जिसका आर्थिक मंतव्य पूँजी का विकेन्द्रीकरण और न्यासिता से स्पष्ट होता है वही औद्योगिक विकेन्द्रीकरण राज्य की विभिन्न इकाइयों को उत्पादन की दृष्टि से स्वावलम्बी एवं सम्पूर्ण बनाता है। सर्वोदयी अर्थचिन्तन औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण की होड़ से मानव समाज को बचाना चाहता है। इसलिये लघु एवं कुटीर उद्योगो की संरचना से विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की उपयोगिता को प्रतिपादित करता है।

सर्वोदयी अर्थव्यवस्था में नैतिकता और अर्थशास्त्र को पृथक नहीं किया गया है, जो पूरी तरह से भारतीय संस्कृति के अनुकूल है। यह आध्यात्मवादी एवं भौतिकवादी व्यवस्थाओं का समन्वयात्मक मार्ग है। शान्ति, प्रजातंत्र, स्वतंत्रता एवं समानता पर आधारित यह शोषण विहीन एवं अनूठी अहिसंक अर्थव्यवस्था है जो आर्थिक एकाधिकार, मशीनीकरण एवं पूँजीएकीकरण को अभिशाप मानती हैं। भौतिक सुखों की अभिवृद्धि करना न सर्वोदय का लक्ष्य है न आकांक्षा, वह तो जीवन सादगी का मंत्र देता है।

ग्राम स्वावलम्बन के आदर्श की पूर्ति के लिये इसमें ग्रामोद्योग को महत्व दिया गया है। उत्पादन की इस विकेन्द्रित अवस्था में स्वावलम्बन की भावना पूर्ण होती है। स्वामित्व विर्सजन के स्वरुप को प्राप्त करने के लिये सर्वोदय अर्थदर्शन गाँधी जी के संरक्षकता के सिद्धान्त को स्वीकार करता है। ट्रस्टीशिप निः सन्देह आर्थिक समानता को अहिंसक ढंग से लाने की पद्धति है।

अतः सर्वोदयी अर्थ चिन्तन पाश्चात्य भौतिकता प्रधान औद्योगिक पूँजीवादी व्यवस्था के समान्तर एक ऐसी व्यवस्था है, जो न्याय, समानता और मानवीय मूल्यों पर आधारित हैं। यह स्थापित भौतिक मूल्यों को नकारता है अपरिग्रह, संयम, त्याग, स्वामित्व विर्सजन को मानवता के कल्याण के लिये अपरिहार्य तत्व मानता है। क्योंकि इसका विश्वास है कि जब तक समाज में मानवतावादी मूल्यों की स्थापना नहीं होती तब तक भौतिकवादी संस्कृति के दुष्प्रभावों को समाप्त नहीं किया जा सकता।

(ड) विभिन्न वाद और सर्वोदय

(क) सर्वोदय एवं साम्यवाद

(ख) सर्वोदय एवं अराजकतावाद

(ग) सर्वोदय एवं उपयोगितावाद

(7) सर्वोदय और साम्यवाद

विनोबा जी ने 1951 में (किशोरी लाल मशरूवाला की गाँधी और मार्क्स की प्रस्तावना) में लिखा था "महात्मा गाँधी और मार्क्स महामुनि दोनों के विचारों की तुलना से अधिक आकर्षण विषय आज के जमाने में क्या हो सकता है .... गाँधी विचार ने भारत के स्वराज्य को संपादन का श्रेय प्राप्तकर अपनी अव्यवहार्यता के आपेक्ष से छुटकारा पा लिया है। साम्यवाद ने चीन के पुराणपुरुष को तारुण्य प्रदान कर अपनी तात्कालिक शक्ति दिखा दी है। इसलिये संभव हो तो दोनों विचारों का समन्वय किया जाये ऐसी लालसा कुछ प्रचारकों के मन में उठती है। फिर गाँधीवाद यानि हिंसा वर्जित साम्यवाद इस तरह के कुछ सूत्र बना लिये जाते है। वस्तुतः इन दो विचारों का मेल नहीं हो सकता है इनका विरोध मूलगामी है।" (1)

विनोबा जी के अनुसार गाँधीवाद व साम्यवाद के मध्य केवल साधनों का भेद नहीं है। बल्कि दोनों के मध्य बुनियादी भिन्नताएं है। केवल अहिंसा के आधार पर दोनों में भेद समझने के बारे में विनोबा जी का मत है "दो आदमी नाक, कान आँख की दृष्टि से बिल्कुल एक थे। इतने मिलते जुलते थे कि राजनैतिक हल के लिये एक की जगह दूसरे को बैठाया जा सकता था। फर्क इतना ही था कि एक की नाक से साँस चल रही थी दूसरे की साँस बन्द हो गयी थी। परिणाम हुआ, एक के लिये भोजन की तैयारी हो रही थी, जबकि दूसरे के लिये शवयात्रा की।" (2)

उनके अनुसार "अहिंसा का होना या न होना यह छोटा सा फर्क छोड़ देने पर बची हुयी समानता इसी तरह की। परन्तु यहाँ तो नाक, कान, आँख, में फर्क है जिसकी साँस चल रही थी और जिसकी नही चलती है ऐसे दो व्यक्तियों के नाक, कान, आँख में भी फर्क हुये बिना कैसे रहेगा भले ही ऊपर से वे कितने ही समान क्यों न दिखाई देते हो।" (3)

यद्यपि "सर्वोदय और साम्यवाद की राजनीतिक और आर्थिक संकल्पनाए सतही तौर पर एक ही दिखलायी पड़ती है, दोनों की विचारधाराएं दमनकारी शक्ति के रूप में राज्य को समाप्त करना चाहती

---

1. विनोबा साहित्य खंड – 18 साम्ययोगी समाज, पृष्ठ – 39
2. विनोबा 'सर्वोदय और साम्यवाद' पृष्ठ – 15
3. पूर्वोक्त

है, और ऐसे राज्य की स्थापना करना चाहती है जिसमें आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा को एक साथ सुनिश्चित किया जा सके परन्तु दोनों में मौलिक भिन्नताएं है।" (4)

सर्वोदय एक सम्पूर्ण विचार है और यह सम्पूर्ण जीवन को अंगीकृत करता है। इसका जन्म मार्क्सवाद की तरह किसी विशेष वाद से संघर्ष करने के लिये नहीं हुआ है। विनोबा जी के शब्दों में "साम्यवाद एक प्रतिक्रिया रूप विचार है। कम्यूनिज्म यूरोप की परिस्थिति में पैदा हुआ था। यूरोप में पूँजीवाद का जोर था, वहाँ बड़े-बड़े कारखाने, शहर बनाये गये। दुनिया भर की सम्पत्ति एकत्र होती थी मालिक, मजदूर में झगड़ा हुआ। मालिक मजदूर को ऊपर नहीं उठने देते थे। इसी के प्रतिक्रिया स्वरूप कम्यूनिज्म पैदा हुआ। यह स्वयंपूर्ण विचार नहीं है जो प्रतिक्रिया रूप होता है, वह भी बदलता रहता है।"(5)

मार्क्सवादी का सिद्धान्त मनुष्य को पूर्णतः भौतिकवादी प्राणी मानकर चलता है तथा समस्त आत्मिक व आध्यात्मिक मूल्यों का अस्वीकार करता है, किन्तु सर्वोदयी विचार के पीछे आध्यात्मिक तेजपुंज है, यह मानता है कि यदि मनुष्य प्रेम, दया, सहानुभूति, और कर्मो में सर्वथा रहित होकर पूर्णतया स्वार्थी झगड़ालू और ईर्ष्यालू होता तो आज के समाज में दिखाई देने वाले पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठन पूर्णतया असम्भव होते है।

साम्यवादी वर्ग संघर्ष की धारणा में निहित है कि सामाजिक व्यवस्था के अन्दर भिन्न ही नहीं बल्कि परस्पर विरोधी हित हुआ करते हैं। जबकि सर्वोदय के अनुसार समाज का प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग एक ही समाज में भिन्न-भिन्न अंग हैं। जिस प्रकार शरीर और उसके अवयवों में परस्पर विरोध नहीं होता उसी प्रकार समाज और उसके विभिन्न वर्गो में हित विरोध नहीं होता।

"इसमें इस बात को अस्वीकार किया जाता है कि मानव का परस्पर विरोध या एक का हित दूसरे के हित के विरूद्ध हो। लड़कों में विचार-भेद हो सकता है लेकिन हित विरोध नहीं।" (6) सर्वोदय समाज में सबका हित एक साथ पूर्ण हो सकता है बशर्ते "हर एक व्यक्ति दूसरों की फिक्र रखे और अपनी फिक्र भी ऐसी न रखे जिससे दूसरों को तकलीफ हो। यही परिवार का न्याय है, जिसे समाज पर लागू

---

4. राकेशनाथ झा 'गांधीय चिंतन में सर्वोदय' 136
5. विनोबा साहित्य, खंड - 15 आरोहण - पृष्ठ - 467
6. विनोबा 'सर्वोदय विचार और स्वराज्यशास्त्र' पृष्ठ - 48

करना कठिन नहीं होना चाहिये बल्कि आसान होना चाहिये, इसी को सर्वोदय कहते है।" [७]

साम्यवाद के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में सर्वोदय को अविश्वास है। विनोबा जी ने इसे वैतार्किक वस्तुवाद का नाम दिया हैं। उनके शब्दों में "भौतिकवाद नाम योग्य नहीं है। भौतिकवादी वे होते है, जिनका जीवन खाना पीना और मौज करना, ही होता है। वितर्कवाद (डाइलेक्टिट) तो एक केवल विचार की पद्धति है। उसमें क्रान्ति भी हो सकती है और उपक्रान्ति भी हो सकती है। खट्टे नीबू के वृक्ष पर मीठे वृक्ष की कलम लगाए तो खट्टे मीठे फल पैदा होते है। थीसिस, एण्टीथीसिस और सिन्थेसिस यह ऐसी ही प्रक्रिया है। इस थियरी से क्रान्ति को क्या उत्साह मिलता है और श्रीमानों को खत्म करना चाहिये।" [८]

मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या की है "इतिहास के किसी भी युग के आर्थिक सम्बन्ध समाज की प्रगति का रास्ता तैयार करने तथा राजनीति के कानूनी, सामाजिक, बौद्धिक, और नैतिक सम्बन्धों का स्वरूप निर्धारित करने में सबसे बढ़कर प्रभाव डालता है।" [९]

यानि इस के चैतन्य पर जड़ की प्रधानता को स्वीकार किया गया है। सर्वोदय "तत्व" को प्रधानता देता है। विनोबा जी के शब्दों में "जहाँ तत्वज्ञान मजबूत होता है वहाँ समाजशास्त्र, राजनीति, अर्थनीति आदि सारी योजनायें तदनुकूल बन जाती है।" [१०] साथ ही उन्होंने कहा कि "सद्‌गुणों की उचित वृद्धि होने पर ही समाज रचना अच्छी होती है .... सद्‌गुण बुनियाद है, और समाज रचना इमारत है।" [११] साम्यवाद में पूँजी और श्रम को विपरीत तत्वों के रूप में स्वीकार किया है, जबकि सर्वोदय इन दोनों के मध्य सामंजस्य एवं सहयोगपूर्ण सम्बन्ध को अनिवार्य मानता है। श्रम और पूँजी के मध्य अनिवार्य समन्वय और पूँजी के घातक प्रभाव से मुक्ति के लिये गाँधी जी ने न्यासिता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। जहाँ मार्क्स ने पूँजी के दुष्परिणामों से अर्थ व्यवस्था को मुक्त करने के लिये सर्वधारा की तानाशाही की स्थिति में राज्य के दमनकारी शक्ति के माध्यम से पूँजीपति वर्ग का उन्मूलन

---

7. विनोबा साहित्य – खंड – 16 तीसरी शक्ति – पृष्ठ – 78
8. विनोबा साहित्य खंड – 18 साम्ययोग – पृष्ठ – 11
9. ओ0 पी0 गाबा – राजनीति शास्त्र की रूपरेखा – पृष्ठ – 313
10. विनोबा साहित्य – खंड – 18 पृष्ठ – 26
11. पूर्वोक्त

की कल्पना करता है, वहीं गाँधी इस प्रयोजन के लिये हृदय परिवर्तन व अहिंसा की प्रभावशीलता के प्रति आश्वस्त हैं। विनोबा जी द्वारा संचालित, भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान हृदय परिवर्तन के सफल प्रयोग है।

साम्यवाद धर्म और नैतिकता को महत्व नहीं देता। मार्क्स के मत में "धर्म जनता की अफीम है।" साम्यवादी जहाँ धर्म को गौण व अनावश्यक मानकर मानव विकास में बाधक मानते है। वहीं सर्वोदय में धर्म अनुप्राणित समाज का आग्रह है। धर्म की संकीर्ण व्यवस्थाओं को अस्वीकार करते यह समाज में विभिन्न धर्मों के उदात्ततत्वों की एकता को स्थापित कर मानव समाज की समृद्धि एवं विकास का सम्यक मार्ग वर्ग प्रशस्त करता है। धर्म अनुप्राणित सत्य अहिंसा त्याग, करुणा, क्षमा एवं सहयोग जैसे नैतिक मूल्यों आध्यात्मिक समाज का निर्माण करना चाहता है।

सर्वोदय एवं साम्यवाद के राज्य सम्बन्धी दृष्टिकोण से समानता परिलक्षित होती है। दोनों ही राज्यविहीन समाज की कल्पना करते हैं, परन्तु राज्य के विलीनीकरण के सन्दर्भ में दोनों में तात्विक अन्तर है। गाँधी एवं विनोबाजी राज्य को संगठित हिंसा का प्रतीक मानते हुये एक ऐसे आदर्श स्थिति की स्थापना करना चाहते हैं जबकि एक बाध्यकारी शक्ति के रूप में शक्ति का व्यवहार करने वाली संस्था के रूप में राज्य विलीन हो जायें। साथ ही यह लोग यह भी स्वीकार करते हैं कि जीवन में आदर्श पूर्णतः चरितार्थ नहीं होता । इसलिए राज्य का पूर्ण विलीनीकरण असम्भव है । इसलिए गाँधी जी ने अहिंसा एवं विकेन्द्रित सत्ता पर आधारित रामराज्य एवं विनोबा जी ने स्वराज्य का विचार दिया ।

साम्यवाद यह आशा दिलाता है कि आदर्श वर्गविहीन, राज्यविहीन समाज व्यवस्था तभी स्थापित की जा सकती है जब शोषण को हिंसात्मक क्रान्ति (पशुबल) द्वारा समाप्त किया जाये। पर सर्वोदय का आधार आध्यात्मिक होने के कारण इस की सिद्धि के साधन भी नैतिक है। सर्वोदय पवित्र लक्ष्य के लिये साधनों की पवित्रता पर भी जोर देता है। यह हिंसात्मक क्रान्ति के विचार को भ्रान्तिपूर्ण मानता है, क्योंकि भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में हिंसा का कोई स्थान नहीं है अहिंसा परमोधर्म यहाँ की मूलसंस्कृति है।

विनोबा के शब्दों में – "कम्यूनिस्टों ने क्रान्ति को एक शस्त्र बनाया है। वे कार्लमार्क्स के वाक्य को ही वेदवाक्य के समान मानते है, लेकिन मेरा मानना है कि कम्यूनिस्ट लोग जानते ही नहीं कि क्रान्ति किस चिड़िया का नाम है, क्रान्ति हर एक देश में एक ही ढंग से नहीं होती, क्रान्ति तो देश काल की परिस्थिति पर निर्भर करती है। हर देश का अपना ढंग है, अपना मिशन है, अपना धर्म है।

जैसे कुलधर्म होता है, एक–एक में एक–एक गुण का विकास होता है .... जब सारी दुनिया सोयी हुयी थी, तब यहाँ आत्मज्ञान का स्वच्छ प्रकाश फैला हुआ था। वेदांत समझे–बिना कोई क्रान्ति नहीं हो सकती है, यदि आप आत्मा के टुकड़े करके वर्ग बनायेगें, तो कटुता और द्वेष फैलेगा .... इसलिये यहाँ जो क्रान्ति होगी वह त्याग की पृष्ठभूमि में त्याग से ही होगी। [12]

यद्यपि साम्यवाद और सर्वोदय दोनों ही वर्गविहीन एवं राज्यविहीन समाज के उदय की आशा करते हैं पर उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों में बुनियादी असमनातायें है। मार्क्सवाद जहाँ सामाजिक परिर्वतन के लिये हिंसात्मक क्रान्ति का सर्मथन करता है तो गाँधीवादी सर्वोदय विचार सामाजिक परिवर्तन हेतु अहिंसा और सत्याग्रह में विश्वास व्यक्त करता है। सर्वोदय जहाँ श्रम की गरिमा के द्वारा वर्गविहीन समाज की स्थापना करना चाहता है, वहीं साम्यवाद निजी सम्पत्ति को समाप्तकर वर्गहीन समाज को स्थापित करना चाहता है। सामाजिक आदर्श के रूप में सर्वोदय तथा साम्यवाद दोनों ही सामजिक समानता और स्वतंत्रता को स्वीकार करते हैं पर दोनों में तात्विक अन्तर है क्योंकि सर्वोदय को अहिंसा और उसकी कार्यविधि में गहरी श्रद्धा है।

(२) सर्वोदय एवं अराजकतावाद

अराजकतावाद का शाब्दिक अर्थ है .... राज्य विहीनता अथवा शासन विहीनता/अराजकतावादी राज्य को मानवीय स्वतंत्रता में बाधक तथा प्रगति के लिये हानिकारक मानते है। वह राज्य को पूँजिपतियों का पोषक तथा गरीबों के शोषण करने का साधन मानते है। प्रसिद्ध अराजकतावादी विचारक प्रोंधो के अनुसार "राज्य और पूँजीवादी समाज धनिकों का गरीबों का षड़यन्त्र है। [1] उनके अनुसार राज्य न्याय, विवेक और ज्ञान के स्थान पर मनोवेगों का आधिपत्य स्थापित करता है [2] उनके अनुसार राज्य के पूर्ण विनाश के बाद व्यक्ति की आत्मोन्नति के मार्ग में कोई बाधा नहीं

12. विनोबा साहित्य – खंड– 15 – आरोहण, पृष्ठ – 468

1. Bhattacharjee, N.C. "Is non violent state possible?" Gandhian concept of state (ed) dr. B. B. Majumdar culcutta M.c. sarkar & and some ltd. 1957 P - 32

रहेगी एवं मनुष्य अपने स्वाभाविक गुणों द्वारा अपना विकास कर सकेगा।

सर्वोदय का भी आदर्श राज्यविहीन समरस समाज है। सर्वोदयी विचारकों ने राज्य की कई कारणों से आलोचना की हैं गाँधी जी के अनुसार "राज्य केन्द्रित और संगठित रूप में हिंसा का प्रतीक है। व्यक्ति की आत्मा होती है परन्तु चूंकि राज्य की आत्मा एक जड़ मशीन होती है इसलिये इससे हिंसा कभी नहीं छुड़वायी जा सकती उसका अस्तित्व ही हिंसा पर निर्भर है।" (3) दादा धर्माधिकारी के शब्दों में –

" It demands loyalty to it self in preference to loyalty towards concience and humanity" (4)

इस विषय में धीरेन्द्र मजुमदार का कहना है –

" Its maintance a big administrative appartment. and army at the expense of the tailors and producers and thus serve an agency for the exploitation of the people." (5)

इसी प्रकार विनोबा जी न भी राज्य की जगह स्वराज्य का विचार दिया। क्योंकि यह राज्य को हिंसा एवं शोषण का प्रतीक मानते है –

" Rajya or government is one thing Swarajaya or self government is another. Government can be had throught violence. Self government is impossible with out non-violence. So the thought ful do not desire government. They urge people to strive for self government. The following two lines from Sanskrit namely न त्वहं कामये राज्यम् [I do not desire to govern and] यतमेहि स्वराज्ये [let us strive for self government] become their negative and positive political slogans. (6)

परन्तु सर्वोदय को पूर्ण अराजकतावादी दर्शन नहीं कहा जा सकता बल्कि इसे "नम्र अराजकता" (7) एवं आध्यात्मिक अराजकतावाद की संज्ञा दी गयी है। सर्वोदय विचारधारा एक दबाव मुक्त सामाजिक व्यवस्था

---

2. कोकर, फ्रांसिस "आधुनिक राजनीतिक चिंतन अनुवाद नारायण यादवेन्दु पृष्ठ – 205
3. गांधीः "दि मार्डन रिव्यु" 1935 पृष्ठ –412
4. डा0 विश्वनाथ टंडन – "सर्वोदय आफ्टर गांधी में दादा धर्माधिकारी का कथन – पृष्ठ – 124
5. धीरेन्द्र मजूमदार "शासन मुक्त समाज की ओर" पृष्ठ – 11 – 12
6. Basant Nargolakar "The creed of saint Vinoba" P - 162

का निर्माण करना चाहती है। जहाँ लोग अपने विकास का स्वैच्छिक मार्ग प्राप्त करे सके। "इस व्यवस्था में सरकार का पूर्ण अभाव नहीं होगा, बल्कि इसका प्रयोग रेल के डिब्बे में लगी खतरे की चैन की तरह संकटपूर्ण समय में होगा।" (8) हाँ इस रूप में सर्वोदय विचारधारा थोरो के इस ऐतिहासिक वक्तव्य से अवश्य सहमत है "कि वह सरकार सबसे अच्छी है। जो कम से कम शासन करें।"

सर्वोदय विचारधारा मानती है "एक पूर्ण राज्यविहीन समाज का निर्माण मनुष्य की पहुँच से बाहर है। मनुष्य का यही प्रयास होना चाहिये वह राज्य की शक्ति और प्रभाव को कम करने की कोशिश करें।" (9) राज्य को खत्म करने का प्रश्न ही नहीं उठता धीरे-धीरे उनकी शक्ति तभी सूक्ष्म होगी जब इन समुदाय का पूर्ण नैतिक विकास हो जायेगा।" (10)

गाँधी जी के अनुसार "आदर्श या अहिंसक समाज जिसे राज्यमुक्त समाज कह सकते है प्राप्त करना सभ्यता, संस्कृति का आदर्श है। .... परन्तु जीवन में आदर्श की पूरी सिद्धि कभी नहीं होती।" (11) उन्होंने इस आदर्श के प्रतिभाव के रूप में "रामराज्य" अर्थात आदर्श समाज की अहिंसक रूपरेखा प्रस्तुत की जिसमें शुद्ध नैतिकता के आधार पर आम जनता की सत्ता सर्वोपरि होगी।" (12) "इस अहिंसक राज्य में व्यक्ति की नैतिक विकास के लिये अधिक सुअवसर मिलता है नैतिकता के विकास के साथ-साथ राज्य अपना कार्य कम करते जाते है। इसके कार्य धीरे-2 स्वाधीन संस्थाओं के द्वारा होने लगते है। राज्य की शक्ति विकेन्द्रित हो जाती है अतः में अराजकतावाद की स्थिति आ जाती है।" (13) इसी सन्दर्भ में विनोबा जी ने राज्य की जगह स्वराज्य का विचार दिया। उनके शब्दों में - "स्वशासन, स्वराज्य अर्थात हर एक का अपना राज्य यानि हर एक को ऐसा लगे कि यह मेरा राज्य यही है सबका राज्य .... स्वराज्य का अर्थ है आत्मशासन।" (14)

---

7. डा० विश्वनाथ टंडन "सर्वोदय आफटर गांधी" पृष्ठ - 123
8. धीरेन्द्र मजूमदार - "दण्ड निरपेक्ष समाज रचना" पृष्ठ - 20 - 21
9. विनोबा - भूदान से ग्रामदान पृष्ठ - 44
10. विनोबा - भूदान से ग्रामदान अध्याय - 5
11. यंग इण्डिया 2-7-1931 पृष्ठ - 162
12. गांधी - हरिजन 2-1-37
13. गोपी नाथ धवन - पोलिटीकल, फिलासफी ऑफ महात्मा गांधी - पेज - 302

सर्वोदयी और पश्चिमी अराजकतावाद दोनों ही राज्यविहीन समाज व्यवस्था की समर्थक है परन्तु सर्वोदय में अराजकतावाद का पूर्ण तादात्म्य असंभव है। दोनों विचारधाराओं में बुनियादी भिन्नितायें है।

1. अराजकतावादी हिंसा के माध्यम से (इसमें क्रोपाटकिन व बाकुनिन प्रमुख है) राज्य को समाप्त करना चाहते है जबकि सर्वोदय विचारधारा "साध्य एवं साधन दोनों की पवित्रता का आग्रह करती है। क्योंकि इसका विश्वास है कि "अशुद्ध साधन का परिणाम अशुद्ध होता है" असत्य के आधार पर कोई सत्य तक नहीं पहुँच सकता सत्य आचरण के आधार पर ही सत्य तक पहुँचा जा सकता है।। (15)

   सर्वोदय विचारधारा क्रमिक शान्तिपूर्ण एवं अहिंसात्मक तरीके से राजनीतिक संस्थाओं को सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तित करना चाहती है।।

2. अराजकतावादियों ने राज्य की समाप्ति के बाद किसी अन्य राजनीतिक संस्था का विचार नहीं दिया जबकि सर्वोदय दर्शन में राज्य के सम्पूर्ण ढाँचे को परिवर्तित कर नवीन अहिंसात्मक राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण है जिसे गाँधी जी ने "रामराज्य" और विनोबा जी ने "ग्राम स्वराज्य" के रूप में प्रस्तुत किया है अतः इस सन्दर्भ में अराजकतावाद एक अपरिपक्व दर्शन है।।

3. बाकुनिन और क्रोपाटकिन आदि क्रान्तिकारी अराजकतावादी "राज्य सम्पत्ति, संगठित धर्म को मनुष्य में भौतिकता और नैतिक दुर्गुणों के विकास का कारण मानते है।।" (16)

   जबकि सर्वोदय विचारधारा धर्म को नैतिक उत्थान के लिये आवश्यक मानती है इसमें धर्म की "निरपेक्ष और शाश्वत नैतिकता के रूप में व्याख्या की गयी है" (17)

   इसलिये "सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अकाम, अक्रोध, अलोभ और सर्वभूतिहितेरताः को धर्म माना गया है।।" (18)

4. "अराजकतावाद राज्य अथवा सरकार के किसी भी रूप में अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता तथा

---

14. विनोबा – लोकनीति – 36

15. हरिजन 3-7-47 पृष्ठ – 232

16. कोकर, फ्रांसिस डब्लयू: आधुनिक रा० चिंतन पेज – 215 और 222

17. विनोबा चिंतन – अंक 55, 1970 पृष्ठ – 253

18. विनोबा चिंतन – अंक 40 – 41, 1969 पृष्ठ – 151

व्यक्ति को पूर्ण रूप से बन्धन मुक्त रखने के पक्ष में है जबकि सर्वोदय का आदर्श व्यक्ति को समाज के प्रति अपने कर्तव्य के प्रति सचेत करते हुये निष्ठापूर्ण निर्वाह के लिये प्रेरित करता है।" [19]

5. सर्वोदय की कुछ आस्थायें शान्तिवादी अराजकतावाद से मिलती है टालस्टाय ने "राज्य तथा सम्पत्ति का नैतिक आधार पर विरोध किया था कि वह उन्हें ईसामसीह की शिक्षाओं के विरुद्ध समझता था। [20] ईसा का संदेश था कि बुराई का प्रतिरोध शक्ति से मत करो [21] राज्यशक्ति पर आधारित हैं और अपनी इच्छा का पालन पुलिस तथा सेना की शक्ति द्वारा करता हैं [22] पर टालस्टाय ने भावी समाज का कोई विवरण नहीं दिया परन्तु सर्वोदयी विचारक "गाँधी" ने अहिंसक राज्य और विनोबा जी ने सर्वोदयी समाज का चित्र खीचा था और राज्य की शक्ति को कम करने के लिये सत्याग्रह जैसा शस्त्र विकसित किया था क्योंकि उन्होनें स्वीकार किया था कि पूर्ण राज्य विहीन समाज का आदर्श संभव नहीं है।

यद्यपि सर्वोदय दर्शन में सभी अराजकतावादी विचारकों के कुछ शुभ अंश आ जाते है परन्तु दोनों विचारधाराओं में पूर्ण तादात्म्य असंभव है। सर्वोदय अराजकतावाद की तरह कोरा सिद्धान्त आदर्श या दर्शनमात्र नहीं है। [23] यह सर्वकल्याणकारी उदान्तभावना से अभिप्रेरित अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा एक ऐसी समाज व्यवस्था की प्रस्थापना का आग्रह करता है जिसकी नींव प्रत्येक प्रकार के शोषण से मुक्त और समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व पर रखी गयी है।" [24]

---

19. जे0 पी0 सूद - "आधुनिक राजनीतिक विचार" पृष्ठ - 228
20. फ्रांसिस कोकर - आधुनिक राजनीतिक चिंतन पृष्ठ - 236
21. जे0 पी0 सूद - आधुनिक विचार पृष्ठ - 150
22. दशरथ सिंह - गांधीवाद को विनोबा की देन' पेज - 427
23. नागेश्वर प्रसाद शुक्ल - सर्वोदय विचार और सिद्धान्त - पृष्ठ - 7
24. पूर्वोक्त

(३) सर्वोदय और उपयोगितावाद

उपयोगिता सुखवाद पर आधारित नैतिक एवं राजनीतिक दर्शन है। उपयोगितावादी सिद्धान्त सभी कार्यों का आधार सुख एवं प्रसन्नता को ही मानता है। इसके अर्न्तगत किसी कार्य या स्थिति की सुख सर्जनात्मक क्षमता ही उसके नैतिक या अनैतिक होने का आधार है।" (1)

उपयोगितावादी विचारक के बेन्थम के अनुसार– जीवन का एक मात्रध्येय सुख की प्राप्ति तथा दुख का निवारण है। उनके शब्दों में "प्रकृति से ही मनुष्य, सुख और दुःख इन दो संप्रभु स्वामियों के अधीन है इन्हीं दोनों का यह कार्य है कि यह बतलायें कि हमें क्या करना चाहिये ओर क्या नहीं" (2)

उपयोगितावाद को एक भौतिक दर्शन माना गया है यह मनुष्य की नैतिक व अध्यात्मिक प्रेरणाओं की उपेक्षा करता है।" (3)

सर्वोदय की धारणा में जिस "उत्थान" का संकेत है वह वस्तुतः केवल भौतिक सुख की प्रत्यानुभूति नहीं करता वरन् आध्यात्मिक उत्थान को भी सुनिश्चित करता है क्योंकि "सर्वोदय का सामान्य एवं शाश्वत रूप निर्विवाद रूप से अद्वैत एवं आध्यात्मवाद को स्वीकार करता है। सृष्टि के अन्दर शाश्वत नैतिक व्यवस्था में सर्वोदय का अखण्ड विश्वास है।" (4) सार्थक एवं स्वयंपूर्ण समाज की रचना हेतु सर्वोदय "सत्य, अहिंसा, ब्रहमचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अभय, अस्पृश्यता निवारण, सर्वधर्मसमभाव, स्वदेशी," आदि नैतिक मूल्यों का आधार बनाता हैं। सर्वोदय यह मानता है कि "भौतिकवादी सुखवाद से साधुता को प्रेरणा नहीं मिलती। उपयोगितावादी दृष्टिकोण उपयोगिता का होता है, सर्वोदय की दृष्टि त्याग और बलिदान की है। उपयोगितावादी दृष्टि से हम युद्ध और हत्या को नैतिक मान ले, पर सर्वोदय विचार में इसे कभी समर्थन नहीं मिल सकता।" (6) उपयोगितावाद का केन्द्रीय सिद्धान्त है 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित'। "इसी आधार पर उसने व्यक्तियों, राज्य और उनके कार्य, नियमों एवं विधियों के

---

1. राकेश कुमार झा 'गांधी चिंतन में सर्वोदय' पृष्ठ – 38
2. बेन्थम प्रिन्सिपल एण्ड लेजिस्लेशन, पृष्ठ – 1
3. पन्त, गुप्ता, जैन – 'राजनीतिशास्त्र के आधार' पृष्ठ – 558
4. डा0 राम जी सिंह 'गांधी दर्शन मीमांसा' पृष्ठ – 36
5. गांधी 'सर्वोदय' पृष्ठ – 3 से 31
6. गांधी – हिन्दुधर्म – पृष्ठ – 209

आचार ही कसौटी, निर्धारित की है।" [7] सर्वोदय सर्वभूत हिताय के आदर्श को अंगीकृत करता है अर्थात 'सबका भला हो सबका उदय हो यही भावना है। गांधी जी के शब्दों में "अहिंसा का उपासक उपयोगितावाद का फार्मूला स्वीकार नहीं कर सकता, वह सभी के लिये अधिकतम अच्छाई का प्रयत्न करेगा और इसी धारणा की सिद्धि हेतु मर जायेगा।" [8]

विनोबा जी के शब्दों में –

"यूरोप में एक नीतिशास्त्र विकसित हुआ है। जिसमें कहा जाता है कि हमें अधिक से अधिक लोगों का भला करना है। अंग्रेजी में उसे 'Greatest good of greatest number' भी कहते है। सर्वोदय इस विचार को नहीं मानता है वह तो सब लोगों पर ध्यान देना चाहता है ज्यादा से ज्यादा लोगों का नहीं। और इसीलिये सर्वोदय हजारों वर्षो से चली आयी यहाँ की सभ्यता के अनुकूल है। हमारी संस्कृति में कहा है कि हमें सर्वभूतिहितेरतः यानि सर्वजीवी के हित में रत रहना चाहिये। सर्वोदय में भी यही विचार है कि किसी मुनष्य का हित दूसरे किसी मनुष्य के हित के विरुद्ध नहीं हो सकता। सबका हित एक दूसरे के अनुकूल ही हो सकता है।" [9]

अतएव उपरोक्त आधारों पर सर्वोदय और उपयोगितावाद में अन्तर स्पष्ट होता है। हाँ उपयोगितावादी विचारक जेम्स मिल द्वारा की गयी उपयोगितवाद की व्याख्या में अन्तर्विहित नैतिक आग्रह सर्वोदय की आस्था से अवश्य मेल खाती है।

"मिल ने बेंथम के सिद्धान्त में उच्छेदक परिर्वतन कर दिया जहाँ सुख के भावात्मक मापदण्ड को अस्वीकार कर गुणात्मक मापदण्ड को स्वीकार किया। साथ-साथ 'स्व' का भी विस्तार कर दिया ।"[10] क्योंकि "मिल ने मानव की प्रकृति एवं चरित्र को स्वार्थ एवं व्यक्तिगत हित से संचालित नहीं माना न यह माना कि व्यक्ति केवल सुखवृद्धि एवं दुख निवारण को निर्णायक भूमिका प्रदान कर जीवन यापन करता है।"[11]

---

7. नागेश्वर प्रसाद शुक्ल (लेख) 'सर्वोदय विचार और सिद्धान्त' गांधी ज्योति पत्रिका पृष्ठ – 4, 1988
8. गांधी 'सेलेक्टेड वर्क्स' वाल्यूम 6, पृष्ठ – 230
9. विनोबा साहित्य – खण्ड – 15 आरोहण, पृष्ठ – 483
10. डा0 दशरथ सिंह 'गांधीवाद को विनोबा की देन' पृष्ठ – 280
11. डा0 द्वारिका प्रसाद माथुर और डा0 भगवती प्रसाद श्रीवास्तव 'प्रमुख राजनीतिक विचारक' पृष्ठ – 177

सर्वोदय का आधार आध्यात्मिक है। सर्वोदय के समग्रदर्शन में मानव की सद्प्रवृत्तियों का विकास सर्वोच्य लक्ष्य है। अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित का पश्चिमी विचार समाज में बहुमत और अल्पमत की समस्यायें उत्पन्न करता है। जबकि सर्वोदय गीता के 'सर्वभूतः हितेरता' की कामना से प्रेरित है। इस प्रकार सर्वोदय की उपयोगितावाद से भिन्न एक सम्पूर्ण दृष्टि है।

पंचम अध्याय

विनोबाजी के सर्वोदय आंदोलन के आधार

(क) भूदान
(ख) ग्रामदान
(ग) संपत्तिदान
(घ) श्रमदान
(ड) जीवनदान, बुद्धिदान

सर्वोदय आन्दोलन के आधार

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भौतिकवादी औद्योगिक संस्कृति चोटी पर पहुँच चुकी थी। आर्थिक प्रेरणा, अमर्यादित यन्त्रीकरण एवं स्पर्द्धा के दौर में प्राचुर्य एवं अतिसम्पन्नता को विकास का दर्जा दिया गया। भारतीय दर्शन परम्परा के अनुसार अतिसम्पन्नता अतिजड़ता की द्योतक है। इसमें लाभ कमाना ही प्रमुख लक्ष्य माना जाता है। व्यक्ति और उसकी आवश्यकताओं को गौण माना जाता है। अतः भौतिकता और मूल्यविहीन व्यवस्था में मानव के अर्ध्वमुखी होने की आशा करना व्यर्थ है। गांधी जी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में इस भोगवादी संस्कृति की कटु आलोचना की। आर्थिक एकाधिकार, मशीनीकरण, पूँजीएकत्रीकरण एवं शोषण को गांधी जी ने मानव समाज के लिये गम्भीर अभिशाप माना। इसी सन्दर्भ में उन्होनें मानव संस्कृति एवं समाज के नव निर्माण हेतु अपना सम्रग दर्शन प्रस्तुत किया। रस्किन की 'अन्टू दि लास्ट' पुस्तक का गुजराती अनुवाद 'सर्वोदय' नाम से किया। सर्वोदय अर्थात सर्वउदय की नयी दिशा दृष्टि दुनिया के समक्ष रखी। जिसका प्रधान उद्‌देश्य विज्ञान युग को भौतिकता के शिंकजे से छुड़वाना और एक नये मानव समाज का निर्माण करना है। सर्वोदय में केवल भौतिक सुख की प्रत्यानुभूति नहीं हैं बल्कि यह आध्यात्मिक उत्थान को भी सुनिश्चित करता है। क्योंकि "शारीरिक और आर्थिक लाभ की पश्चिम की एकांगी खोज को, जो नैतिकता का कुछ भी ख्याल किये बिना की जाती है, को वह ईश्वरीय कानून के विरुद्ध मानते थे"[1]

अहिंसक समाज रचना हेतु गांधी जी ने समाज के प्रचलित मूल्यों में आमूलाग्र परिर्वतन लाने पर जोर दिया। इसी सन्दर्भ में उन्होनें नयी तालीम, विकेन्द्रित व्यवस्था, सादगीपूर्ण नैतिक जीवन का आदर्श एवं श्रम की प्रतिष्ठा को स्थापित किया। भारत को स्वतंत्र कराने के बाद राष्ट्र का नवनिर्माण सर्वोदय के अनुसार करने का मौका गांधी जी को नहीं मिला। इतना श्रेयस्कर हुआ कि 1948 में गांधी जी की मृत्यु के समय तक समकालीन भौतिक विचारधारा के सामने सर्वोदय की नयी विचारधारा खड़ी हो गयी थी।

स्वतंत्र भारत में लोगो के समक्ष नयी जिम्मेदारियां एवं अवसर थें। ऐसे में गांधी जी के अनुयायियों के समक्ष यह दुविधा थी कि बदली हुई परिस्थितियां में अपनी भूमिका का निर्वाह किस प्रकार करे। डा0 विश्वनाथ टंडन के अनुसार उनके समक्ष दो प्रश्न थे - वे राजनीति में भाग ले या फिर

1. रस्किन कृत - 'अन्टू दिस लास्ट' के गांधी जी के अनुवाद की भूमिका से - 1951, पृ0:9-11

परिवर्तित परिस्थितियों में रचनात्मक कार्यो का स्वरूप निर्दिष्ट करें। प्रथम प्रश्न के उत्तर में गांधी जी ने नवम्बर 1947 में कहा था कि 'राजनीति से दूर रहो और अपने दिमाग से शक्ति के प्रयोग का विचार त्याग दो। उनकी स्वयं अन्तिम इच्छा कांग्रेस को लोकसेवक संघ के रूप में प्रस्थापित करने की थी। दूसरे प्रश्न के समाधान हेतु उन्होनें फरवरी 1948 में सेवाग्राम में एक सम्मेलन बुलाया। पर वहाँ प्रस्थान करने के एक दिन पूर्व वह गोलियो का निशाना बन गये" (2)

अतः गांधी जी के आदर्शो एवं विचारों को कार्य रूप में परिणत करने के लिये उनके शिष्यों एवं अनुयायी ने मार्च 1948 में सेवाग्राम में एकत्रित होकर सर्वोदय समाज की स्थापना की। जिसमे सर्वोदय समाज के प्रमुख उद्देश्य को भी इंगित किया गया –

"समाज को सत्य और अहिंसा के आधार पर आगे बढ़ाना होगा जहां पर किसी प्रकार की विषमता नहीं होगी। शोषण की कोई गुजाइंश नहीं होगी। और सभी व्यक्ति और समुदायों को विकास के तमाम अवसर समान रूप से उपलब्ध होगें"(3) सर्वोदय के इस मूल उद्देश्य की पूर्ति के लिये विनोबा जी ने गांधी जी की अहिंसात्मक सामाजिक परिर्वतन की प्रक्रिया को लोकजीवन में प्रतिष्ठित करने के लिये नैष्ठिक प्रयोग शुरू कियें ताकि गांधीदर्शन का समाज व्यापी प्रयोग हो सके।

विनोबा जी ने सर्वोदय समाज की स्थापना के लिये प्रेम, करूणा, सत्य एवं अहिंसा की बुनियाद पर आधारित भूदान, ग्रामदान आन्दोलनों से सहयोगात्मक क्रान्ति का सूत्रपात किया। और इसके माध्यम से गांधी जी से बीजरूप में प्राप्त सर्वोदय विचार के संवर्धन की समग्र प्रक्रिया को क्रियान्वित किया। गांधी जी ने सर्वोदय को एक दिशा सूचक के रूप में स्वीकार किया था (4) । वह उसे सुनिश्चित योजना नहीं दे पाये थें। विनोबा जी ने सुनिश्चित योजना बनाकर सर्वोदय का कार्य भूदान, ग्रामदान आदि आन्दोलनों के आधार पर शुरू किया(5)। संपत्तिदान, श्रमदान, जीवनदान एवं बुद्धिदान समय एवं परिस्थितियों के अुनसार इसके सहायक कार्यक्रमों के रूप में इससे सम्बद्ध होते गये विनोबा जी ने इस रचनात्मक कार्यो से अहिंसात्मक ढंग से सामाजिक एवं आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिर्वतन लाने के समग्र प्रयास किये।

---

2. डा. विश्वनाथ टण्डन 'भूदान-ग्रामदान मूवमेन्ट एक मूल्यांकन' पृ0-5859
3. वेंकटराव, 'सर्वोदय', गाँधी ज्योति पत्रिका, पृष्ठ - 22
4. सुगतदास गुप्ता 'गाँधियन कन्सट्रक्ट्स फार ए न्यू सोसायटी' गांधी मार्ग 1970 पृ-334
5. डा. दशरथ सिंह 'गाँधीवाद को विनोबा की देन। पृ0 - 450

(क) भूदान

भूदान सर्वोदय आन्दोलन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम हैं। भूदान यज्ञ के बीजतत्व गांधी जी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में है गांधी जी कहतें है। कि "सच्चा समाजवाद तो हमें अपने पूर्वजों से प्राप्त हुआ है जो हमें सिखा गये है कि सर्वेभूमि गोपाल की" इसमें कहीं मेरी और तेरी की सीमायें नहीं है। ये सीमायें तो आदमियों ने बनाई है और इसलिये वे इन्हें तोड़ भी सकते है। गोपाल अर्थात ईश्वर। आधुनिक भाषा में गोपाल अर्थात राज्य या जनता। आज जमीन जनता की नहीं है, दोष तो हमारा है जिन्होनें इस शिक्षा के अनुसार आचरण नहीं किया है मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि इस आदर्श की हद तक रूस या अन्य कोई देश पहुँच सकता हैं। उसी हद तक हम भी पहुँच सकते हैं और वह भी हिंसा का आशय लिये बिना" [1] विनोबा ने भूदान यज्ञ के द्वारा भूमि के समान वितरण की समस्या का अहिंसक समाधान ढूढ़ निकाला है। इसका प्रारम्भ आन्ध्र प्रदेश के तेलगानां क्षेत्र के नलगुडां जिले के पोचमपल्ली ग्राम में हुआ।

1951 में इस क्षेत्र में भूमि वितरण की समस्या को लेकर हिंसात्मक संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष को शान्त करने के लिये विनोबा जी ने इस क्षेत्र में पदयात्रा की। वे हरिजनों की बस्ती देखने गये। भूमिहीन हरिजनों ने विनोबा जी से गुजारे भर के लिये 80 एकड़ भूमि की मांग की। विनोबा जी ने लोगों से अपनी मांग का आवेदन पत्र देने को कहा। उन्होनें सोचा कि वह सरकार से भूमिहीन कृषकों को गुजारें भर के लिये जमीन दिलाने की चेष्टा करेगें पर उन्होनें लोगों से यह भी कहा कि "यदि सरकार से जमीन न मिले या मिलने में देर हो, तो क्या गांव के कोई सज्जनगरीबों के लिये कुछ जमीन देगे"[2] "ग्रामीणों में से एक भाई श्री रामचन्द्र रेड्डी ने कहा कि वह 100 एकड़ भूमि गरीब भाईयों के लिये देना चाहते है, [3] कम्यूनिस्टों के आतंकक्षेत्र तेलगाना के गाँव की इस अनोखी घटना को विनोबा जी ने ईश्वरीय संकेत माना। और इसे भूदान की संज्ञा दी। विनोबा जी ने दान शब्द में त्याग के महत्व

---

1. गाँधीजी हरिजन 25-8-40 उद्‌धृत राममूर्ति राज्यदान के बाद क्या ? ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य,(वाराणसी सर्वसेवा संघ प्रकाशन 1969, प्रथम संस्करण), पृष्ठ - 15
2. चारुचन्द्र भण्डारी - भूदान : क्या और क्यों ? पृष्ठ - 31
3. पूर्वोक्त

को स्वीकार किया इसलिये सम्यक विभाजन और समान वितरण के रूप में इसको प्रयुक्त किया।[4] विनोबा जी के अनुसार ईश्वर ने पृथ्वी, जल, तेजवायु, तथा आकाश जैसे पंचभूतों का निर्माण सभी प्राणियों के लिये किया। अतः पृथ्वी के उपभोग का अधिकार सभी प्राणियों को समान रूप से होना चाहिये। विनोबा जी ने कहा कि "सूर्य घर-घर जा पहुँचता है। जितनी रश्मि एक राजा पाता है, उतना ही महंतर भी भगवान कभी भी अपनी चीज का असमान रूप से वितरण नहीं करता। [5]

विनोबा जी पोचमपल्ली ग्राम की इस घटना के बारे में रात्रि भर विचार करते रहे कि "यह क्या हुआ जहां मनुष्य तीन कट्ठा जमीन के लिये लड़ाई झगड़ा करता है, वहाँ मांगने से ही 100 एकड़ जमीन कैसे मिल गयी"[6] निश्चित रूप से यह स्वेच्छा से ह्दय परिर्वतन से किया हुआ दान था। विनोबा जी का इससे विश्वास बना कि इससे भारत की भूमिहीनता की मूल समस्या का समाधान हो सकेगा। विनोबा जी ने विचार किया कि भारत के सभी भूमिहीनों के लिये कितनी जमीन आवश्यक होगी। आखिर इस नतीजे पर पहुँचे कि लगभग 5 करोड़ एकड़ भूमि अर्थात भारत की कुल कृषि योग्य भूमि के छटें हिस्से की जरूरत होगी। विनोबा जी को विश्वास नहीं हो रहा था कि लोग इतनी जमीन दान में दे देगें। "वे दुविधा में थे कि लेकिन उनके भीतर से आवाज उठने लगी उनके अन्तर्मन ने कहा कि अगर इससे डरेगा और शंका रखेगा तो अहिंसा का विश्वास उसको छोड़ना होगा और साम्यवादियों के हिंसक मार्ग पर चलना होगा। अब तू चुप नहीं बैठ सकता तुझे ये या वह चुनना ही होगा। जिस भगवान ने बच्चे के पेंट में भूख रखी उसके माता के स्तन में दूध भी रखा है। मै समझ गया कि विश्व शक्ति मुझसे एक नया काम करना चाहती है" [8]

विनोबा जी के पास केवल 100 एकड़ जमीन थी, मामला 5 करोड़ एकड़ जमीन प्रोत करने का था। उसके अनुसार अगर इस सन्दर्भ में किसी संस्था से सलाह ली होती तो उनका यही सुझाव होता कि कुछ हजार एकड़ जमीन भले ही मिल जाये पर करोड़ो एकड़ की आशा नहीं की जा सकती।

---

4. सुगतदास गुप्ता, 'ए ग्रेट सोसायटी आफ स्माल कम्यूनिटीज', पृष्ठ - 15
5. चारुचन्द्र भण्डारी, 'भूदान यज्ञ क्या और क्यों' पृष्ठ - 2-3
6. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 31
7. विनोबा साहित्य - खण्ड 15, आरोहण, पृष्ठ - 39
8. चारुचन्द्र भण्डारी, 'भूदान : क्यों और कब', पृष्ठ - 32

इसलिये विनोबा जी ने अकेले ही कोशिश करने का निश्चय किया। अगले दिन दूसरे गाँव में पहुँचे गाँव वालों ने जलपान का प्रबन्ध किया उन्होनें गाँव में कहा कि – यद्यपि आपके चार पुत्र है तो मे आपका पाँचवा पुत्र हूँ। मुझे पंचमांश दीजिये" ग्रामवासियों ने 25 एकड़ भूमि और दान में दी तेलिगाना में उन्होनें दो महीने में 12 हजार एकड़ जमीन दान में प्राप्त की। पर इसके साथ ही लोगों ने यह आशंका भी व्यक्त कि, तेलिगाना में जमीदारों और मालगुजारों ने इसलिये कुछ–कुछ जमीन दान में दी क्योंकि वह कम्यूनिस्टो के अत्याचारों से पीड़ित थे। साधारण अवस्था में इस प्रकार भूमि का मिलना सम्भव नहीं है।" (9)

अतः उन्होनें तेलिगाना से भिन्न स्थिति वाले क्षेत्रों में जहां किसी प्रकार के हिंसात्मक आन्दोलन नहीं चल रहे थे, वहाँ भूदान यज्ञ की परीक्षा करने का निश्चय किया। "शीघ्र ही उन्हें यह अवसर प्राप्त हुआ राष्ट्रीय योजना समिति के समय अपने विचार प्रस्तुत करने के लिये जवाहर लाल नेहरू के अनुरोध पर दिल्ली जाने का निश्चय किया। उन्होनें पैदल ही जाने का निश्चय किया ताकि भूमिहीनों के लिये भूमि माँग सके। वर्धा से 12 सितम्बर 1951 को प्रस्थान किया और सागर, झांसी आगरा होते हुये ठीक दो महीने बाद दिल्ली पहुचें। प्रतिदिन 300 एकड़ जमीन प्राप्त कीं। इससे यह बात सिद्ध हो गयी कि यह विचार इन क्षेत्रों में भी कारगर रहा" (10)

भूदान का संदेश फैलाते हुये विनोबा जी और उनके साथ कार्यकत्ताओं की पदयात्राओं ने देश में उत्साह व आशा का संचार कर दिया उनका संदेश यही था कि "भूदान यज्ञ अहिंसा का प्रयोग है जीवन परिर्वतन का प्रयोग है। मै तो निमित्त मात्र हूँ, आप भी निमित्त है परमेश्वर आप लोगों से और मुझसे काम कराना चाहता है। यह कालपुरूष परमेश्वर की प्रेरणा है इसीलिये में मांग रहा हूँ, अतः आप लोग दीजिये और दिल खोलकर दीजिये"। जमीन के वितरण की समस्या का समाधान हिंसा और कानून के द्वारा भी लोग सोचते है पर विनोबा जी के शब्दों में "कानून से जमीन का बंटबारा हो तो कुछ तो तरक्की होती है लेकिन अखलाक नहीं बढ़ता है भूदान में प्यार से जमीन दी जाती है और ली जाती है इसीलिये दोनों का दिलबासी बनता है दोनों में प्यार बढ़ता है और ताकत पैदा होती है" (11) भूमिदान गरीब

---

9. पूर्वोक्त
10. विश्वनाथ टंडन, आचार्य विनोबा भावे, पृष्ठ – 54
11. विनोबा मुहब्बत का पैगाम, पृष्ठ – 48

और धनी सभी में पाया गया।

विनोबा जी के भूदान कार्यक्रम की सभी ने प्रशंसा की है। भूदान भूमि वितरण का एक प्रभावशाली कदम हैं। यह लोगों पर प्रभाव डालता है कि वह समवितरण को मन से स्वीकार करें। जय प्रकाश नारायण के शब्दों में "सभी सम्पत्ति सामाजिक उत्पादन है, और बिना सामाजिक सहयोग के कोई कमाई सम्भव नहीं हैं। इसीलिये हमारे पास जो कुछ है वह समाज का हैं, जब भूदान हमारे 5 लाख गाँवों ने इस विचार के बीच बोयेगा और लाखों भूमिपतियों को इस विचार के अनुकूल व्यवहार करने के लिये भले ही आंशिक रूप से राजी कर लेगा तो मनोवैज्ञानिक वातावरण बन जायेगा, जिससे यह विचार अन्य क्षेत्रों में जड़ पकड़ लेगा और फलफूल सकेगा। " (12)

भूदान आन्दोलन समाज में मालिक और मजदूर के भेद समाप्त करने का प्रभावशाली कदम हैं इससे स्वामित्व की भावना भी समाप्त होगी तथा श्रमिकों व किसानों के पास उत्पादन के साधन भी पहुँचेगें दादा धर्माधिकारी के शब्दों में – "भूदान का मंजिलें मकसद यह था कि समाज में कोई मालिक न रहेगा। भूदान में दान की प्रक्रिया है। वह दरअसल नागरिकों में सार्वजनिक हित की प्रेरणा या नागरिक वृत्ति जागृत करने की प्रक्रिया है" (13) भूदान के पीछे यह भावना है कि "उत्पादन के साधन उत्पादक के साधकों के ही हो। ठीक उसी भांति जैसे कि रोटी बनाने के लिये चकला और बेलन औरत के पास होते है....... ठीक उसी तरह जो जमीन जोतना चाहता है उसके पास इसका स्वामित्व होना चाहिये ... . । (14)

विनोबा जी के भूदान कार्यक्रम को परिर्वतन कार्य माना गया है यह भूदान आन्दोलन केवल भूमि वितरण सामाजिक परिर्वतन का शक्तिशाली कदम होने के कारण भूदान आन्दोलन क्रान्ति की एक प्रक्रिया थीं। सभी सर्वोदय विचारको ने इसे क्रान्तिकारी कदम माना। जय प्रकाश नारायण के शब्दों में – "यह एक सर्वागीण सामाजिक व मानवीय क्रान्ति की शुरूआत है।" (15) उन्होनें आगे कहा "भूदान सम्पत्तिदान एवं ग्रामदान के रूप में विचारों में क्रान्ति और सामुदायिक स्वशासन के रूप में वाह्य संगठ्न में क्रान्ति इन

---

12. एलन एण्ड बेन्डी स्कार्फ : जयप्रकाश एक जीवनी, पृष्ठ – 241
13. दादा धर्माधिकारी : मानवीय क्रान्ति, पृष्ठ – 62
14. दादा धर्माधिकारी : क्रांति का अगला कदम, पृष्ठ – 15-16
15. एलन एण्ड बेन्डी बेन्डी स्कार्फ : जयप्रकाश एक जीवनी, पृष्ठ – 15 पर संदर्भ है

दोनो को मिलाकर एक पूर्ण क्रान्तिकारी कार्यक्रम बनता हैं।" [16] दादा धर्माधिकारी के अनुसार "भूदान यज्ञ आन्दोलन क्रान्ति की प्रक्रिया का उपक्रम है" [17] धीरेन्द्र मजुमदार के शब्दों में "विनोबा जी की यात्रा केवल करूणा मात्र नहीं है, बल्कि एक नयी क्रान्ति की शुरूआत है" [18] स्वयं विनोबा "भूदान यज्ञ को आप जमीनें दिलाने का काम न समझे यह एक अहिंसक क्रान्ति का काम है।"[19]

भूदान यज्ञ आन्दोलन केवल भूमि वितरण की ही समस्या का समाधान नहीं देता बल्कि देश की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता हैं। विनोबा जी का कहना था कि भूदान से हमारे हाथ एक ऐसी चाभी आयी है, जिससे सभी ताले खुल जायेगें .... जातिभेद, छुआंछूत, धर्मभेद, कर्मभेद आदि सबके ताले कुशलता से खोलने की चाभी भारतीयों के हाथों में आई है" [20] "भूदान आन्दोलन सामाजिक जीवन में प्रथम त्याग और फिर भोग" [21] की संस्कृति को स्थापित करता हूँ। विनोबा जी कहतें है "भूदान का उद्देश्य केवल भूमि को एकत्र नहीं करना वरन् हम नये मूल्य प्रस्थापित करना चाहते हैं, नये नैतिक मूल्यों को सामाजिक जीवन का आधार बनाना चाहते है" [22] विनोबा जी ने भूदान के माध्यम से इस देश की भूमिहीन जनता की आर्थिक समस्या का अंहिसात्मक समाधान प्रस्तुत किया आर्थिक समानता को स्वतंत्र भारत के लिये अपरिहार्य घोषित किया कि "If even in Independent India, people did not give to poor their due, Independence has no meaning" [23] विनोबा जी ने "पानी और वायु की तरह भूमि को व्यक्तिगत सम्पत्ति माना इसको सामूहिक घोषित करते हुये इसके समान वितरण पर जोर दिया" [24]

---

16. जयप्रकाश नारायण : समाज, सर्वोदय और लोकतन्त्र, पृष्ठ – 192
17. दादा धर्माधिकारी : मानवीय क्रांति, पृष्ठ : 44
18. धीरेन्द्र मजूमदार : लोकगंगा के तट से, पृष्ठ – 41
19. विनोबा – भूदान गंगा, पृष्ठ – 35
20. निर्मला देशपांडे द्वारा संपादित 'क्रांति की राह पर' में विनोबाजी का कथन, पृष्ठ – 83 पर
21. Dr. Ramjee Singh 'Acharaya Vinoba Bhave - Quest for non-violence' p-9
22. विनोबा भावे, दि हरिजन वीकली 12, पृष्ठ – 54
23. Suresh Ram, 'Selection from Vinoba' p - 63
24. पूर्वोक्त

विनोबा जी की भूदान आन्दोलन की आलोचना भी की गयीं है। सबसे पहले दान की आलोचना हुई है। दान से कृपा उपकार एवं दया की गन्ध आती है। दान लेने वाला कृतज्ञता से दब जाता और देने वाला अहम का शिकार हो जाता है। इसे लेने वालों के स्वाभिमान को चोट पहुंचती है। पर विनोबा जी भूदान को स्वामित्व विसर्जन का प्रयोग मानते हैं। उनके अनुसार 'हवा पानी के माफिक भूमि भी ईश्वर की देन है .... दानम् संविभागम अर्थात हमारे शास्त्रों में दान द्वारा समाज में समान विभाजन की बात है .... मैं दान नहीं गरीबों का हक मांगता हूँ।" (25)

दूसरी प्रमुख आलोचना गरीबों से भूमिदान मांगने की। गरीब लोगों के भूदान से समान वितरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा? दादा धर्माधिकारी ने इसका उत्तर देते हुये कहा कि "गरीबों का दान स्वामित्व के विर्सजन की प्रक्रिया का प्रारम्भ है .... अमीरों के दान से स्वामित्व का बंटवारा होगा। धन और धरती का स्वामित्व बंट जायेगा लेकिन स्वामित्व के विर्सजन की क्रान्ति गरीबों के दान से ही होगी।" (26)

विनोबा जी के शब्दों में "मै गरीबों से भी भूमि ले रहा हूँ। एक एकड़ वाले से भी गुंठा ले रहा हूँ। एक एकड़ वाले में भी देने की वृत्ति होना, इसे मै विचार क्रान्ति कहता हूँ। जहाँ विचार क्रान्ति होती है, वही जीवन प्रगति की और बढ़ता है" (27) गरीब के दान से नैतिक बल उत्पन्न होता है गरीब एवं दबे कुचले भी समाज व राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल होते है।

---

25. विनोबा साहित्य, खण्ड - 15, आरोहण, पृष्ठ - 44

26. दादा धर्माधिकारी : मानवीय क्रांति, पृष्ठ - 30-31

27. विनोबा साहित्य, खण्ड - 15, आरोहण, पृष्ठ - 44

भूदान आन्दोलन को 21 मार्च 1973 तक मिली सफलता का विवरण [28]

प्रदेश	प्राप्त भूदान (एकड़ में)	दाताओं की संख्या	भूमि वितरण एकड़ में	प्राप्तकर्ता
बिहार	2117466	297215	427665	259521
महाराष्ट्र	107756	19283	80216	15455
मध्य प्रदेश	409966	58878	197870	56845
उत्तर प्रदेश	436009	38297	223195	77143
आन्ध्र प्रदेश	251952	9079	44390	9943
उड़ीसा	198279	83374	140817	69947
राजस्थान	426428	–	84781	–
गुजरात	103282	–	50924	–
केरल	26293	–	5774	–
तमिलनाडू	47470	9793	20409	12900
मैसूर	17286	5340	1198	602
पं. बंगाल	5696	6006	30	45
पंजाब	6339	–	1099	–
हरियाणा	8400	1782	1502	507
हिमांचल	5240	–	2531	–
दिल्ली	200	–	180	–
जे0 के0	211	–	5	–
योग	4080263	532129	1282649	502992

28. नरेन्द्र दुबे, ट्रस्टीशिप सिद्धान्त और व्यवहार, पृष्ठ 100 पर संदर्भ है

उपलब्धियां एवं विफलतायें

इतनी भारी सफलता मिलने के बाद भी भूदान आन्दोलन निर्जीव हो गया। लेकिन इस आन्दोलन की परिलब्धियों एवं असफलताओं के विश्लेषण से पूर्व हमें उन बुनियादी तथ्यों पर भी ध्यानकेन्द्रित करना होगा जिन के बीच यह आन्दोलन सक्रिय रहा। डा0 विश्वनाथ टंडन के अनुसार -

" India is a big Country and its terms of human power the few thousand workers available to the movement were too few in number to prove effective. The leaders were aware of this weakness and vinoba repeatedly told the workers that they were to act is a catalyst force in society. But such a role required exemplary qualities which these workers did not have in ample measures, primarily because of the adverse social climate prevailing in the country after indipendence. Secondly, the task of Societal change and reconstruction was for more difficult than that of achieving independence.

Lastly, the work involved Botn material and attitudinal changes and in this task the movement had to struggle against the increasing trends towards capitalistic and narrow Individualistic values in society." (29)

इसी के साथ कुछ अन्य समस्यायें भी थी -

1. जमीन के बंटवारे में दानदाता का सहयोग नहीं लिया गया। फलस्वरूप भूदान करने वालों ने विशेष रूचि नहीं दिखलायी। भूदान कार्यकर्ता भी अच्छें बुरें दोनो प्रकार के लोग थे। अतः कुछ भूमि भूमिहीनों को मिली तो कुछ हड़प ली गयी। स्वयं विनोबा जी ने स्वीकार किया "यदि उस समय यह निश्चय किया गया होता कि दाता खुद ही जमीन बांट दे, तो बहुत सी जमीन झटपट बंट जाती और दाता-आदाता दोनों के बीच प्रेम का नाता भी बनता है"। (30)

2. इस आन्दोलन के कार्यकत्ताओं ने भूदान या भूमि वितरण के पश्चात पीछें मुड़कर नहीं देखा कि क्रान्ति सचमुच जीवित है या मर गयी। (31)

इन परिस्थितियों में भूदान आन्दोलन की उपलब्धियाँ निः सन्देह महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है। डा0 विश्वनाथ टंडन के अनुसार -

" Its Material achieve ment true, It failed to attain the target of 50 million acres of land it had

---

29. Dr. Vishwanath Tandon 'The Bhoodan - Gramdan (1951-74) A Review . Gandhi Marg, Nov.-Dec., 1983, p - 496
30. कांतिशाह 'विनोबा : जीवन एवं कार्य, पृष्ठ - 95
31. दिनमान - 14-20 अगस्त, 1977, पृष्ठ - 21

resolved to collect by 1957 all it could obtain was 41,94, 270 acres while the actually distributed according ot 1975 Statistics was 12,85,38 acres 1857398 were found unfit for distirbution. [32]

" The actual achivement came only to about 3 percent of the target and the movement, therefore must be pronounced as a failure. But it is also taken in to account that it was all a result of voluntary efforts and that some inportant political leaders who should have cooperated donounced it and that the governments sympathy was more verbal than real even this success acquires significance " [33]

इसी सन्दर्भ में विनोबा जी ने 1961 में कहा था कि "हमारी सीमित सफलता उपेक्षा करने योग्य नहीं है, वरन् उत्साहवर्धक है। आज तक कोई भी राजनीतिक दल और संगठन इस देश में एक लाख था इससें आधी भूमि को गरीबों में बांटने में सफल नहीं हुआ है।" [34]

लेकिन भूदान आन्दोलन के महत्व को केवल आर्थिक उपलब्धियों के आधार पर ही नहीं आंका जा सकता है। भूदान नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक क्रान्ति की ओर पहला कदम है। आर0 पी0 मसानी के अनुसार "..................Bhoodan is undubtly playing a large role in breaking down the age-old fedal mentality. In some cases it must also be bringing forth a moral regeneration, a genuine conversion, a real starting of sentiments of pity and generosity as also a rousing of the sence of duty on the part of the "haves" towards their have-not brethren" [35]

इस प्रकार भूदान ने समाज में प्रेम, सहयोग, संवेदना, एवं मातृत्व को जगाया है। इस वातावरण के कारण देश में भूमि सुधार सम्बन्धी कानून बनाने का काम आसान हो गया। इस आन्दोलन ने समाज का आध्यात्मीकरण करने एवं देशवासियों के जीवन को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सुरेश राम भाई के अनुसार "इस आन्दोलन ने जनमत का ऐसा वातावरण तैयार कर दिया कि इससे लोगों को अपनी समस्याओं का साहस एवं दूरदर्शिता के साथ सामना करने की योग्यता आ गयी थी" [36] इस प्रकार इस आन्दोलन के प्रभाव तो अच्छे रहे पर आन्तरिक कमजोरियों एवं परिणामों में स्थायित्व के अभाव के कारण यह आन्दोलन बाद में शिथिल होकर प्राणहीन बन गया।

---

32. Dr. Vishwanath Tandon 'The Bhoodan - Gramdan (1951-74) A Review . Gandhi Marg, Nov.-Dec., 1983, p - 496
33. पूर्वोक्त
34. भूदान, 15 मई 1961
35. आर0 पी0 मसानी 'द फाइव गिफ्ट', पृ0 - 175, 180-182
36. सुरेश राम भाई 'विनोबा एण्ड हिज मिशन', पृ0 - 284

(ख) ग्रामदान

ग्रामदान विचार भी आचार्य विनोबाभावे की देन है। ग्रामदान के माध्यम से विनोबा जी ने सामूहिक जीवन और सम्मिलित ग्रामीण परिवार का आधार प्रस्तुत किया। भूदान की श्रेणी में ग्रामदान का प्रत्यय है। जिसमें केवल भूमिहीनों के लिये भूमिदान की ही कल्पना नहीं है, बल्कि इसमें जमीन के सम्पूर्ण मालकियत को समाज या गाँव पर सौंप कर सेवावृत्ति अपनाने का विचार है।" [1] "भूदान में वस्तुतः भूमिहीनों की समस्या के समाधान का विचार है। परन्तु ग्रामदान एक पूर्ण विचार है और गांधी जी के रामराज्य अथवा ग्राम स्वराज्य की कल्पना का आधार स्तम्भ है।"[2] विनोबा जी के इस रचनात्मक विचार में कई बुनियादी तत्वों का एक साथ संगठन हुआ है। विनोबा जी के शब्दों में यह अत्यन्त शास्त्रीय धार्मिक, सामाजिक और अद्यतन आर्थिक प्रमेय है"[3] धर्म की दृष्टि से करूणा और सेवा का,[4] विज्ञान की दृष्टि से सहयोग का,[5] समाज की दृष्टि से टूटे हुये हृदय को जोड़ने का,[6] आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी ग्रामीण कुटीर उद्योग तथा खादी का,[7] राजनैतिक दृष्टि से शासन मुक्त समाज एवं वास्तविक लोकशक्ति और लोकनीति का, प्रतिरक्षा की दृष्टि से शांति सेना का प्रतीक है।[8]

विनोबा जी ने ग्रामदान के द्वारा व्यक्तिगत स्वामित्व की जमीन और सम्पत्ति का सामूहिक स्वामित्व स्थापित करने का संकल्प रखा । ग्रामदान के अर्न्तगत यह व्यवस्था थी कि गांव के सभी लोग अपनी भूमि दान कर देगे। सम्पूर्ण भूमि जोड़कर एक खाते में कर ली जायेगी। प्रत्येक गाँव के लिये एक ग्रामसभा होगी जो दान में प्रांत सम्पूर्ण भूमि का प्रबन्ध करेगी। गाँव के प्रत्येक परिवार को उसी ग्राम

---

1. विनोबा : सुलभग्रामदान, पृष्ठ - 15
2. डा0 दशरथसिंह 'गाँधीवाद को विनोबा की देन', पृष्ठ - 545
3. विनोबा साहित्य, खण्ड - 18, साम्ययोगी समाज, पृष्ठ - 144
4. श्री विनोबा - ग्रामदान, पृष्ठ - 1
5. चारुचन्द्र भण्डारी 'ग्रामदान क्यों - 32
6. उपरिवत्, पृष्ठ - 26
7. श्रीमननरायन - 'विनोबा : हिज लाइफ एण्ड वर्क, पृष्ठ -254
8. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 254

खाते में से कृषि के लिये भूमि दी जायेगी। परिवार व्यक्तिगत आधार पर भी खेती कर सकेगें तथा सहकारी आधार पर पर भी खेती करेगें। परिवारों को भूमि देने के पश्चात कुछ भूमि ग्राम सभा के पास सामूहिक भूमि भी रह जायेगें। जिस पर सहकारी खेती की जायेगी परिवार को मिलने वाली भूमि उत्तराधिकार के द्वारा वंशजों को मिलेगी। कोई भी परिवार विशेष परिस्थितियों को छोड़कर भूमि नहीं बेच सकेगा। यदि बेचेगा भी तों गाँव के किसी परिवार को। विनोबा जी ने भूमिदान एवं ग्रामदान की भूमिव्यावस्था के लिये समय-समय पर महत्वपूर्ण निर्देशक विचार दिये है। उन्होने कहा कि "ग्रामदान के मानी है कि कोई अपनी जमीन न बेच सकेगा और न रहन रख सकेगा .... हर 10-20 साल बाद ग्रामदानी गाँव की जमीन का फिर से बंट्वारा होगा। ग्रामदानी गाँव की जमीन गाँव की रहेगी स्टेट की नहीं .... हर परिवार को काश्त करने के लिये गाँव सभा की ओर से जमीन मिलेगी" (9) इसका तात्पर्य यह है कि एक बार वितरण करने के बाद फिर वितरण किया जायेगा। यदि किसी परिवार का दायित्व बढ़ जाता है। तो उसे अधिक भूमि मिल सकेगी। तथा दायित्व कम होने पर कम हो जायेगी।

आचार्य विनोबा ने ग्रामदान को ग्रामों के लिये बहुत लाभदायक माना "इससे गाँव की जमीन न बढ़ेगी ? अच्छा उत्पादन होगा, भूमि सुधार कार्यक्रम लागू किया जा सकेगा। ग्रामोद्योग की प्रगति के लियें विचार किया जायेगा। गाँवों में प्रेम बढ़ेगा, ग्रामीणों के जीवन में नैतिक स्तर में विकास होगा गाँव की भूमि सम्पूर्ण गाँव की बना देने से गाँव के झगड़े और संघर्ष समाप्त हो जायेगें।"(10)

विनोबा जी ने ग्रामदान के कुछ महत्वपूर्ण लाभ बतलाये -

प्रथम "जमीन की मालिकी मिटाकर सारे गाँव की जमीन एक करने से पहला लाभ यह होगा कि गाँव की दौलत बढ़ाने में सहूलियत होगी। खेत में क्या बोना चाहिये और कितना बोना चाहिये, इस बात पर सारे गाँव वाले सोचेगे और सब मिलकर आयोजन करेगें कि गाँव की फसल का कितना हिस्सा रखना है, कितना बेचना है इसका विचार भी गाँव की समिति करेगी। .... थोड़े में हम इतना कहेगें कि समग्र ग्रामदान से अपना इहलोक का जीवन सुखी बनाने में मदद तो होगी। आजकल की भाषा में बोलना है तो हम कहेगें कि इससे आर्थिक आजादी प्राप्त होगी।

द्वितीय गाँव में बराबर प्रेम बढ़ेगा और जीवन में आनन्द आयेगा। जब हम किसी का सुख - दुख

---

9. विनोबा - 'मुहब्बत का पैगाम', पृष्ठ - 194
10. निर्मला देशपांडे द्वारा संपादित 'क्रांति की राह पर', पृष्ठ - 38 पर विनोबा का कथन

समझकर उसमें हिस्सा बटातें है तो दुख कम हो जाता है और सुख बढ़ता है। आनन्द अनेको के सहकार से होता है। गाँव का एक परिवार बनाने से जीवन का आनन्द, रूचि और स्वाद बढ़ेगा। इसे हम सांस्कृतिक लाभ कह सकते है।

तृतीय गाँव का परिवार बनाने से बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि लोगों का नैतिक स्तर ऊपर उठेगा। झगड़े, गाली गलौच, चोरी आदि नहीं होगी। जमीन और सम्पत्ति की मालिकी मिटने से मनुष्य की नीति सुधरेगी। इसे हम नैतिक व श्रेष्ठ लाभ कह सकते है।"[11] इसी सन्दर्भ में उन्होनें कहा "ग्रामदान एक नवीन नीतिशास्त्र और समाजशास्त्र है।"[12]

ग्रामदान व्यवस्था के लिये प्रयोग में ली जाने वाली कार्यप्रणाली निम्न प्रकार थी – जो व्यक्तिगत ग्रामदान में सम्मिलित होता था उसमें एक स्वीकृति पत्र पर हस्ताक्षर कराये जाते थें। वह ग्रामदान संहिता को स्वीकार करता था। इसके पश्चात ग्रामदान के तीन स्तर होते थें। प्राप्ति, पुष्टि और निर्माण। "प्राप्ति में भू स्वामी घोषणापत्र हस्ताक्षर करके अपनी भूमि दान में देता था। पुष्टि में प्राप्त अपनी भूमि का 20 वां भग भूमिहीनों कृषिकों में बांट दिया जाता था साथ ही ग्रामकोष का निर्माण किया जाता था। निर्माण के अर्न्तगत ग्रामकोष तथा अन्य साधनों द्वारा गाँव के निर्माण व विकास के कार्यक्रम बनाकर लागू किये जाते थे। दान वाली 19/20 भूमि पर दाता ही परिवार द्वारा खेती कर बोयेगा। इस पर सामान्य उत्तराधिकार का नियम लागू होगा। लेकिन इसका विक्रय या बन्धक स्वतंत्र रूप से नहीं होगा। ग्रामसभा की आज्ञा से यह विक्रय या बन्धक गाँव में ही किसी को किया जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिवर्ष अपने उत्पादन का 20 वाँ भाग ग्रामकोष में देना होता था। शेष का स्वयं प्रयोग करता था"[13]

"कहीं–कहीं किसान 40 वाँ भाग, वेतनभोगी 30 वाँ भाग ग्रामकोष में देता था। ग्रामदानी ग्राम की भूमि का 10 वाँ भाग सहाकारी खेती के लिये रखा जाता था इसकी उपज को गाँव के सार्वजनिक कार्यो में व्यय किया जाता था।[14]

---

11. विनोबा साहित्य, खण्ड – 16, तीसरी शक्ति, पृष्ठ – 216
12. विनोबा साहित्य, खण्ड – 18, साम्ययोगी समाज, पृष्ठ – 140
13. कृष्ण राजमेहता : लेख – 'ग्रामदान द्वारा ग्रम समाज', भूदान यज्ञ – 1-11-63 पृष्ठ – 9
14. श्री मन्नारायण : 'गाँधीवादी संयोजन के सिद्धान्त, पृष्ठ – 267

<u>ग्रामदान के व्यवहारिक प्रयोग</u> – विनोबा जी ने भूदान के माध्यम से भूक्रान्ति का अभिनव प्रयोग शुरू किया था उसे ग्रामदान के माध्यम से पूर्णतः प्रदान की गयीं। भूदान के माध्यम से उन्होनें मोह की दीवार को तोड़ने का उपक्रम चलाया तो ग्रामदान के माध्यम से उस मोह के विर्सजन को व्यवहारिक बनाया। इस हेतु उन्होनें उ0 प्रदेश के मंगरोठ ग्राम (जिला हमीरपुर) से भूमिपतियों से उनकी भूमि के छठें हिस्सें की मांग न करके सम्पूर्ण भूमि के ग्रामीकरण की मांग की। "मई 1952 में मंगरोढ़ प्रथम ग्रामदानी गाँव बना"[15]

"मंगरोठ ग्राम में 107 परिवार थें जिसमें 67 के पास भूमि थी और 40 भूमिहीन थें। ग्रामदान के बाद सारे परिवारों के पास सामूहिक भूमि हो गयी केवल चार परिवार बचे थे, जो गैर कृषि·कार्यो से जुड़े थे। और खेती करना नहीं चाहते थे"[16] खाद्यान्न में यह गाँव शीघ्र आत्मनिर्भर बन गया था। मंगरोठ को देखकर जय प्रकाश नारायण ने कहा था कि यह सोच कि यदि हर गाँव मंगरोठ बन जायें तो देश भर में एक महान नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक क्रान्ति हो जायेगी, मै उत्साह से भर गया था"[17] इसी प्रकार उड़ीसा के कोरापुट जिलें में भूक्रान्ति की झलक दिखाई पड़ी"[18] "यहाँ 800 ग्रामदानी गाँव थे यहाँ सर्व सेवा संघ के सामूहिक जीवन का विलक्षण सामाजिक प्रयोग किया"[19] "इन प्रत्येक ग्रामदानी गाँव में वयस्क लोगों की ग्राम समिति जो भूमि वितरण के कार्यो को सम्पन्न करती आठ से दस गाँव समिति मिलाकर ग्राम सभा का निर्माण होता[20]।" इन गाँवों में सामुदायिक जीवन की स्थापना के लिये 'गाँधी घर' की स्थापना की गयी। गांधीघरों का प्रयोग निम्न उद्‌देश्यों के लिये किया गया।

1. ग्रामवासियों के लिये समान मन्त्रणा केन्द्र
2. उपभोक्ता भंडार
3. स्वास्थ्य केन्द्र

---

15. अदी0 एच0 डाक्टर 'सर्वोदय : ए पोलिटीकल एण्ड एकोनोमिक स्टडी' पृष्ठ – 124
16. पूर्वोक्त – 127
17. एलन एण्ड बन्डी स्काफ 'जयप्रकाश एक जीवनी', पृष्ठ – 266
18. विनोबा साहित्य, खण्ड – 15 'आरोहण' पृष्ठ – 169
19. अदी0 एच0 डाक्टर 'सर्वोदय ए पोलिटीकल एण्ड एकोनोमिक स्टडी, पृष्ठ – 128
20. पूर्वोक्त – 128

4. रात्रिकालीन वयस्क शिक्षा केन्द्र कताई बुनाई केन्द्र

5. बच्चों के लिये प्रातः कालीन शिक्षा केन्द्र इत्यादि।" (21)

इस प्रकार करीब 18 गांधीघर स्थापित किये गये जहॉं भी सर्वोदयी कार्यकर्त्ताओं ने ग्रामदान के लिये व्यापक पैमाने पर कार्य किया है वहॉं उन्हे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुयी है। "आसाम के शिवसागर जिले के कपिलासुख गॉंव में सर्वोदय का ग्रामदान कार्यक्रम पूर्णतयः क्रियाशील हो चुका हैं। वहॉं सम्पूर्ण भूमि का समाजीकरण हो गया है। खेती सामूहिक होती है तथा उत्पादन परिवारों में बांट दिया जाता है। उत्पादन भी पर्याप्त होता है। तथा स्थिरता का वातावरण बना है"(22)

विनोबा जी ने 1950 में बिहार में बीघा कट्ठा आन्दोलन शुरू किया। जिसमें कृषि योग्य भूमि के 20% भाग की मांग की गयी। यह कुछ महीने चला, परन्तु इसकी सफलता ने सुलभ ग्रामदान को प्रोत्साहित किया। सुलभ ग्राम दान 1965 से 1969 तक विनोबा के प्रत्यक्ष निर्देशन के बिहार में चला(23) । पुराना ग्रामदान समाज प्रेरणा पर आधारित था, वह स्वार्थ प्रेरणा के लिये उतना अनुकूल लाभ नहीं था अर्थातः पुराने ग्रामदान में व्यक्तिगत को स्थान नहीं दिया गया था। व्यक्ति अपनी पूरी भूमि ग्रामसभा के स्वामित्व में दान कर देते थें। लेकिन शुलभ ग्रामदान में व्यक्ति से केवल 20% कृषि योग्य भूमि दान में मांगी गयी बाकी भूमि का स्वामित्व इस शर्त पर व्यक्ति ग्रामसभा को सौपता था कि सौपें जाने के बाद भी जमीन पर उसका हक रहेगा। और उसकी सहमति के बिना उस जमीन से उसे या उसके वंशज को वंचित नहीं किया जायेगा। जैसे जैसे आन्दोलन आगे बढा प्रखण्डदान, जिला दान और राज्यदान के नये प्रयोग सामने आये। ग्रामदानी गॉंवों को प्रखण्ड के स्तर पर संगठित किया गया। प्रखण्ड की अखिल भारतीय औसत 80 हजार है, प्रखण्ड के 85 से अधिक प्रतिशत राजस्वग्रामी के 75 प्रतिशत वयस्कों की सम्पत्ति मिलने पर वह प्रखण्ड दान माना गया। जिले के सभी प्रखण्ड तैयार हो जाने पर तथा उपयुक्त शर्तो पूरी करने पर उसे जिलादान माना गया और इसी प्रकार प्रदेश के सभीं जिलों का दान होनें पर उसे राज्यदान माना गया (24)।

---

21. पूर्वोक्त, पृष्ठ –129

22. डा0 सुगतदास गुप्ता – 'ए ग्रेट सोसाएटी आफ स्माल कम्यूनिटीज' पृष्ठ – 48

23. डा0 विश्वनाथ टंडन 'भूदान – ग्रामदान – ए रिव्यू, पृष्ठ – 494

24. डा0 नीता त्यागी – 'गांधी और विनोबा', पृष्ठ – 342

31 मार्च 1972 तक ग्रामदान की सफलता का विवरण [25]

प्रदेश	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
बिहार	60065	573	24
तमिलनाडू	30605	314	11
उ0 प्र0	32963	186	8
उड़ीसा	2636	70	2
मध्य प्रदेश	10889	47	7
आन्ध्र प्रदेश	4281	15	1
महाराष्ट्र	4627	17	1
कर्नाटक	1424	14	1
राजस्थान	2067	2	1
पंजाब	–	–	–
हरियाणा	4017	7	–
हिमाचल प्रदेश	–	–	–
असम	2602	1	–
गुजरात	1119	3	–
पं. बंगाल	748	–	–
केरल	418	–	–
दिल्ली	79	–	–
जे0 के0	9	–	–
योग	16818	1249	56

ग्रामदान ग्रामस्वराज्य की दिशा में एक निर्णायक कदम था। इसकी शुरूआती सफलता संतोषजनक थीं। परन्तु 1965 के बाद यह आन्दोलन उतना सफल नहीं रहा जितना इसे होना चाहिये था। बाद में

25. नरेन्द्र दुबे, ट्रस्टीशिप – 'सिद्धान्त एवं व्यवहार', पृष्ठ – 5 से तालिका अवतरित

न इसका व्यापक प्रभाव हीं रहा न लोग बड़ी मात्रा में इसमें सम्मिलित ही हुये अतः यह आवश्यक हो जाता है कि हम आन्दोलन की कमजोरियां एवं विसंगतियों का सम्यक परीक्षण किया जाये। इस प्रयास में कुछ स्पष्ट कारण सामने आये है –

1. उत्साही तथा कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की कमी ने इस आन्दोलन को लगड़ा कर दिया। ग्रामदानी कार्यकर्ता दानपत्रों की संख्या बढ़ाने में लगे रहे। ग्रामदान की पुष्टि, निर्माण तथा भूमि वितरण की ओर ध्यान कम दिया। अर्थात कार्यकत्ताओं ने इस आन्दोलन की वैचारिक प्रतिबद्धता को नजरअंदाज किया। डा0 विश्वनाथ टंडन के अनुसार –

" In movement there is a very serious on from ideological viewpoint was to allow the lure of the fullfilment of the targets to dominate the movement to such on extent that the the very principle of acquiring land or village gifts by explaining to the people the fundamental ideas underlying trem came to mostly violated" अतः आन्दोलन गहाराई से लोगों से न जुड़ पाया। [26]

2. ग्रामदान की सफलता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा भूमि हस्तान्तरण के नियमों का कठोर होना था। सरकारों के नये सरल कानून शीघ्रता से नहीं बनाये अतः दान व वितरण दोनों कार्य अधूरे रह गये।

3. ग्रामदान की प्रक्रिया बहुत लम्बी होती है। दान से लेकर वास्तविक भूमि व्यवस्था तक अधिक समय लगता हैं। इस बीच अनेक वैधानिक औपचारिकतायें पूरी करनी पड़ती है। नामोतरण व अधिग्रहण के कार्य वर्तमान कानून में समायोजित नहीं हो पाते इसलिये अनेक जटिलतायें आई है। सर्वोदयी कार्यकर्ता सुगतदास गुप्ता के अनुसार –

"स्वामित्व के अधिकार पत्र ग्रामसभा के नाम से किये जाते है तथा स्वामियों द्वारा दी गई भूमि भूमिहीन लोगों में बांट दी जाती है। इससे वास्तव में सदैव के लिये एक कानूनी उलझन हो जाती है. .... तार्किक हस्तान्तरण को प्रभावित करने के पूर्व बहुत से दस्तावेज भरने पड़ते है। जैसे ही ग्रामदान संकल्प हो वैसे ही तुरन्त इन सबको पूरा करने के लिये आन्दोलन के पास कार्यकर्त्ताओं की विशाल संख्या होनी चाहिये"। इतने अधिक कार्यकर्ता ग्रामदान आन्दोलन के पास नहीं थे, इसलिये ग्रामदान की प्रक्रिया अधूरी व उलझनों से भरी बनीं रहीं।" [27]

---

26. Dr. V. Tondon - The Bhoodan - Gramdan - A Review p - 500

27. सुगतदास गुप्ता 'ए ग्रेट सोसायटी आफ स्माल कम्यूनिटीज, पृष्ठ – 34-35

4. ग्रामदानी ग्रामों में भूमि की व्यवस्था दो प्रकार से की गयी थीं। कुछ भूमि तो परिवारों को अलग-अलग कृषि करने को दी जाती थीं तथा कुछ सामूहिक खेती के लिये सुरक्षित रखी जाती थीं। अलग-अलग खेती सामूहिक प्रवृत्तियों के विकास में बाधक होती है तथा इससे सामूहिक कृषि साधनों का विकास भी नहीं हो पाया और न सामूहिक कृषि योजना का व्यापक कार्यक्रम चल पाता है। व्यक्तिगत कृषि बने रहने से ग्राम आन्दोलन में लोगों की सामूहिक भावना का विकास नहीं हो पाया। तेरे मेरे की भावना यथावत चलती रहीं। परिवार बढ़ जानेसे पुनः वितरण का प्रश्न आता रहा है तथा वितरण की समस्या बनी ही रही। इस प्रकार ग्रामदान न तो वितरण की समस्या का स्थायी हल दे पाया और न समस्या रहित कृषि विधि का सुझाव दे पाया।" [28]

5. इस आन्दोलन के समक्ष कुछ बाहरीं समस्यायें भी थीं। डा० विश्वनाथ टंडन के अनुसार -

" Its method involved the coopration of all but it failed to evoke it. the attitude of the intellectual with some exception was either of indifference or of opposition. Most of the English periodicals, which played a greater role in Influencing those who mattered and in the formation of educated opinion neglected the movement as if it was of no consequence. [29]

साथ ही "सरकार की मशीनरी तथा राजनैतिक पक्ष न सिर्फ अपनी जिम्मेदारी से पीछे हटे बल्कि इसकी ओर से कठिनाइयां भी पैदा की गयी न तो ग्रामदान को पुष्ट करने में राजस्व विभाग ने मदद की, न ग्रामसभाओं को कानूनी हक और मान्यतायें प्रदान की गयी। विकास के लिये योजना में कोई स्थान मिला ही नहीं"। [30]

लेकिन इन कारणों के बावजूद भी वैचारिक तत्वों एवं शुरूआती सफलता के आंकड़ो के आधार पर ग्रामदान एक बहुत ही प्रेरणादायक एवं सफल कार्यक्रम रहा है। इसने सामूहिक जीवन बनाने के लिये क्रान्तिकारी कार्य किया। ग्रामदान की प्रशंसा सर्वोदय सम्मेलन 1959 अजमेर में तथा 1961 उगुटर में की गई जिसके अनुसार ग्रामदान में एक ऐसा रास्ता खोल दिया था जिसके आर्थिक प्रगति हो और साथ ही सामाजिक क्षेत्र में जनता नैतिक गुणों का विकास भी हो नैतिक विकास के सन्दर्भ में विनोबा जी का

---

28. धीरेन्द्र मजूमदार : 'समग्र ग्रामसेवा की ओर', भाग - 3, पृष्ठ - 258 का सारांश

29. Dr. V. Tondon - The Bhoodan - Gramdan - A Review p - 500.

30. निर्मल - 'स्वराज्य, संगम और सर्वोदय समाज' - गाँधीमार्ग, अगस्त 1983, पृष्ठ - 37

कथन कि "कोई क्या अपने घर में चोरी करता है मनुष्य ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये पृथक परिवार और पृथक सम्पत्ति की सृष्टि की है। उसी व्यक्तिगत मालिकी के बोझ से समाज का नैतिक ह्रास हुआ है। .... जैसे ही ग्रामदान से भूमि और सम्पत्ति की मालिकी खत्म हो जायेगी तभी लोगों की ओर समाज के नैतिक उन्नति होगी, इसमें सन्देह नहीं"। (29)

आज लोकतन्त्र एवं पंचायती राज व्यावस्था की सफलता के लिये ग्रामदान का महत्व सर्वाधिक है। क्योंकि इसमें समस्याओं के निराकरण की क्षमता है। "ग्रामदान होने पर गाँव के प्रत्येक परिवार के बालिग सदस्य के द्वारा ग्रामसभा की स्थापना होती है और ग्रामसभा आपस में कुछ लोगों को चुनकर ग्रामसमिति का निर्माण करती है। गाँव का सारा कार्य इन्हीं ग्रामसभा और ग्रामसमिति के आधार पर होता है। फिर ग्राम सभा में बढ़कर पंचायत-सभा, प्रखण्ड-सभा, जिलासभा, राज्यसभा, राष्ट्रसभा, और विश्वसभा की स्थापना का विचार आता हैं। अतः जनता साक्षात रूप में शासन में हाथ बढ़ाने लगती। दलगत राजनीति का कास्वार्यवाद समाप्त होने लगता है और लोकशक्ति और लोकनीति का उदय होने लगता है" (32) "ग्रामदान वस्तुतः आदर्श जनतंत्र की नींव है। ग्रामदान की व्यवस्था में हर व्यक्ति गाँव की आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था में साझेदार होता है(33)।"

विनोबा जी ने कहा कि "ग्रामदान के बिना ग्राम स्वराज्य की कल्पना असम्भव है ग्रामदान के बिना न हिन्दुस्तान टिकेगा और न जनशक्ति पैदा होगी (34)।

ग्रामदान में कर्तव्य शून्य स्वामित्व का विसर्जन है। वर्तमान विक्षोभ और अराजकता का विकल्प इसमें निहित है। आत्मज्ञान, विज्ञान और विश्वास के समन्वय की इसमें पूर्ति है। राज्य के अधिकाधिक बढ़ते हुये अंकुश सैनिकवादी प्रवृति और पूंजीवादी व्यावस्था जिन भौतिकवादी मूल्यों का समाज में स्थापित करना चाहती है ग्रामदान विचार सीधे उन पर प्रहार करता हैं। इसके माध्यम से विनोबा जी ने

---

31. चारूचन्द्र भंडारी - 'ग्रामदान क्यों', पृष्ठ - 23
32. डा0 दशरथसिंह - 'गाँधीवाद को विनोबा की देन', पृष्ठ - 449
33. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 550
34. विनोबा - 'ग्रामदान के बिना न हिन्दुस्तान टिकेगा न जनशक्ति पैदा होगी' (भूदान पत्र) जुलाई 1965
35. विनोबा साहित्य, खण्ड - 15, 'आरोहण', पृष्ठ - 164-165

एक सर्वांगीण कार्यक्रम समाज के समक्ष रखा। उनके शब्दों में -

"ग्रामदान एक ऐसी चीज है .... कि उसका वर्णन सर्व सौभाग्य प्रद और 'सर्वतोंभद्र' इन शब्दों में ही करना पड़ेगा। यह सबके लिये सब प्रकार से कल्याणप्रद है। इसमें स्वावलम्बन है, विकास है, अन्न समस्या का हल है, अंहिसा की सुरक्षा है।"[35]

वास्तव में ग्रामदान में भारत की अहिंसक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के निर्माण के बीच है। इसनें ग्रामीण भारत के पुनर्निमार्ण के लिये अनेक महत्वपूर्ण संकेत हस्ताक्षरित किये। जय प्रकाश नारायण के अनुसार -

"ग्रामदान आन्दोलन ने सामाजिक, आर्थिक और नैतिक क्रान्ति का संदेश भारत के गाँवो तक पहुँचाया .... ग्रामदान आन्दोलन व्यापक रूप से मत परिर्वतन और नये मूल्यों तथा नये वैचारिक वातावरण का निर्माण करने वाला एक जन आन्दोलन है।"[36]

(ग) सम्पत्तिदान यज्ञ

सम्पत्तिदान अर्थात सम्पत्ति के विर्सजन की प्रतिज्ञा। दिनांक 23.10.52 को पटना की आमसभा में इस विचार को प्रस्तुत करते हुये विनोबा जी ने कहा था कि "आज तक मै सिर्फ भूमि का दान लेता था। लेकिन अब मै सम्पत्ति का भी दान लूंगा। सम्पत्तिदान में दाता अपनी सम्पत्ति का हिस्सा हर साल समाज को देता रहेगा। मै सिर्फ वचनपत्र लूंगा। दाता अपनी आत्मा को साक्षी करके उसका विनियोग करेगें ....।[1] विनोबा जी का सम्पत्तिदान विचार स्वामित्व विसर्जन का महान प्रयास है जिसका मूल उद्देश्य मुनष्य को आसक्ति से हटाकर अपरिग्रही बनाना है। विनोबा जी के शब्दों में "सम्पत्तिदान यानि भगवान ने जो सम्पत्ति हमें दी है, कम हो या अधिक उसका एक अंश समाज को समर्पण करके बचे हुये को भोग भोगने का अधिकार - मनुष्य को है, अन्यथा भोग भोगने का अधिकार

35. विनोबा साहित्य, खण्ड - 15, 'आरोहण', पृष्ठ - 164-165

36. जयप्रकाश के विचार, पृष्ठ - 112-113

1. विनोबा साहित्य, खण्ड - 18 'साम्ययोगी समाज', पृष्ठ - 104

दरिद्र को भी नहीं है। तेन व्यक्तेन भुंजी था" [2]

उन्होंनें कहा –

"यत्करोषि यद्श्नासि यज्जुहोषि ददासि यत यत पस्यसि, कौतेय तत्कुरुष भदर्पणम्।।

ऐसा समर्पण योग साधना है। मनुष्य जो कुछ भोग करेगा इससे आध्यात्मिक और उतनी ही बड़ी भौतिक शक्ति इस देश में पैदा होगी।" [3]

सम्पत्तिदान विनोबा जी के भूदान आन्दोलन का ही परिपूरक सृजनशील कार्य है। डा0 अदी एच0 डाक्टर के अनुसार "सम्पत्तिदान भूदान द्वारा प्रारम्भ की गयी न्यायपूर्ण वितरण की प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिये साधन है। सम्पत्तिदान धनी लोगों को अपनी अतिरिक्त आय को स्वेच्छा से छोड़ने के लिये कहता है। जिससे आय का सामान वितरण हो सके" [4] इसके पीछे मूलभाव है कि सम्पत्ति समाज के सहयोग से ही प्राप्त की जाती है अतः उसका विनियोग भी समाज सेवा में ही होना चाहिये। सर्व सेवा संघ ने एक प्रस्ताव में कहा सम्पत्तिदान के पीछे यह सिद्धान्त है कि उत्पादन के साधन समाज और ग्राम समुदाय के हाथों में होने चाहिये" [5]

विनोबा जी ने सम्पत्तिदान के लिये कुछ नियम भी बनाये कि –

"50 रूपये से नीचे वेतन वाला एक रूपये में तीन पाई अर्थात 1/64 दें 50 रूपये से 150 रूपये आय वाले के लिये रूपये में छः पाई अर्थात 1/32 भाग दें। 150 से 250 रूपये में 9 पाई अर्थात 1/20 भाग दें" [6] सम्पत्तिदान को अन्य स्वरूप में भी अपनाया जा सकता है।" यदि कोई हिन्दू परिवार हरिजन के बच्चें को अपने घर पर रखकर उसकी परवरिश करें तो उस पर खर्चा सम्पत्तिदान माना जायेगा [7]। सम्पत्तिदान के दो रूप है – "एक ग्रामकोष, दूसरा सर्वोदय पात्र [8], सर्वोदय पात्र से नित्य

---

2. विनोबा साहित्य खण्ड – 15 'तीसरी शक्ति' अर्थात् उपनिषद ने आज्ञा दी है – जो भी भोग करना है त्याग करके भोगो', पृष्ठ – 263
3. पूर्वोक्त
4. अदी0 एच0 डाक्टर 'सर्वोदय ए पोलिटीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडी', पृष्ठ – 119-120
5. पीपुल्स एक्शन, नवम्बर – 1970
6. विनोबा भावे – संपत्तिदान, पृष्ठ – 39-40
7. पूर्वोक्त
8. धीरेन्द्र मजूमदार, लोकगंगा के तट से, पृष्ठ – 50

प्रति दान करने की भावना बनती है। सर्वोदय पात्र घरों में रखा जाता हैं। जिसमें गृहस्वामी दान डालता है। निश्चित समय पर आकर सामान या धन को ले जाता है। सर्वोदय पात्र गृहस्वामी में आत्मगुणों का विकास करता हैं। सर्वोदय पात्र के पीछें यहीं उच्च भावना थी।

विनोबा जी के सम्पत्तिदान के पीछे गांधी जी की ट्रस्टीशिप की भावना है। सुरेश राम भाई के अनुसार "सम्पत्तिदान में विनोबा जी को ट्रस्टीशिप विचार को व्यवहारिक रूप देने का सूत्र मिला" [9] उन्होनें सम्पत्तिदान में निहित तत्वदर्शन की व्याख्या करते हुये कहा है कि "सभी प्रकार की सम्पत्ति चाहे उसे हम अपने निजी प्रयासो या कौशल से कमायें वह केवल हमारे लिये ही नहीं है, बल्कि सभी के लिये ईश्वर ने हमें मंजूर की है .... सम्पत्तिदान धनी व गरीब दोनों को अपने अधिपत्य व स्वामित्व को छोड़ने के लिये प्रेरित करता है, जिसमें लोग अपनी सम्पन्नता व विपन्नता को आपस में बांट ले"[10]। स्वयं विनोबा जी के शब्दों में "आजकल के लोग अपने को सम्पत्ति का मालिक मानते आयें उससे हितों का विरोध निर्माण होता है, किन्तु जहाँ ट्रस्टीशिप का विचार आता है, वहाँ पूरी वैचारिक क्रान्ति होती है। यानि अपनी-अपनी चीजों पर जो अपनी मालिकी मानते है वह गलत है। हमारे पास जितनी भी शक्तियां हैं, समाज की सेवा के लिये हैं व्यक्तिगत स्वार्थ साधने के लिये नहीं। व्यक्तिगत स्वार्थ तो अपने स्वार्थ को समाज के चरणों में समर्पित कर देनें में ही है .... सर्वोदय समाज के लिये दो-तीन चीजें करनी है पहली, हमारे पास जो चीजे है हम उसके मालिक नहीं ट्रस्टी हैं। सर्वोदय समाज की तरफ से मै उनका संरक्षण करता हूँ।"[11]

विनोबा जी ने सम्पत्तिदान के माध्यम से संग्रह का विर्सजन एवं जीविका के शुद्धिकरण का प्रयास किया। सम्पत्तिदान समाज में सम्पत्ति के सन्तुलित बंटबारें से शोषण, अन्याय, एवं अशांति के प्रतिकारका सशक्त कदम है। किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से इसके परिणाम उल्लेखनीय नहीं रहे। "1952 से लेकर 1963 तक सम्पत्तिदान के अर्न्तगत कुल 3.25 लाख रूपये ही एकत्र किये गये" [12] इसका एक प्रमुख कारण यह भी रहा कि "यह आन्दोलन शहर के लोगों पर अपना प्रभाव जमाने में असफल

---

9. डा0 सुरेशराम 'विनोबा एण्ड हर मिशन, पृष्ठ - 275
10. डा0 सुरेशराम 'विनोबा एण्ड हर मिशन, पृष्ठ - 275 से 277 का सारांश
11. विनोबा साहित्य, खण्ड - 18, 'साम्योगी समाज', पृष्ठ - 120-121
12. भूदान योजना, 'विशेषांक 18 अप्रैल 1963, पृष्ठ - 108-109

रहा" [13] अतः बड़े पूंजीपतियों, व्यापारियों और सेवीवर्ग ने इसे व्यापक रूप से नहीं अपनाया। दूसरे इसे एक स्वतंत्र आन्दोलन के रूप में प्रतिष्ठित न करके भूदान आन्दोलन के विकास के लिये सहायक कार्यक्रम के रूप में शुरू किया गया था। "भूदान में प्राप्त भूमि में कृषि कार्य के लिये साधन खरीदनें व इस आन्दोलन में समर्पित कार्यकत्ताओं की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिये धन एकत्रित करना इसका लक्ष्य था" [14] अतः जैसे जैसे भूदान आन्दोलन शिथिल पड़ता गया यह आन्दोलन भी स्वाभाविक रूप से कमजोर होता गया।

(घ) श्रमदान

विनोबा जी नवीन सर्वोदयी व्यवस्था स्थापित करने के लिये सभी के लिये उत्पादक श्रम की अनिवार्यता को स्वीकारते हैं। उनका मत है इससे 'सामाजिक जीवन में श्रमनिष्ठा व श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित होगी[1] ।" विनोबा जी के अनुसार "गीता में वर्णित है कि मनुष्य किसी भी समाज में क्यों न हो अगर अपना कार्य प्रेम भक्ति से करता है। तों मोक्ष का अधिकारी बन जाता है"[2] श्रमनिष्ठ समाज विकासोन्मुखी होता है पर वर्तमान में हमारे देश में शरीर श्रम को अनादर व तिरस्कार से देखा जाता है। "हमारे समाज में दर्जे पड़ते गये। कुछ लोग अपने को ऊँचे कहलाने लगें और उन्होनें शरीर-परिश्रम से खुद को मुक्त कर लिया। जिन्हें शरीर परिश्रम करना पड़ा, वे सारे नीच माने गयें"[3] "सामाजिक दृष्टि से किसान, मजदूर आदि का नीचे दर्जे का माना जाता है और मेहतर को जिसका श्रम बहुत ही कष्ट साध्य है, अब तक अस्पृश्य ही माना जाता रहा, और अब यद्यपि कानून ने अस्पृश्यता हटा दी है, हमारे पुराने संस्कारों के कारण व्यवहार में वह कुछ न कुछ बनी हुयी है" [4] यह तो सामाजिक दृष्टि

---

13. डा0 विश्वनाथ टंडन 'द ग्रामदान - भूमिदान मूवमेंट (1951-74) एक मूल्यांकन, पृष्ठ - 497
14. जे0 पी0 सूद - 'आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास' भाग - 4, पृष्ठ - 224
1. विनोबा साहित्य, खण्ड - 18, साम्योगी समाज, पृष्ठ - 60
2. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 63
3. पूर्वोक्त
4. भगवान दास केला, अर्थनीति - सर्वोदय की दृष्टि से, पृष्ठ - 55

की बात हुई। विनोबा जी के अनुसार आर्थिक और नैतिक दृष्टि से भी मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच भेदभाव है। "शरीरश्रम को एक घंटे के लिये आठ आने या बारह आना (50 से 75 पैसे - 1958) मजदूरी दी जाती है, तो मानसिक श्रम के लिये प्रतिघंटा दस से बीस रूपये, पचास रूपये, भी दिये जाते है नैतिक दृष्टि से तालीम के कुल के कुल फायदे उन लोगों को मिलते है। जो शरीर श्रम नहीं करते है। जो नित्य शरीरश्रम करते रहें उन्हें शिक्षण संस्कार से वंचित किया गया है" (5) इसका परिणाम यह हुआ कि "समाज में समरसता नहीं, समानता नहीं, ऊँच नीच का गरीब-अमीर का भेदभाव है वर्गभेद विद्वेष है, संघर्ष है, अशांति है" (6)

अतः सामाजिक जीवन को सरस, सांमजस्य पूर्ण एवं सुखमय बनाने हेतु विनोबा जी ने कहा कि "प्रत्येक सक्षम व्यक्ति चाहे वह सामान्य नागरिक हो या शासक वर्ग का हो बुद्धिजीवी हो या व्यापारी, शिक्षक हो या सैनिक प्रतिदिन उत्पादक श्रम अवश्य करे" (7) इसी सन्दर्भ में उन्होनें 'श्रमदान आन्दोलन' को शुरू करने का निश्चय किया और आहवाहन किया कि "श्रमदान द्वारा लोग अपने श्रम का कुछ अंश सार्वजनिक जीवनोपयोगी कार्यो में लगाये .... क्योंकि इसके बिना न भूदान यज्ञ (सर्वोदय आन्दोलन) सफल होगा, न यहां के गरीबों का उत्थान होगा न गरीब- अमीर का भेद मिटेगा न सर्वोदय समाज की स्थापना होगी" (8) उन्होनें आगे कहा कि "हिन्दुस्तान में हर व्यक्ति प्रतिदिन कम से कम एक घंटा श्रमदान दें। आज देश में उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता देश के बड़े-बड़े नेता कह रहे कि उत्पादन बढ़ाओं, उत्पादन बढ़ाओं लेकिन क्या खेतों में कार्य करने वाले मजदूर आठ के बदले नौ घंटे काम करे यही उत्पादन बढ़ाने का तरीका है ?(9) "आज देश में लाखों एकड़ जमीन परती पड़ी है। उसे खनकर खेती योग्य बनाना है हजारों गांवों में सड़के बनानी है। यात्रियों के लिये गाँव-गाँव में चौपाल तैयार करनी है। मैले की खाद प्रायः सर्वत्र व्यर्थ नष्ट हो रही है अतः उसके समुचित उपयोग के लिये गढ्ढेदार पाखाने और बरसात के लिये छाजनदार पाखाने बनाने है। पत्तियों के ढेंर के ढेंर यो ही व्यर्थ हो रहे है,

---

5. विनोबा साहित्य, खण्ड - 18 'साम्योगी समाज', पृष्ठ - 66
6. भगवान दास केला, अर्थनीति सर्वोदय की दृष्टि में, पृष्ठ - 66
7. विनोबा साहित्य, खण्ड - 18, साम्ययोगी समाज, पृष्ठ - 68
8. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 67
9. पूर्वोक्त - 68 - 69

उनके उपयोगार्थ जगह-जगह कम्पोस्ट के सैकड़ों खड्डे बनाने है। पाठशालाओं के लिये गाँव-गाँव सैकड़ो छोटी-छोटी झोपड़ियां तैयार करनी है। छोटी-छोटी नदियों का पानी व्यर्थ बहा जा रहा है उसे रोकने को छोटे-छोटे बाँध बाँधने है। जगह-जगह खेत की सिचाई के लिये खनने है। हजारों खेतों में चकबन्दी करनी है। जगह-जगह उपयोगी पेड़ लगाने है। जगह-जगह सफाई का काम करना है। दलदल प्रदेश में छोटी-छोटी पुलियां बनानी है। क्या ये सारें काम सरकार कर सकती है ?[10]

अतः विनोबा जी स्वैच्छिक श्रमदान को शिक्षित अशिक्षित सामान्य नागरिक शासक व्यापारी एवं बुद्धिजीवी वर्ग आदि सभी के लिये अनिवार्य घोषित करते है। इससे राष्ट्र की श्रमशक्ति का विनियोग सार्वजनिक हित में होने के साथ-साथ अन्य कई महत्वपूर्ण लाभ परिलक्षित होते है।

(क) समाज में श्रम और चिंतन दोनों की समान प्रतिष्ठा होगी।[11]

(ख) समाज में मालिक मजदूर का भेद मिटेगा। उससे मातृभाव और प्रेमभाव बढ़ेगा ऊँचनीच का भेदभांव नहीं रहेगा।[12]

(ग) गरीब-अमीर छोटा-बड़ा शिक्षित-अशिक्षित, सरकारी गैर-सरकारी, स्त्री-पुरुष सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त होगें।[13]

(घ) राष्ट्रकार्य के निमित्त प्रचण्ड श्रमशक्ति का अविभवि होगा।[14]

कुछ आदर्श श्रमदान "पूज्य विनोबा जी ने इसी श्रमदान के सिद्धान्त पर ब्रहमविद्या की नगरी काशी में 'स्वच्छकाशी आन्दोलन चलाकर सबको यह अनुभव करा दिया था कि - सा काशिकाडहम निजबोद्य - रूपा।"[15] विनोबा जी के आहवान् पर महाराष्ट्र में सेनापति वापट, गोघडेवोबा, तुकड़ो जी महाराज अनेक प्रकार के श्रमदान के आयोजन करते और कराते रहे है"[16] आज भी पूरे देश में लोग स्वैच्छिक

---

10. शिवाजी भावे - 'श्रमदान' पृष्ठ - 63
11. विनोबा साहित्य - साम्योगीसमाज पृष्ठ - 69
12. पूर्वोक्त - 78
13. शिवाजी भावे - 'श्रमदान' पृष्ठ - 63
14. पूर्वोक्त
15. पूर्वोक्त - 64
16. पूर्वोक्त

श्रमदान कर सार्वजनिक स्थलों का निर्माण ऐतिहासिक भवनों का रखरखाव में योगदान देते है। वर्तमान में इसी क्रम में मेंरे जनपद (जालौन) के मुख्यालय उरई में प्रतिष्ठित सुविख्यात ऐतिहासिक माहिल तालाब के जीर्णोद्वार हेतु नगर के शिक्षक, प्रशासक, बुद्धिजीवी वर्ग, छात्र-छात्राओं, राजनेताओं एवं सामान्य नागरिकों ने स्वैच्छिक श्रमदान कर महत्वपूर्ण योगदान दिया है।[17]

विनोबा जी के श्रमदान का अन्तिम लक्ष्य यही है कि हम समाज में समानता सामर्थ्य, समृद्धि, सफाई, शुद्वि, प्रेम, भक्ति और माधुर्य का निर्माण कर सके'। समाज में श्रम की प्रतिष्ठा का यह एक व्यवहारिक एवं सार्थक स्वरूप है। यह आन्दोलन श्रमनिष्ठ जीवन ही सच्चा जीवन है' इसका सफल आहवान् करता है।

(ड) जीवनदान

1954 में बोध गया सर्वोदय सम्मेलन का एक महान अवदान है - जीवनदान। किन्तु इस महान विचार का आभास विनोबा जी ने महीनों पूर्व एक प्रार्थना प्रवचन में दिया था उन्होनें कहा था कि "आज नवीन मनुष्य, नवीन समाज तैयार करना होगा। इसलिये भूदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान, आदि आन्दोलन शुरू किये गये है। इस काम के लिये ऐसी विचारधारा उत्पन्न करनी होगी, जिससे लोग जीवन समर्पित करने की ओर अग्रसर हो"[1] इसके साथ ही 1953 में बिहार के चाण्डील गॉंव में जो सर्वोदय सम्मेलन हुआ था, उसमें गांधी जी के अधूरे काम को आगे बढ़ाने के लिये विनोबा जी ने कहा था कि "हमे स्वतंत्र लोक-शक्ति का निर्माण करना है। मेरे कहने का मतलब यह है कि हमें हिंसा-शक्ति की विरोधी और दण्ड शक्ति (कानून) से भिन्न स्वतंत्र लोक-शक्ति प्रकट करनी है[2] । वास्तव में विनोबा जी सर्वोदय की अहिंसक समाज रचना के निर्माण एवं भूदान यज्ञ के पावनकारी उपासना की प्रक्रिया में व्यक्ति को समस्त जीवन एवं शक्ति का समर्पण आवश्यक मानते है, ताकि अहिंसक सामाजिक पुनर्निर्माण की अभिनव क्रान्ति की सफलता सुनिश्चित हों सके। चाण्डील के भाषण कों सुनने के बाद जय प्रक़ाश को विश्वास

---

17. अमर उजाला (दैनिक समाचार पत्र) 25 जुलाई, 2000

1. चारूचन्द्र भण्डारी 'भूदान' क्या और क्यों पृष्ठ - 190

2. कांतिशाह 'विनोबा - जीवन और कार्य' पृष्ठ - 72

हो गया था कि विनोबा जी एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना चाहते है, जिससे आज के सारे सामाजिक, आर्थिक ढांचे में जड़-मूल का परिर्वतन आ जाये" [3]

बोध गया सम्मेलन के दूसरे दिन जय प्रकाश जी ने कहा आज का युग इस आन्दोलन के लिये अधिक समय नहीं देगा। अहिंसात्मक क्रान्ति होगी, इसके लिये इतिहास रूककर प्रतीक्षा नहीं करेगा .... अब तो जीवन अर्पित करने का समय आ गया है। इसके बाद तुमुल हर्ष ध्वनि के बीच श्रद्धा और विनय के साथ जय प्रकाश जी ने अपने जीवनदान की घोषणा की" [4]। जय प्रकाश जी के इस शुभ संकल्प के बाद विनोबा जी ने जय प्रकाश नारायण जी को पत्र लिखा "श्री जय प्रकाश भूदान या मूलक, ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति के लिये मेरा जीवन समर्पित - विनोबा[5] अर्थात (क) भूदान यज्ञ मूलक - नवीन समाज रचना के आधार स्वरूप घर-घर में भूमि वितरण की व्यवस्था हो इसमें आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण आग्रह है।

(ख) ग्रामोद्योग प्रधान - भारत की गरीबी समस्या का निदान केवल भूमि के द्वारा ही सम्भव नहीं है कृषि की पूरक वृत्ति के रूप में ग्रामोद्योग की व्यवस्था हो। इससे औद्योगिक विकेन्द्रीकरण को बल मिलेगा।

(ग) अहिंसात्मक - समाज रचना में परिर्वतन हेतु अहिंसात्मक क्रान्ति एक मात्र विकल्प होगी। सर्वोदय समाज की उपरोक्त व्यवस्था हेतु सभी अपना जीवन समर्पित करें। जीवनदान का यही संकल्प है। विनोबा जी के अनुसार "जीवन दान का अर्थ है जीवनशुद्धि .... अपने अंहकार का विर्सजन कर देने के बाद ही ईश्वर की इस संयोजना में योगदान कर सकते है। जब तक व्यक्ति अपने अहम् को नष्ट नहीं करता उसे कल्पनाजाल कर्तव्यक्षेत्र और ममत्व घेरे ही रहते है।" [6] उनके मत में अंहकार मुक्त एवं मन, वाणी एवं कर्म से ऊपर उठकर ही व्यक्ति संकल्प पूरा करने हेतु अपना जीवन समर्पित करने में सफल हो सकता है। "विनोबा एवं जयप्रकाश जी के आहवान् पर 1955 तक एक हजार से भी

---

3. पूर्वोक्त - 73
4. चारूचन्द्र भण्डारी - भूदान क्या और क्यों 190 - 191
5. विनोबा साहित्य खंड - 15 आरोहण पृष्ठ - 244
6. चारूचन्द्र भंडारी 'भूदान क्या और क्यों' पृष्ठ - 192 से 193 का सारांश

अधिक लोगों ने जीवनदान का संकल्प पूरा किया"[7] वास्तव में भूदान यज्ञ और सर्वोदय साधना के क्षेत्र में यह विचार 'निष्काय कर्मयोग' का जीवन्त उदाहरण है।

(च) बुद्धिदान

विनोबा जी ने बुद्धिदान के अनुष्ठान को समझाते हुये कहा "जिसके पास विद्या, बुद्धि, विचक्षणता है, वह अपना कुछ समय अपनी विद्या और बुद्धि की निःस्वार्थ सेवा में लगाये। विचारक गण आपस में विचार-विमर्श करेगें। कानूनपेशा लोग किसी प्रकार का पारिश्रमिक न लेकर शोषित और पीड़ित गरीबों का पक्ष ग्रहण करके मुकदमा लड़ेगें। चिकित्सक मुक्त में गरीबों की चिकित्सा करेगें। शिक्षक और छात्र अपने अवकाश के समय गरीबों को शिक्षा दान देगें।"[8] इस प्रकार विनोबा जी के बुद्धिदान यज्ञ का मूल उद्देश्य बुद्धि और ज्ञान का उपयोग करके सर्वोदय के आदर्श की सिद्धि प्राप्त करना है ।

7. पूर्वोक्त पृष्ठ - 197
8. चारुचन्द्र भण्डारी 'भूदान कब और क्यों पृष्ठ - 187

षष्ट अध्याय

विनोबाजी के दर्शन का समीक्षात्मक अध्ययन

(क) विनोबाजी के सर्वोदय आंदोलन की समीक्षा
(ख) विनोबाजी का योगदान
(ग) विनोबाजी के विचारों की प्रासंगिकता

(अ) विनोबा जी के सर्वोदय आन्दोलन की समीक्षा

गाँधी जी के तत्वज्ञान सर्वोदय की मूलप्रेरणा आध्यात्मिक है लेकिन इसके आयाम बहुविध है जिनमे नैतिक सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक सन्दर्भ समाविष्ट है। गांधी जी से विचार रुप में प्राप्त सर्वोदय के संवर्धन की प्रक्रिया विनोबा जी के अथक प्रयासों से लम्बे समय तक गतिशील रही इसी कारण एक समग्र व्यवस्था के प्रतीक सर्वोदय विचार को व्यवहारिक जीवन से सम्बद्ध करने का श्रेय विनोबा जी को है।

उन्होनें सर्वोदय विचार पद्धति के प्रयोग से राष्ट्र के नैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र के पुनर्निमाण का प्रयास किया। ज्ञान प्रक्रिया में उन्होनें सर्वोदय के विभिन्न आयामों को सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिये भूदान, ग्रामदान, संपत्तिदान एवं श्रमदान आदि कार्यक्रमों को आधार बनाया। जिसके माध्यम से इन्होनें प्रेम, करूणा, सहयोग, त्याग संयम, अस्तेय, अपरिग्रह सेवा, स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय आदि नैतिक मूल्यों को राष्ट्रीय जीवन में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया ताकि सर्वत्र व्यक्ति की गरिमा, सामाजिक समरसता, आर्थिक स्वतंत्रता एवं राजनीतिक स्वायत्तता स्थापित किया जा सके।

अतएव विनोबा जी के सर्वोदय आन्दोलन के समग्र मूल्यांकन के लिये आवश्यक है कि व्यवहारिक दृष्टि से इस आन्दोलन का निम्नांकित मूल बिन्दुओं के अर्न्तगत अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाये -

(क) विनोबा जी के सर्वोदय आन्दोलन की समाज के नैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक मूल्यों के परिर्वतन में भूमिका ।

(ख) विनोबा जी के नेतृत्व में सर्वोदय आन्दोलन के विभिन्न चरण, पद्धति एवं विकास की गति का अध्ययन।

इसी के माध्यम से ही उनके सर्वोदय आन्दोलन के व्यवहारिक क्रियान्वयन के विभिन्न पहलुओं का स्पष्ट एवं यथार्थ पूर्ण परीक्षण संभव हो सकेगा।

(क) विनोबा जी के सर्वोदय आन्दोलन की समाज के नैतिक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक मूल्यों परिर्वतन में भूमिका -

विनोबा जी के सर्वोदय आन्दोलन की आधार भूमि भूदान, ग्रामदान, संपत्तिदान, केवल लक्ष्याकों पर आधारित स्थूल कार्यक्रम नहीं थे। इन्होनें देश को नैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संदेश दिया। साथ ही इसका मूल उद्देश्य उपर्युक्त क्षेत्रों के परम्परागत रूढ़िवादी मूल्यों एवं ढ़ाचें में परिवर्तन करना था। अतः विनोबा जी के आन्दोलन की उपर्युक्त भूतिका के परीक्षण के लिये आवश्यक है कि क्षेत्रों में इस आन्दोलन के व्यवहारिक प्रयोगो के परिणामों का सम्यक अध्ययन किया जाये -

(१) सर्वोदय आन्दोलन - नैतिक एवं सामाजिक परिर्वतन

विनोबा जी नैतिक मूल्यों को व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की बुनियाद मानते है। वह एक ऐसे अहिंसक सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहते है जो प्रेम, सत्य, त्याग, करूणा, एवं अपरिग्रह पर आधारित हो। वह व्यक्ति के आन्तरिक विकास पर बल देते हुये यह कामना करते है कि प्रेम शान्ति एवं सहयोग का वातावरण विश्व में निर्मित हो। विनोबा जी ने अपने पूरे सर्वोदय आन्दोलन के दौरान इन नैतिक मूल्यों को सामाजिक जीवन की प्रेरणा बनाने हेतु अथक प्रयास किये। ताकि विषमता, स्वार्थपरता, असहयोग, संघर्ष, एवं अशान्ति का उच्छेद किया जा सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि न केवल उन्होनें लोगों का नैतिक पुनर्जागरण कर एक समरस, सरल एवं सहयोगमूलक समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया वरन् समाज की रूढ़िग्रस्त मान्यताओं के सन्दर्भ में लोगों की मूल्य चेतना को परिवर्तित करने में सफलता प्राप्त की। इस सन्दर्भ में जयप्रकाश नारायण का कथन उल्लेखनीय है।

The main feature of the evalution of society lies in development of human qualities Vinoba made a unique effort to inject spiritual value in collective life, through such programme as of gramdan we find as answer to this question in Vinoba's programmes as to how a new society can be built up in the basis of moral values. Vinobas movement is a grand experiment and effort for the reconstruction of man and to bring about a human revolution."(1)

1- Quoted from Kantishah's the quality of Vinoba leadership Gandhi marg Nov. Dec. 1983 P - 584

इसी तरह विनोबा जी के आन्दोलन से लोगों की मूल्य चेतना में भी परिर्वतन हुआ है। इस दृष्टि से जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक **टी० के० उम्मेन** द्वारा राजस्थान के चार ग्रामदानी और तीन गैर ग्रामदानी गाँव का तुलनात्मक अध्ययन में इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि मूल्य चेतना में परिर्वतन की दृष्टि से ग्रामदानी गाँवों में अवश्य परिर्वतन हुये है। उदाहरण के लिये ग्रामदानी गाँवों में सिर्फ 36.44 प्रतिशत उत्तरदाताओ ने जाति प्रथा को बनाये रखने की बात कही जबकि गैर ग्रामदानी गाँवो में 61.84 प्रतिशत उत्तरदाताओं की जाति प्रथा के पक्ष में राय थी। इसी तरह से जब ग्रामदानी गाँवो से पूछा गया कि क्या व्यक्ति का दर्जा जन्म से निर्धारित हो तो गैर ग्रामदानी गाँवों के 30.40 प्रतिशत उत्तरदाताओं की तुलना में ग्रामदानी गाँव सिर्फ 23.40 प्रतिशत ने स्वीकारात्मक उत्तर दिया। ग्रामदानी गाँवों के 47.32 प्रतिशत मतदाता व्यक्ति की उपलब्धियों के आधार उसका सामाजिक दर्जा निर्धारित करना चाहते थे ....।" [2]

अतः इससे स्पष्ट होता है कि समाज के परम्परागत मूल्यों में परिर्वतन की दृष्टि से विनोबा जी के आन्दोलन ने सफलता प्राप्त की।

(२) सर्वोदय आन्दोलन एवं आर्थिक परिर्वतन -

विनोबा साम्ययोगी समाज की स्थापना के लिये एक ऐसे आर्थिक जीवन की कल्पना करते है जो एकाधिकारवाद्, शोषण, अन्याय, एवं असमानता से मुक्त हो। समाज में उपरोक्त बुराइयों के लिये वह मनुष्य की धनकेन्द्रित मानसिकता को दोषी ठहराते है। इसी सन्दर्भ में कांचन मुक्त समाज की अवधारणा प्रस्तुत करते है। जहाँ व्यक्ति अपरिग्रह एवं अस्तेय द्वारा लोभ लिप्सा का त्याग कर आर्थिक क्षेत्र की बुराइयों का प्रतिकार करेगें। आर्थिक ढ़ाचें में बुनियादी परिर्वतन के लिये उन्होनें 'तेन व्यक्तेन भुंजीथाम' अर्थात उपनिषद में निहित First Sacrifice and then Enjoy की संस्कृति को प्रस्थापित करने के लिये अपने आन्दोलनों को आधार बनाया। परन्तु विनोबा जी द्वारा अनुपाणित साम्ययुक्त आर्थिक जीवन की संकल्पना उनके भूदान, ग्रामदान, संपत्तिदान आन्दोलन से निहित कमजोरियों से सफल सिद्ध न हो सके। यह आर्थिक परिर्वतन के बारे में प्रस्तुत निष्कर्षो से ज्ञात होता है।

उम्मेन के अनुसार "भूमि धारणा की दृष्टि से ग्रामदानी और गैर ग्रामदानी गाँवों की स्थिति

---

2. टी० के० उम्मेन केरिश्मा, स्टेबिलिटी एंड चेंज (थामसन प्रेस इण्डिया) लि० नई दिल्ली 1972 पृष्ठ - 162-163

से शायद ही कोई अंतर है। ग्रामदानी गाँवों में भी बहुत हद तक भूमि ऊँचे वर्गो और ऊँची जातियों के कब्जे में है अधिकतर ग्रामदानी गाँवों में भूमिहीनों को भूमि वितरण का कोई सुनियोजित प्रयास नहीं किया गया है और कई बार भूमि की झूठी अदला - बदली हुई है। भूदान के अनेक मामलों के पीछे आर्थिक या निजी लाभ उठाने की प्रेरणा रही है। साथ ही साथ जो भूमि दान में दी गयी है, वह या तो घटिया किस्म की या विवाद ग्रस्त है जिन ग्रामदानी गाँवों में भूमि बांटी भी गयी है, वहाँ भूमिवानों और ऊँची जातियो के लोग भी भूमिहीनों और निचली जातियों के लोगों के बराबर ही फायदे में रहे है।

दूसरे शब्दों में, भूमि का बंटबारा करते समय भूमिहीन होना कसौटी नहीं माना गया। जिन ग्रामदानी गाँवो को पास के गाँवों से भूमि दी गयी, उनमें उसका सारा लाभ शक्तिशाली समूह ने हड़प लिया। इसका अर्थ यह है कि उन गाँवों में सामूहिक स्वामित्व का विचार जड़ नहीं पकड़ पाया और भूमि पर व्यक्तिगत मलिकियत की धारणा बरकरार बनी रहीं। इतना ही नहीं, सर्वोदय कार्यकर्ताओं के कहने पर राजस्व अधिकारियों ने ग्रामदानी गाँव को पास के गाँवों की जो भूमि दी, उसमें भी जमीन के झगड़े बढ़े। इन गाँवों में भी कृषि सम्बन्धों के सामन्ती ढाँचें में कोई परिर्वतन नहीं हुआ। [3]

इसी प्रकार उ0 बिहार के मुसहरी प्रखण्ड में सघन सर्वोदय कार्य सम्पन्न होनें के बाद वस्तुस्थिति के सर्वेक्षण के लिये (A.N. Institute of Social studies, Patna) ने शोध समिति गठ्ति की, उसके सदस्य 'प्रधान एच प्रसाद' ने इस क्षेत्र के अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया।

"The Sarvodaya movement, has its impact on strengthening rather than weakening of semi - feudal bondage. अर्थात यहाँ अर्ध - सामंती बन्धन कमजोर होने के बजाय मजबूत हो गये है।" [4]

इन निष्कर्षो से यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक क्षेत्र के बुनियादी परिर्वतन में उनका आन्दोलन सफल नहीं हो सका। इसी प्रकार के संकेत सर्वोदय आन्दोलन की आर्थिक क्रांति के प्रतीक

---

3. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 98 - 99

4- Pradan. H. Prasad 'The economic perspective' in sarvodaya and development. Multidisciplinary perspective form Mushari ed. sachchidananda Patna A.N.s. institute of Social studies 1976 P - 96

भूदान आंदोलन में निहित निम्न नकारात्मक पहलुओं से मिलता है -

1. उड़ीसा के कोरापुट जिले के 100 ग्रामदानी गाँवों के अध्ययन के बाद पाया गया कि भूदान के पश्चात खेत छोटे हो गये है और छिटक गये है। 100 गाँवों में भूदान से पूर्व 1 से 7 एकड़ के बीच 1022 खेत थे। भूदान के पुर्नवितरण के बाद इनकी संख्या 1,932 हो गयी[5]।

   भूमि टुकड़ो में बँटने के कारण खेतों पर चलाये जाने वाले दुग्ध उत्पादन, मुर्गीपालन व पशुपालन आदि अन्य कार्यों में अवरोध लगा है।" [6]

2. भूदान में प्राप्त ज्यादातर भूमि गैर उपजाऊ एवं विवादित थी 17 नवम्बर 1952 में इन्द्रदीप सिन्हा (Secretary of Bihar provincial committee of C.P.I.) said " Communists have nothing to oppose in the Bhoodan movement ...." but added "we are opposed to Vinoba ji's taking land kisan in their acutal status .... we want that the deceid being practiced by the big land owner's through giving worthless or disputed land should not be sanctioned. Vinobaji should refuse to accept landgifts to those land owners who do not donate good land" [7] इस प्रकार का आरोप केवल साम्यवादियों द्वारा ही नहीं लगाया गया वरन् प्रसिद्ध गांधीवादी मीरा बेन ने भी असंतोष व्यक्त किया है। उन्होंने उत्तर प्रदेश में भूदान आन्दोलन के दौरान धनी व्यक्तियों द्वारा दान में दी गयी भूमि के स्वरूप को चार भागों में बाँटा -

(I)So saline that it was being used only for collection of the 'reh' by dhobies. (II) On the edge of and partly in stony river bed. (III) Tied up in a law suit and (IV) not even drinking water avialable wether return three to four miles" उन्होंने आगे कहा "Going on at this pace the solution of land problem on the Bhoodan lines would result in the landless and the semi-landless having the worst lands in the country distributed among them which the rich would hold on to best lands and the same line earn credit by having their names in the lists by land donars".[8] अतः इस आधार पर कहा जाता है इन आर्थिक विसंगतियों के कारण विनोबा जी का सर्वोदय आन्दोलन आर्थिक

---

5. Annasahib Sahasrabudhe Report on Gramdan in Koraput. 52
6. अदी0 एच0 डाक्टर 'सर्वोदय ए पोलिटीकल एण्ड एकानामिक स्टडी पृष्ठ - 202
7. Quoted form Sumanta Banergee's Vinoba and communist Movement Gandhi marg Nov. Dec. 1983 P - 560

क्षेत्र में सशक्त क्रान्ति का आधार प्रस्तुत करने में सफल नहीं हो सका। यदि नैतिक मूल्यों पर जोर दने के साथ इसने आर्थिक लक्ष्यों की दृष्टि से ठोस उपाय एवं कारगर नीतियां भी बनायी होती तो निःसंदेह तमाम आन्तरिक एवं बाह्य बाधाओं के बीच मिली सीमित सफलता ही गरीबों के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करने में सफल सिद्ध होती। एवं आर्थिक ढ़ाचें के परम्परागत स्वरूप में परिर्वतन निश्चित रूप से संभव होता। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं हो पाया।

(३) सर्वोदय आन्दोलन एवं राजनीतिक परिर्वतन –

सर्वोदय एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना करता है जिसमें व्यक्ति पर बाहरी नियंत्रणों की आवश्यकता न्यूनतम हो। आत्मनियंत्रण एवं आत्मअनुशासन को राजकीय शासन का विकल्प बनाना चाहता है। साथ ही स्वराज्य की सर्वोदयी कल्पना इस दृष्टि से अत्यन्त उन्नत है कि वह एक राष्ट्र या समुदाय की जनता पर से विदेशी आधिपत्य की समाप्ति ही नही चाहती अपितु व्यक्ति पर से सभी सत्ता नियंत्रणों का उन्मूलन कर एक पूर्ण आत्मनिर्भर, आत्मशासी, स्वायत मानव जीवन के आदर्श के रूप में प्रस्थापित करती है [9]। इस प्रतिभाव को विनोबा जी ने ग्राम स्वराज्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जो उनके सहभागी लोकतंत्र के विचार को भी दृढ़ता प्रदान करता है। सत्ता का व्यापक आधार, सामूहिक निर्णय प्रक्रिया एवं दण्डमुक्त शासनव्यवस्था इसके प्रयोजन है। विनोबा जी चिन्तक ही नहीं वरन् प्रयोगी भी थें। उन्होनें ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य का उद्‌घोष किया अर्थात ग्रामदानी गाँवों में ग्रामस्वराज्य की स्थापना के प्रयास किये। यद्यपि अधिकांश ग्रामदानी गाँवों में ग्रामस्वराज्य के निर्माण की पूरी प्रक्रिया

---

8. The Hindustan Times (New Delhi) 2 May - 1953
9. राकेश झा 'गांधीय चिंतन में सर्वोदय' पृष्ठ - 162

ही सम्पन्न नहीं हो पायी, लेकिन जिन ग्रामदानी गाँवों में इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया पूरी हुयी। वहाँ से सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के तथ्य अध्ययन करने पर ज्ञात हुये है। इस सन्दर्भ में उत्तरी बिहार के मुसहरी प्रखण्ड के 15 ग्रामदान गाँवों में ग्रामस्वराज्य के निर्माण और कार्यो की जाँच के लिये बनी शोध समिति के दो सदस्यों सचिन्दान्द और ए. अंकिचन ने ग्रामदानी गाँवों में ग्रामस्वराज्य की स्थापना को काफी सफल माना है। उन्होनें अध्ययन उपरान्त निष्कर्ष प्रस्तुत किया –

There are (Sic) evidences to show that Gramshabas disppite many social and economic hurdles, have considerably succeded in minimizing exploitation in productive relation's and in making on effective co-ordination of Various agrarian strata - landrich - land - poor and landless in social frame work. (10) यानि इन क्षेत्रों में ग्रामसभाओं ने सामाजिक एवं आर्थिक बुराइयों को दूर करने में काफी सफलता प्राप्त की एवं सामूहिक जीवन की संकल्पना को साकार करने में सफलता प्राप्त की।

दूसरी और उम्मेन महोदय ने राजस्थान के ग्रामदानी गाँवों में राजनीतिक परिर्वतन एवं सहभागी लोकतंत्र के विकास की प्रक्रिया के अध्ययन के बाद कहा "साझेदारी के लोकतंत्र की दृष्टि से भी ग्रामदानी गाँवों में निराशाजनक स्थिति रही है निर्णय प्रक्रिया में अल्पमत ही साझेदार रहा है। इससे पता चलता है कि वहाँ भी शक्ति का केन्द्रीकरण रहा है। उसके विकेन्द्रीकरण का लक्ष्य पूरा नहीं हो सका है। ग्रामसभाओं के निर्माण से भी इन गाँवो मं जनता की साझेदारी की भावना नहीं पनप सकी न राजनीति की जगह लोकनीति ले पायी (11)। स्थानीय नेतृत्व का अध्ययन करने पर पाया गया कि ग्रामदानी गाँवों में काम करने वाले सर्वोदयी नेताओं की पृष्ठभूमि और आन्दोलन में आने के उद्देश्यों में काफी अंतर था। इसलिये वे अपने अपने उद्देश्यों के लिये आन्दोलन का उपभोग करना चाहते थे। यद्यपि ग्रामदानी गाँवों का नेतृत्व नैतिक दृष्टि से गुण सम्पन्न रहा, परन्तु उसका दृष्टिकोण भी अधिक

---

10. Sachchidanand and S. Akinchan " The Sociological respetive in sarvodaya and develop ment Multidistiplinary respective form Musahari, ed. Sachchinanda Patna A.N.S. institute of soial study 1976 P - 53

11. टी० के० उम्मेन केरिश्मा स्टेबिलिटी एंड चेंज 127 – 128

पारम्परिक रहा। इसलिये वे परिर्वतन के मार्ग में बाधक रहे और यथास्थिति को बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील भी [12]।

इन मिश्रित तथ्यों से यहीं सिद्ध होता है कि विनोबा जी का आन्दोलन राजनैतिक क्षेत्र के आमूलचूल परिर्वतन से ज्यादा सफल नहीं रहा। क्योंकि ग्रामदानी गाँवों में विनोबा जी के स्वायत शासन का अभिक्रम सार्थक नहीं हो पाया। लेकिन हमें यही नहीं भूलना चाहिये कि ग्रामस्वराजय की सफलता हेतु विनोबा जी ने एक साथ कई चीजें सुनिश्चित की थीं जैसे – जनता की साझेदारी का व्यापक आधार, सामूहिक निर्णय प्रक्रिया, दलगत सत्तात्मक राजनीति की जगह लोकनीति एवं राज्य की दण्डशक्ति एवं हिंसाशक्ति से भिन्न लोकशक्ति की स्थापना इत्यादि। जब तक स्वायत शासन के लिये आवश्यक इन बुनियादी तत्वों का गाँवों में विकास नहीं हो पाया, इसीलिये ग्रामस्वराज्य की स्थापना का मार्ग अवरूद्ध ही रहा। साथ ही जिन ग्रामदानी गाँवो में ग्रामसभायें बनी, उनमें उच्चवर्गीय चरित्र के लोगों का ही बाहुल्य था जो गाँव का शोषण प्रक्रिया के अगुआ भी थे। अतः ग्रामस्वराज की मूलभावना को महसूस न करके केवल उसे स्थूल कार्यक्रम के रूप में अपनाया गया, इससे उसमें छिपी संभावनाओं को विस्तार ही नहीं पाया इस प्रकार वहाँ ग्रामस्वराज्य का स्वप्न भले ही साकार न हो पाया हो, लेकिन इससे ग्रामस्वराज्य का महत्व नहीं खत्म होता है।

इस प्रकार यद्यपि शोधात्मक अध्ययन एवं परीक्षणों से यह विदित होता है कि विनोबा जी का आन्दोलन आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों के परम्परागत ढ़ाचें में परिर्वतन की दृष्टि से ज्यादा सफल नहीं हुआ। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके कार्यक्रम स्वप्नदर्शी थे। वास्तव में उनके विचार और कार्यक्रमों में भारत के सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक पुनर्निमाण की अपार संभावनायें है। उनका आन्दोलन समाज के आमूलाग्र परिर्वतन में असफल रहा तो इसमें हमारे प्रयत्नों की असफलता है। दादा धर्माधिकारी का कथन है “सर्वोदय का आदर्श ऊँचा है और न वह अप्राप्य है और न असाध्य है वरन् प्रयत्न साध्य है”। साथ ही विनोबा जी संत स्वभाव के थे जो मानव की सकारात्मक अच्छाइयों में ही विश्वास करते थें जबकि मनुष्य में प्रेम, त्याग, दया एवं क्षमा के साथ स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष एवं लोभ की प्रवृत्तियां है। इसी कारण उनके आन्दोलन ने शुरूआत में नैतिक एवं सामाजिक मूल्य चेतन के परिवर्तन में काफी सफलता प्राप्त की थी वह भी लम्बे समय तक स्थायी नहीं रह सकी । जो आन्दोलन की पूर्ण व्यवहारिक सफलता में बाधक सिद्व हुयी है। दूसरी ओर पूर्ण राजकीय समर्थन, भूदान में प्राप्त की जाने वाली भूमि के सन्दर्भ में दूरदर्शी नीतियों, ईमानदार कार्यकर्ता एवं सचरित्र जनता के अभाव के कारण भी उनका आन्दोलन पूर्ण रूप से सफल सिद्व नहीं हो सका।

---

12. पूर्वोक्त पृष्ठ - 151 - 152

(ख) विनोबा जी के नेतृत्व में सर्वोदय आन्दोलन के विभिन्न चरण, पद्धति एवं विकास का स्वरूप -

विनोबा जी के सर्वोदय आन्दोलन की आधारभूमि भूदान, ग्रामदान संपत्तिदान एवं श्रमदान आदि रचनात्मक कार्यक्रमों के विभिन्न आयामों का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दृष्टि से परीक्षण किया है। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक मूल्यों एवं ढाचें में परिर्वतन की दृष्टि से भी इसकी भूमिका का अध्ययन कर चुके है। अब यह अपेक्षित हो जाता है कि विनोबा जी के नेतृत्व में सर्वोदय आन्दोलन के विभिन्न चरण संचालन पद्धति एवं विकास के स्वरूप का विश्लेषण किया जाये क्योंकि तभी गांधी जी द्वारा अनुप्राणित सर्वोदय विचार को उनके बाद विनोबा जी द्वारा आन्दोलन के रूप में प्रतिष्ठित करने की समग्र प्रक्रिया का मूल्यांकन संभव होगा। इसी के फलस्वरूप सत्तर के दशक के चर्चित एवं विशिष्ट सन्दर्भ बिहार आन्दोलन - विनोबा एवं जय प्रकाश जी के मध्य मतभेद के कारणों एवं (ख) आपातकाल एवं अनुशासन पर्व के सन्दर्भ में विनोबा जी के मन्तव्य और भूमिका का यथार्थपूर्ण अध्ययन एवं विश्लेषण भी हो सकेगा। क्योंकि इन्हीं बिन्दुओं से सर्वोदय आन्दोलन में निर्णायक दौर आया था।

विनोबा जी के नेतृत्व में सर्वोदय आन्दोलन के प्रथम चरण (1950 के दशक) में इस आन्दोलन ने सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के अहिंसक समाधान में उत्कृष्ट सफलता प्राप्त की। और उसके नेतृत्व में सभी सर्वोदयी नेताओं एवं कार्यकर्ताओं की अटूट आस्था बनी रही। इसकी सफलता से प्रेरित समाजवाद, के प्रखर पुरूस्कर्ता जयप्रकाश जी ने 1954 में बोधगया सम्मेलन में अपना जीवनदान दे दिया। वास्तव में विनोबा जी के आन्दोलन की यह मूल्यवान सिद्धि थी। जय प्रकाश कई बातों के प्रतीक थे। मार्क्सवाद का अध्ययन उनका बहुत गहरा था। समाजवादी नेता, अदम्य, तारूण्य और प्रचण्ड पराक्रमशीलता के प्रतिनिधि रूप थे। पक्षगत राजनीति के पहली पंक्ति के नेता थे। ऐसे व्यक्ति का ग्रामदान भूदान आन्दोलन के लिये सर्मपण का अर्थ, मार्क्सवाद का तारूण्य की पराक्रमशीलता का समाजवाद का और परम्परागत राजनीति का गांधी - मार्ग के लिये सर्मपण था [13] इससे उस समय निः संदेह विनोबा जी के अहिंसक आन्दोलन की समग्रता परिलक्षित होती है।

दूसरा चरण (1960 का दशक) का है। इसमें विनोबा जी का आन्दोलन अपनी शुरूआती सफलता को बरकरार नहीं रख पाया। शनैः-शनैः कमजोर पड़ता गया। और संगठ्न के अन्दर एवं बाहर

---

13. कांतिशाह - विनोबा जीवन और कार्य पृष्ठ - 74

विनोबा जी की सर्वोदय आन्दोलन की पद्धति एवं नेतृत्व की कुशलता पर प्रश्नचिन्ह लगे। परन्तु यह कोई नई बात नहीं थी। **डा0 विश्वनाथ टंडन के अनुसार –**

" It is not unnatural for differences in approach to crop up in any movement when it does not appear to achieve its objective. They also get intensified if some alternative programme and leader is in sight. It had happened in the twenties and thirties in the Gandhi era, If it did not assume serious dimension then. The cause lay in the twenties in the compromising attitude of Gandhi, to wards the swarajists and in the thirties it was a feeling in an overwhelming majority of workers and leaders, that there was no option to a nonviolent movement and for that the leader-ship of Gandhi was indispensable. [14]

विनोबा जी ने लोकतंत्र में सत्याग्रह की प्रतिकारात्मक प्रक्रिया की जगह सत्याग्रह की रचनात्मक या भावात्मक अंश पर ही विशेष बल दिया। उन्होनें गांधी जी के प्रतिकारात्मक सत्याग्रह को निषेधात्मक माना और कहा वह दबावपूर्ण थी इससे उनके सत्याग्रह में न्यूनता रह जाती है। परन्तु आज लोकतंत्र की स्थापना के बाद जब हम पर किसी प्रकार का दबाव नही है, हमें सत्याग्रह की विधायक एवं रचनात्मक प्रक्रिया द्वारा समाज रचना के कार्य करने चाहिये। विनोबा जी ने अपने विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों में सत्याग्रह की इसी प्रक्रिया पर ज्यादा बल दिया उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता के उपरान्त इन्दौर में अशोभनीय सिनेमा पोस्टर्स एवं मद्रास में हिन्दी विरोधी वाद – विवाद और गोबध – निषेध सन्दर्भ में गांधी जी ने संघर्षात्मक सत्याग्रह प्रक्रिया का सीमित प्रयोग किया था परन्तु उनकी दृढ़ आस्था सत्याग्रह के भावात्मक स्वरूप पर ही केन्द्रित रही। उनके अनुसार इस प्रकार के सत्याग्रह का मुख्य उद्देश्य प्रतिपक्षी के सम्यक चिंतन में अहिंसक सहयोग करना है (Non - Violent Assistance) इसकी प्रक्रिया सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम होती है।

विनोबा जी की इस सत्याग्रह की पद्धति को अहिंसक समाज रचना के लिये समस्याओं के सन्दर्भ में असफल मान लिया गया और सर्वोदय आन्दोलन के कुछ नेताओं एंव कार्यकर्ताओं ने गांधी जी के अहिंसात्मक असहयोग (Non- violent resistance) अथवा सत्याग्रह की आन्दोलनात्मक या प्रतिकारात्मक प्रक्रिया को ही एकमात्र विकल्प माना। क्योंकि माना गया "विनोबा जी नये ढंग के सत्याग्रह में

---

14. Dr. Vishwanth Tandon 'Acharya Vinoba Bhave' P - 134

अहिंसावादी का कार्य केवल न्याय के क्षेत्र का विस्तार है, अन्याय की शक्तियों के प्रति तटस्थ और उदासीन रहकर .... जबकि गांधी का सत्याग्रह दोहरा अस्त्र था। वह नये सामजिक मूल्यों का सर्जक भी था और पुराने जड़ मूल्यों का विनाशक भी। सत्याग्रह की इस धारणा में सामाजिक तनाव, संघर्ष टकराव की अस्वीकृति नहीं थी और न किसी प्रकार पलायन ही।" [15] इसी दौरान बिहार में तूफानी ग्रामदान कार्यक्रम के दौरान ग्रामदान पुष्टि (Consolidation of Gramdan's) की धीमी गति एवं निरर्थकता से सर्वोदय आन्दोलन के बड़े नेताओं में अंसतोष भर दिया। और आन्दोलन की पद्धति पर पुनर्विचार की यह माँग उठने लगी कि विनोबा जी नये तरीकों से इसे प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयास करे। और पूरे मन्थन में दो चीजें केन्द्रित थी प्रथम वर्तमान आन्दोलन ने गांधी जी के अहिंसात्मक असहयोग पर आधारित सत्याग्रह प्रक्रिया का स्थान एवं दूसरे आन्दोलन का भविष्य में राजनीति से सम्बन्ध। जो रूढ़िवादी (Non - Changer) थें विनोबा के साथ रहे और जो परिर्वतन चाहते थे वह जयप्रकाश के साथ हो गये। 1973 में आन्दोलन का तीसरा चरण विनोबा के सामने ही शुरू हुआ परन्तु उनसे स्वतंत्र रूप से जय प्रकाश जी के नेतृत्व में। 1970 में जय प्रकाश बिहार के मुसहरी प्रखण्ड में ग्रामदान, ग्राम स्वराज्य आन्दोलन के कार्यो के निरीक्षण के लिये पहुँचे। मुसहरी इलाका के चुनाव के पीछे उनका दूसरा कारण भी था वहाँ हिंसा और अशांति का जो वातावरण बना था उसे भी समझना चाहते थे। इस प्रखण्ड में एक वर्ष रहकर उन्होनें महसूस किया कि विनोबा जी आन्दोलन की पद्धति अब निष्प्रभावी हो गयी है। उन्होनें मुसहरी प्रवास के दौरान, अपना समाज शास्त्रीय अध्ययन 'आमने - सामने' नामक निबन्ध में प्रस्तुत किया। जिसमें उन्होनें लिखा – [16]

" The emergence of the Naxalite danger .... appeared to me to be god send. I had been feeling quite some time past that our movement was losing its fire and we, arts worker were becoming. Stale and flabby of spirit" इसी निबन्ध में होने लिखा " If democracy is found wanting and Violence offers no solution, what then is way out ? to find that way we will have to go back to Gandhiji "

वास्तव में यही सर्वोदय आन्दोलन के सन्दर्भ में निर्णायक मोड़ था। यही से सर्वोदय

---

15. गणेशमंत्री 'गांधी के बाद गांधीवाद' पृष्ठ – 122 – 123

16. Vasant Nargolkar 'Gandhian Movement after Gandhi jyoti Abril - 1989 P - 25

आन्दोलन आध्यात्मिक एवं राजनीति खेमों में बँट गया। यहीं से सर्वोदय आन्दोलन के राजनीतिकरण की प्रक्रिया शुरू होती है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि विनोबा मूलतः आध्यात्मिक प्रवृत्ति के सन्त थे और जय प्रकाश जी मूलतः राजनीतिज्ञ। सर्वोदय आन्दोलन में जुड़ने के बाद उन्होनें शक्ति की राजनीति का परित्याग किया था राजनीति का नही। उन्होनें समय - समय पर सरकार की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक मसलों पर आलोचना की थी।

सत्तर के दशक में घरेलू समस्याओं बढ़ती हुई बेरोजगारी मुद्रास्फीति की बढ़ती हुई दर, हरित क्रान्ति की असफलता आदि के लिये उन्होनें श्रीमती इन्दिरा गांधी को जिम्मेदार ठहराया। इन परिस्थितिओं में पहले गुजरात और फिर बिहार में विद्यार्थियों का आन्दोलन शुरू हुआ। बिहार आन्दोलन का नेतृत्व जय प्रकाश जी ने संभाला और समग्र क्रान्ति का नारा दिया।

विनोबा जी ने बिहार आन्दोलन के बारे में कहा है कि "भ्रष्टाचार, मंहगाई, बेकारी और शिक्षा में परिर्वतन इन चारों बातों को लेकर बिहार आन्दोलन शुरू हुआ है। ये चारों बाते चिन्तन के योग्य है आन्दोलन के नहीं .... मंहगाई का सवाल 'मनी एकानमी' का सवाल है इसके लिये जहॉं तक हो सके बाजार से छुट्कारा पाने की कोशिश करनी चाहिये यह मानकर बैठने से भी काम नहीं चलेगा की मंहगाई के मामले में सरकार ही जिम्मेदार है।" (17) बिहार आन्दोलन को लेकर सर्वोदय परिवार में हलचल मच गयी। वर्धा में जुलाई 1974 में, सर्वसेवा संघ का अधिवेशन हुआ। बिहार आन्दोलन के पक्ष या विपक्ष में सर्वसम्मत निर्णय नहीं बन पाया। विनोबा जी समन्वायचारी थे उन्होनें संघ में समन्वयात्मक वृति अपनाने पर बल दिया और कहा "हृदय एक है पर दिमाग अनेक है, इसलिये हर एक को अपने अपने विचार के अनुसार काम करने की पूरी - पूरी स्वतंत्रता रखनी चाहिये। अहिंसा, सत्य और संयम, इन तीनों मर्यादाओं की रक्षा करते हुये हर एक अपनी रूचि के अनुसार काम करे .... दो विचारधारायें है। एक है गंगा की, दूसरी ब्रहमपुत्र की। दोनों अन्त में एक और समुद्र में मिलती है।" (18)

विनोबा जी ने आन्दोलन के राजनीतिकरण की प्रक्रिया का विरोध किया। और आचार्य कृपलानी द्वारा सर्वोदय आन्दोलन के अराजनैतिक दृष्टिकोण की आलोचना किये जाने पर कहा -

---

17. कांतिशाह 'विनोबा और जीवन का कार्य' पृष्ठ - 157

18. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 159

" Why this Common sense did not dawn on me ? Because I have convinced that there is only one royal road to solution of many problems It is solution of the land problems this was neglected by those follower of Gandhi who went over to politics, leaving the people with centurees old problems" (19)

बिहार आन्दोलन के सन्दर्भ में उन्होनें जयप्रकाश जी से कहा था "आपकी संघर्ष की जो कल्पना है वह मुझे पसन्द है। अपनी समग्र क्रान्ति की कल्पना को पूर्ण करने हेतु संघर्ष जारी रखिये। देशहित में अभी आपको राजसत्ता का विरोध का संघर्ष छोडना होगा। (20) इसी तरह का संकेत उन्होनें इस आन्दोलन के शुरू होने के पूर्व ही सर्वोदय के वरिष्ठ नेता "सिद्धराज ढड्ढा" से बातचीत में दिया था। "मै जानता हूँ इस समय लोगों में अंसतोष हैं। देश कई समस्याओं का सामना कर रहा है, परिस्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ रही है .... इन परिस्थितियों में सरकार के विरुद्ध अहिंसात्मक संघर्ष नहीं करना चाहिये। इन परिस्थितियों में रचनात्मक कार्यो में अपने को जोड़कर आगे बढ़ना चाहिये। इसमें लोगों में अपने समस्याओं के समाधान करने की शक्ति जागृत होगी।" (21)

जय प्रकाश जी ने बिहार आन्दोलन के दौरान जो सार्वजनिक मुद्दे उठायें थें उनके पक्ष में देशव्यापी जनमत का झुकाव शुरू हो गया था। दूसरे, केन्द्र सरकार के हाथों बिहार सरकार कठपुतली बनकर रह गयी थी फलस्वरूप जय प्रकाश जी का केन्द्र सरकार से टकराहट शुरू हो गयी थी। अतः बिहार आन्दोलन का प्रयोग शुरूआत में सीमित था वह बाद में सारे देश में फैलने लगा था और इसी पर आगे की राजनीति की दिशा तय होने लगी थी। जय प्रकाश जी ने 21 सितम्बर 1974 को 'Everyman's weekly' में लिखा - " The Bihar struggle is no longer a state issue. It has acquired an all India importance and the country's fate has come to be bound up with its sucess or failure" (22)

विनोबा जी नहीं चाहते थे कि इस प्रकार किसी देशव्यापी आन्दोलन से केन्द्रीय सत्ता कमजोर हो क्योंकि उनका तर्क था कि - देश अन्दर से कमजोर हो रहा है। हमें उसे जोड़ने का कार्य करना चाहिये। वरना देश की एकता को खतरा हो सकता है। हमारा देश तानाशाही हुकूमतों से घिरा हुआ है।

---

19. Dr. Vishwanath tandon 'Acharaya Vinoba Bhave' P - 140
20. विनोबा साहित्य खण्ड - 15 आरोहण - पृष्ठ - 281
21. Dr.Viswanath tandon Acharaya Vinoba Bhave P - 162
22. पूर्वोक्त - पृष्ठ - 144

ऐसी हालत में देश की केन्द्रीय सरकार का कमजोर होना खतरनाक है .... इन्दिरा जी की विदेशनीति चतुराई भरी है। आन्तरिक मामले में उनके कारण कुछ गम्भीर सवाल खड़े होते है। फिर भी उन्हें बातचीत के जरिये हल करने की कोशिश की जाये। (23)

दूसरे तरफ जय प्रकाश जी का कहना था कि विदेशनीति के बुनियाद पर सरकार को जनता का हार्दिक सहयोग नहीं मिल सकता राज्यशक्ति के लिये लोकशक्ति का समर्थन आवश्यक है। यदि राज्यकर्ताओं को शान्तिमय उपायों द्वारा सही रास्ते पर लाने की शक्ति नागरिकों में नहीं रहेगी तो नागरिक जीवन में कोई सत्व नहीं रह जायेगा .... आज की परिस्थिति में लोकशक्ति को जगाने के लिये संघर्ष अनिवार्य हो गया है। (24)

अतः परिस्थितयों के मूल्यांकन में एवं उनकी पद्धति में दोनों महान आत्माओं के बीच भारी अन्तर था। एक अहिंसात्मक सहयोग की प्रक्रिया द्वारा प्रतिपक्षी को चिंतन में सहयोग देकर रचनात्मक एवं शान्तिपूर्ण कार्यक्रमों से क्रमिक सुधार का समर्थक था, तो दूसरा अहिंसात्मक संघर्ष द्वारा समस्याओं का त्वरित समाधान चाहता था। परन्तु इनमें कोई सन्देह नहीं कि राष्ट्रकल्याण एवं जन विकास की भावना दोनों के लिये सर्वश्रेष्ठ थी।

काल के इसी प्रवाह में इन्दिरा जी ने चुनौती की थी कि बिहार की जनता क्या चाहती है इसका निर्णय चुनाव में होगा, और जयप्रकाशजी ने चुनौती को स्वीकार कर लिया। और इसी मुद्दे में विनोबा जी को अन्दर से परेशान कर दिया, क्योंकि अब तक उन्होनें प्रत्यक्ष रूप से जे० पी० के आन्दोलन का न समर्थन किया था न ही विरोध। जयप्रकाशजी द्वारा आन्दोलनों को चुनाव के संघर्ष में उतारने के निर्णय से उन्हें लगा कि अब उनका आन्दोलन लोकनीति की पटरी से उतरकर राजनीति की पटरी पर चढ़ गया है।

इसी सन्दर्भ में विनोबा जी ने दिसम्बर 1974 में सर्वगसेवासंघ के नेताओं से कहा " हम डेमोक्रेसी के नाम पर चलने वाली डेमेनोक्रेसी को मानते नहीं है। हमारी आस्था तो 'स्वराज्य शास्त्र' में जिसे सर्वायसन पद्धति कहा है उसमें है, आप लोग जनता मोर्चे की बात करते हैं परन्तु वह मोर्चा सारी जनता का बनने वाला नहीं है। जब चुनाव आयेगा तब आमने – सामने दो मोर्चे खड़े होगें एक ओर

23. कांतिशाह – 'विनोबा जीवन और कार्य' पृष्ठ – 161 – 162

24. पूर्वोक्त – 162

सत्ताधारी पक्ष दूसरी और उनका विरोधी उसका विरोधपक्ष, दोनों यही दावा करेगें कि जनता हमारे साथ है, ऐसी पद्धति में हमें कोई विश्वास नहीं है।" (25) और उनका विरोध इतना जबरदस्त था कि उन्होनें कहा कि यदि सर्वसेवासंघ के लोग चुनावों में सम्मिलित होगां तो वह संघ से नाता तोड़ लेगें। और इन्हीं परिस्थितियों के बीच 25 दिसम्बर 1974 से एक वर्ष के लिये मौन धारण कर लिया।

अनुशासन पर्व -

जुलाई 1975 से देश में आपातकाल लागू कर दिया गया। जय प्रकाश सहित अन्य लोग जेल भेजे गये। उसी दौरान कॉंग्रेस नेता बसन्तसाठे उनसे मिलने गये। विनोबा जी ने लिखित वक्तत्य में 'अनुशासन पर्व' का उल्लेख किया। जिसका इन्दिरा सरकार ने काफी दुरूपयोग किया। इस बात का प्रचार किया कि विनोबा जी ने आपातकाल के रूप में उनकी वैधानिक तानाशाही को आर्शीर्वाद दिया है। जय प्रकाश जी के आन्दोलन से उनकी विमुखता ने पहले ही उनके बारे में लोगों में गलतफहमी एवं भ्रम की स्थिति उत्पन्न कर दी थी इस नवीन दुष्प्रचार के कारण शासनमुक्ति का समर्थन करने वाले इस संत को सरकारी संत की उपाधि दी गयी। उनके बारे में लोकापवाद खड़ा हुआ।

मौन तोड़ने के बाद, विनोबा जी ने सार्वजनिक रूप से 25 दिसम्बर 1975 को अनुशासन पर्व को स्पष्ट करते हुये कहा कि "आचार्यो का होता है अनुशासन, सत्ताधारियों का शासन होता है। शासन और अनुशासन के बीच जो फर्क है, उन्हें उसे हमे अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये यदि दुनिया शासन के मार्गदर्शन में रहेगी तो दुनिया में कभी समाधान नहीं होगा। लेकिन अगर इसके बदले, दुनिया आचार्यो के अनुशासन में चलेगी तो दुनिया में शान्ति रहेगी। आचार्य कैसे होते है ? मैने गुरूनानक की भाषा में आचार्यो का वर्णन करते हुये कि वे निर्भय निर्वैर और निष्पक्ष होगें, आचार्य कभी अशान्त नही होते।" (26)

विनोबा जी ने कहा कि भारत भिन्न, भाषा, जातियों एवं संस्कृति का देश है यदि आचार्यो का अनुशासन सभी लोगों को मिलता रहे तो निः सन्देह शान्तिपूर्ण समाज का निर्माण हो सकेगा। इस अनुशासन का विरोध अगर सत्ता करेगी तो सत्याग्रह करना पड़ेगा। परन्तु उन्हें विश्वास है कि यहां का शासन ऐसा कोई काम नहीं करेगा, जो आचार्यो के अनुशासन के विरूद्ध होगा इसलिये सत्याग्रह करना

---

25. जाफ्री आस्टर गार्ड - 'विनोबा शासन मुक्ति का अध्यु' गांधीमार्ग अप्रैल - 1984 पृष्ठ - 11
26. कांतिशाह 'विनोबा जीवन और कार्य' पृष्ठ - 168

पड़ेगा। परन्तु उन्हें विश्वास है कि यहाँ का शासन ऐसा कोई काम नहीं करेगा, जो आचार्यो के अनुशासन के विरुद्ध होगा, इसलिये सत्याग्रह करने का मौका भारत में नहीं आयेगा।

इस तरह विनोबा जी ने बिल्कुल स्पष्ट कर दिया था कि आपात काल का अर्थ अनुशासन पर्व है ही नहीं। लेकिन सरकारी सेन्सरशिप के कारण उनकी बात जनता तक अच्छी तरह से नहीं पहुँच पायी।

देश में उत्पन्न गंभीर समस्या के समाधान हेतु उन्होनें जनवरी 1976 में पवनार में आचार्य सम्मेलन आयोजित किया। इसमें देश भर से कुलपतियो, वरिष्ठ प्रोफेसर, जाने माने न्यायविद और विज्ञानों को आमंत्रित किया गया था, इसमें आपातकाल के सम्बन्ध में निर्भय और निष्पक्ष चर्चा हुई । आपातकाल समय में ही उन्होनें 11 सितम्बर 1976 की गौवध निषेध हेतु उपवास शुरू करने की घोषणा की थी।

लेकिन विगत चार – पाँच वर्षो में देश में जो मन्थन चला, और विनोबा जी के विषय में एक सन्देह का वातावरण बना, उनके लिये विनोबा जी के व्यवहार और बरताव, की कुछ न्यूनताएं भी प्रमुख कारण थी।

1. बिहार आन्दोलन के दौरान सरकार की तरफ से अन्याय एवं अत्याचार की घट्नायें बढ़ती गयी। सत्ता का दुरूपयोग हुआ। उनका आन्दोलन के विषय में चाहे जयप्रकाश जी से मतभेद क्यों न हो लेकिन सरकार के इन कृत्यों का विरोध विनोबा जी की ओर से होना चाहिये था। लेकिन विनोबा जी ने मौन धारण किये रखा।
2. देखा जाये तो सम्पूर्ण क्रान्ति विनोबा के चिंतन से निसृत हुआ विचार था। भूदान आन्दोलन के समय उन्होनें जो विचार एवं आदर्श निश्चित किये थे वह निः संदेह 'सम्पूर्ण क्रान्ति' के विचार का निर्माण करते है। लेकिन इसके बावजूद जयप्रकाश जी के 'सम्पूर्ण क्रान्ति' आन्दोलन से उनकी विमुखता रही, इसने जनसामान्य में रोष एवं क्षोभ को उत्पन्न कर दिया था।
3. आपातकाल के समय भिन्न – भिन्न परिस्थितियों में लोगों की आशा थी कि नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति के प्रेरणास्रोत विनोबा जी देश का मार्गदर्शन करेगें। कम से कम सरकार ज्यादतियों के सन्दर्भ में प्रतिक्रिया करेगें। लेकिन उन्होनें ऐसा कुछ नहीं किया।

अतः इससे देश में प्रेम, करूणा और विश्वास के प्रतीक विनोबा जी के लिये लोगों में जो श्रद्धा थी उसमें आँच लगना स्वाभाविक था। यदि वह 1970 के बाद के वर्षो में सत्ता–शक्ति के अतिशय बढ़ते हुये केन्द्रीयकरण, लोकतंत्र की गरिमा के हनन के प्रयासों, नागरिक स्वतंत्रताओं के अतिक्रमण एवं भ्रष्टाचार के दौर में सर्वोदय आन्दोलन का न्वोन्मेष करते तो निः संदेह यह आन्दोलन एकजुट होकर राष्ट्र

की समस्याओं का सशक्त ढंग से समाधान करने के साथ मानवसेवा की अनंतयात्रा पर अनवरत आगे बढ़ता जाता। और इसी से उनके अहिंसक समरस समाज के निर्माण का उनका हार्दिक विचार भी यथार्थ में परिपूर्ण होता।

(ब) विनोबा जी का योगदान

विनोबा जी समन्वयाचार्य थे। एक समाज सुधारक, शिक्षक, दार्शनिक, कर्मयोगी, अर्थशास्त्री, एवं राजनीतिक चिंतक के रूप में उनकी भूमिका अद्वितीय है। इन सभी रूपों में उनके जीवन का एक ही लक्ष्य था कि वह मानवमात्र को अज्ञान, अभाव, अन्याय, शोषण, भूखमरी, बेरोजगारी, हिंसा, आतंकवाद, अनैतिकता, प्रतिस्पर्द्धा आदि से मुक्त कराना चाहते थे। सदियों से मनुष्य के चित्त में बैठी हुई इन दुष्प्रवृत्तियों को समाप्त करने हेतु उन्होनें समाज में अहिंसा की शक्ति का विस्तार किया।

गांधी जी के प्रिय शिष्य विनोबा क्रान्ति के ऐसे शलाका पुरुष थे जिन्होनें अहिंसा के समाजीकरण से मानव की समस्त समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रस्तुत किया गांधी जी के निधन के बाद जब उनके देश में हिंसा को सामाजिक जीवन की धुरी बनाने की तमाम संभावनायें प्रबल हो रही थी, तब कम्यूनिस्ट प्रभावित क्षेत्र तेलिंगाना में अहिंसा की शक्ति की प्रस्थापना से यह सिद्ध कर दिया कि अहिंसा में मनुष्य को ऊपर उठाने की अदम्य शक्ति है। भूदान – ग्रामदान, शान्तिसेना, आचार्यकुल, तीसरी शक्ति, लोकनीति, चंबल के डाकुओं का हृदय परिवर्तन, सर्वोदय पात्र एवं जयजगत उनकी अहिसा के भावात्मक एवं रचनात्मक प्रयोग थे।

उन्होनें केन्द्रित आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था, उपभोक्तावादी औद्योगिक संस्कृति एवं शोषणपूर्ण सामाजिक सम्बन्धों को समाज से जड़ से उखाड़ फेंकने के लिये सत्य, अहिंसा, करूणा, अपरिग्रह, सहयोग एवं समन्वय आदि नैतिक मूल्यों को मानव जीवन की प्रेरक शक्ति बनाया। समाजके रूढ़िवादी मूल्यों के आमूलाग्र परिर्वतन में अहिसात्मक शक्ति को प्रमुख शस्त्र बनाया। अतः यह निःसंदेह सत्य है कि भविष्य में अहिंसात्मक क्रान्ति की किसी संभावना पर अगर विचार किया जायेगा तो निश्चित रूप से विनोबा जी की अहिंसात्मक दृष्टि उन्हें अवश्य पार्थेय प्रदान करेगी।

गांधी जी के अध्यात्मिक उत्तराधिकारी विनोबा जी ने अपने समग्र प्रयासों से गांधी जी के दर्शन को उनके निधन के पश्चात वैचारिक और व्यवहारिक दृष्टि से समाज में प्रतिष्ठित किया। यह बड़ी

दुर्भाग्यपूर्ण एवं आश्चर्यजनक बात हैं कि स्वराज्य आन्दोलन में गांधी जी के साथ रहें उनके राजनीतिक साथियों ने ही उनके अहिंसक समाज रचना के निर्माण के कार्य से मुँह मोड़ लिया था। विनोबा जी ने स्वतंत्र भारत में गांधी जी की विचारधारा को जीवित रखने के लिये न केवल उनके सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, सत्याग्रह, खादी विचार, विकेन्द्रित, आर्थिक व्यवस्था, ग्रामस्वराज्य, शान्तिसेना आदि की पूर्ण रूप से सैद्वान्तिक व्याख्या की वरन् समय और परिस्थितिनुकूल उसकी प्रयोगधर्मिता को भी प्रस्तुत किया। इनके उत्कृष्ट प्रयासों से अहिंसक समाज के निर्माण की गांधीवादी तकनीक का निरन्तर परिष्कार हुआ अर्थात मानव समुदाय के समक्ष सत्य, प्रेम और करूणा की शक्ति की प्रतिष्ठा स्थापित हुई।

गांधी जी ने सत्याग्रह शक्ति का प्रयोग समाज की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र के पुनर्निमाण में किया था। विनोबा जी उनके नेतृत्व में न केवल झंडा सत्याग्रह, वाइकोम सत्याग्रह एवं 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह (प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही) मे भाग लिया वरन् गांधी जी के सत्याग्रह के रचनात्मक पक्ष के विस्तार के लिये स्वतंत्र भारत में रचनात्मक कार्यक्रमों, हरिजन सेवा, कुष्ठसेवा, आदिसेवा, ग्रामसेवा एवं महिला उद्धार को अपना महत्वपूर्ण लक्ष्य बनाया। स्वतंत्र भारत में उन्होनें सत्याग्रह के नवीन प्रयोग हेतु इसकी संघर्षात्मक प्रक्रिया के स्थान पर इसके भावात्मक एवं रचनात्मक स्वरूप के विस्तार पर ही ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया । सत्याग्रह की प्रक्रिया को सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम बनाया। जिससे प्रतिपक्षी को सम्यक चिंतन में सहयोग मिले। वह लोकतंत्र की परिस्थितियों में सत्याग्रह को प्रेम प्रत्कर्ष का प्रतीक मानते थे। हालांकि इसके प्रयोग की सफलता पर विचार भिन्न हो सकते है। परन्तु सत्याग्रह में नवीन शक्ति प्रयुक्त करने की दृष्टि से निश्चित रूप से यह उनकी रचनात्मक एवं गतिशील व्याख्या थी।

गांधी जी के निधन के बाद विनोबा जी के सामने राष्ट्र के पुनर्निमाण की चुनौती थी। राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद देश के सामने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रमुख लक्ष्य था। देश में अत्यन्त लोकप्रिय नेताओं की सरकार का निर्माण, जनता की बढ़ती आँकाक्षायें, विभाजन का संकट, पाकिस्तान का शत्रुतापूर्ण रूख, एवं अंग्रेजी से विरासत में प्राप्त औपनिवेशिक व्यवस्था और नौकरशाही का फौलादी ढाचाँ इत्यादि परिस्थितियां थी। विनोबा ने यह अनुभव किया कि नवीन राजनैतिक व्यवस्था का निर्माण उन्हीं आधारों पर किया गया है जिन पर विदेशी राज्य खड़ा था। लोकतंत्र का आधार सैनिक शक्ति को माना जा रहा था अतएव विनोबा जी ने नवीनमार्ग चुना वह था हिंसाशक्ति एवं दण्डशक्ति से भिन्न लोकशक्ति के निर्माण करा था।

विनोबा जी का दृढ़ विश्वास था कि अहिंसक समाज की रचना एवं सर्वोदय की प्रस्थापना कार्य लोकशक्ति के उदय से होगा। वास्तव में अपने रचनात्मक कार्यक्रमों एवं पदयात्राओं के माध्यम से लोकशक्ति के उन्नयन में उन्होनें महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होनें लोगों को समझाया कि प्रश्नों का हल हमारे स्वयं के हाथों में है। स्वराज्य के बाद सारे कार्यो के लिये सरकार पर अवलम्बित होने से हमारा स्वतंत्र विकास बाधित हुआ है अतः ग्राम व समाज के पुनर्निमाण एवं स्वायत्त विकास के लिये लोकशक्ति या तीसरी शक्ति का उनका विचार निश्चित रूप से अभिनव क्रान्ति का मार्ग है।

विनोबा जी समाज – वैज्ञानिक थे। उन्होनें न केवल समाज की रूढ़िग्रस्त मान्यताओं छुआछूत, साम्यप्रदायिकता, स्त्री पुरूष असमानता एवं ऊँच – नीच पर प्रहार किये वरन् इनके लिये तर्कपूर्ण समाधान भी प्रस्तुत किये। समाज से अश्पृश्यता निवारण के लिये उन्होनें स्वयं मैला ढोनें का कार्य किया ताकि समाज में इस कार्य के प्रति घृणा को समाप्त करके एक निर्मल वातावरण जा सकें । उन्होनें इनकी शिक्षा एवं आर्थिक स्थिति को सुधारने पर बल दिया।

साम्प्रदायिकता जैसी बुराई से लड़ने के लिये उन्होनें सर्वधर्म समन्वय प्रस्तुत किया। जिसका मूल मन्तव्य यही था कि विभिन्न धर्मो के उदात्त आदर्शो को एक सूत्र में पिरोकर एक सच्चे मानव धर्म की स्थापना की जाये। उन्होनें इसी तत्व से प्रभावित होकर लगभग सभी धर्म ग्रन्थों जैसे भागवत धर्मसार (श्रीमद भागवत) गुरू बोध (शंकराचार्य) धम्मपदम नवसंहिता (भगवान बुद्ध) कुरानसार (पैगम्बर मुहम्मद) ख़िस्त धर्मसार (ईसामसीह) जपुजी (नानकदेव) आदि का अध्ययन किया एवं परस्पर एक सारपूर्ण एवं समन्वयाकारी दृष्टि विकसित की इसी सन्दर्भ में उन्होनें समन्वय आश्रम (बोध गया 1954) की स्थापना की। अपनी यात्राओं के माध्यम से भी इन्होनें सर्वधर्मभाव की नवीन दृष्टि विकसित कीं।

इन समग्र प्रयासों से इन्होनें लोगों को यह संदेश दिया कि यद्यपि विभिन्न धर्मो के अपने पृथक विचार हो सकते है पर सभी धर्मो की समन्वय दृष्टि से मानवता की सेवा ही प्रधान लक्ष्य होना चाहिये। नारी समाज के उत्थान के लिये उन्होनें उनके आध्यात्मिक विकास एवं शिक्षा दीक्षा के लिये पवनार में ब्रहमविद्या मन्दिर की स्थापना की। ताकि स्त्री समाज बौद्धिक एवं आध्यात्मिक संपूर्णता को प्राप्तकर अपना विकास सुनिश्चत करें। उनका उद्देश्य सफल हुआ आज ब्रहमविद्या मन्दिर के प्रबन्ध, संचालन की सारी व्यवस्था महिलाओं के हाथ है और इन्हीं के समग्र प्रयासों से 'मैत्री पत्रिका' यहाँ से निकलती है।

विनोबा जी शिक्षक थे। जीवन पर्यन्त उनकी शिक्षण प्रक्रिया चलती रही कभी आत्मशिक्षण,

कभी विद्यार्थियों का शिक्षण और कभी लोक शिक्षण के रूप में उन्होनें पाश्चात्य शिक्षण प्रणली को भारत के लिये हानिकारक मानते हुये देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल बुनियादी शिक्षा पर जोर दिया । इस रूप में उनकी नई तालीम की संकल्पना महत्वपूर्ण हैं उनके अनुसार पुरानी शिक्षा पुस्तक प्रधान थी जबकि नई तालीम ज्ञान एवं उद्योग प्रधान है। (1) इसमें बौद्धिक ओर शारीरिक कामों के मूल्यों में कोई भेद नहीं है। इसमें समस्त लोगों को उद्योगशील बनाने का विचार है। व्यक्ति के सवार्गीण विचार पर जोर देते हुये उन्होनें इसमें तत्वज्ञान, धर्मविचार, नीतिविचार, अरोग्यशास्त्र, आहारशास्त्र, एवं साहित्य की शिक्षा का प्रावधान किया। नयी तालीम को उन्होनें सत्तानिरपेक्ष घोषित किया क्योंकि वह मानते थे कि सरकार तंत्र का शिक्षा पर आधिपत्य होने से बुद्वि को उसी विशिष्ट, सरकारी ढ़ाचे में ढ़ालने का प्रयास किया जाता है, इससे ज्ञान का स्वतंत्र विकास बाधित होता है। उनकी इस नई तालीम से मनुष्य के आत्मिक एवं बाहय विकास की समन्वय दृष्टि प्रस्तुत होती है।

उन्होनें 'मातृमुखेन शिक्षणम्' कहा अर्थात बच्चों की प्रथमगुरू माँ है और वहीं बच्चों में बाल्यकाल से नैतिक मूल्यों और संस्कारों की उचित शिक्षा दे सकती है। उनका यह विचार नारी समाज को स्वयं शिक्षित होने के लिये प्रेरित करता है। वह अंग्रेजी भाषा को देश के बौद्विक विकास के लिये अवरोधक मानते थे। उन्होनें कहा इसमें कोई संदेह नहीं कि अंग्रेजी साहित्य समृद्व है, उसके पास ज्ञान का विपुल भण्डार है उसका अध्ययन करके हम अपना ज्ञान बढ़ा सकते है लेकिन उसे लादना गलत प्रवृत्ति है। विनोबा जी ने शिक्षकों का कार्यक्षेत्र केवल शिक्षण संस्था तक हीसीमित नहीं माना। उसे वह समाज के स्वस्थ एवं जागृत लोकमत का प्रहरी मानते थे। उनका मत था कि सरकार द्वारा शिक्षण पद्धति एवं शिक्षा नीति का निर्धारण होने से उसका शुद्व एवं तठस्थ विकास प्रभावित होता है अतः शिक्षकों का दायित्व है कि सभी संगठित होकर शिक्षा के विकास में सहभागी बनें। इस दृष्टि से उनकी आचार्य कुल की संकल्पना महत्वपूर्ण है जिसका उद्देश्य यही है कि शिक्षक संगठित होकर शिक्षक - परिवार का निर्माण करें। जहाँ मिलकर वे शिक्षा के उन्मुक्त विकास हेतु ज्ञान की साधना करें एवं विद्यार्थी और समाज की समस्याओं पर सर्वसम्मति से समाधान भी प्रस्तुत करें। वास्तव में आज की शैक्षणिक परिस्थितियों में शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी तीनों के सम्यक स्वरूप के निर्धारण में यह उत्कृष्ट विचार है।

---

1. आक्षेय (लेख) 'विनोबा की देन' गांधी मार्ग जनवरी 1983 पृष्ठ - 49

विनोबा जी ने भौतिकवादी संस्कृति की देन हिंसा, शोषण अन्याय, दुःख एवं विषाद आदि के प्रतिकार के लिये भौतिक समृद्धि एवं आध्यात्मिक विकास के समन्वय पर जोर दिया। यह कोई उनका नैतिक या भावात्मक उपदेश नहीं था। उनके अनुसार पश्चिम की अर्थकेन्द्रित नीति के कारण यद्यपि आर्थिक सम्पन्नता निरन्तर बढ़ी है लेकिन इसके साथ लोभ लिप्सा शोषण एवं हिंसा की प्रवृत्तियाँ भी उत्पन्न हुई है। आय के आँकड़े समुन्नत बनाने की चेष्टा मे मानव धन कमाने की मशीन बनकर रह गया है और लाभ कमाना ही उसके जीवन का प्रयोजन हो गया है। ऐसी स्थिति में मानव – मानव के बीच प्रतिस्पर्धा, विषमता एवं शोषण को बढ़ावा मिला है। अतः उन्होनें आध्यात्मिक विकास एवं भौतिक समृद्धि के समन्वय से आर्थिक नीतियों एवं अर्थ – संरचना का निर्माण का आग्रह किया।

विनोबा जी का विचार था कि नैतिक मूल्यों की बुनियाद पर आधारित अर्थसंरचना का सेवामय स्वरूप मानव कल्याण और विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा। उनकी इस अर्थरचना में आर्थिक नीतियों की शुरूआत व्यक्ति से होगी वस्तुओं से नहीं, उत्पादन का ध्येय व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति होगा न कि लाभ की प्रेरणा से। वास्तव में पारम्परिक अर्थशास्त्री न होते हुये भी उन्होनें आधुनिक अर्थव्यवस्था की दृष्प्रवृत्तियों पर प्रश्न चिन्ह लगाकर लोगों को न केवल यथार्थ से परिचय कराया। वरन् भोगवादी संस्कृति एवं आर्थिक प्रेरणा के दौर में नैतिक प्रेरणा से भूदान – ग्रामदान आन्दोलनों को जन्म दियां निः संदेह उनका यह अर्थ चिंतन आज भौतिक समृद्धि के तमाम अवसरों के बावजूद दुःख विक्षोभ एवं निराशा के बीच फंसे व्यक्ति को मुक्ति मार्ग दिखलाता है।

भारत में पाँच लाख से अधिक गाँवों में सार्थक बदलाव के लिये उन्होनें 'ग्रामस्वराज्य' का विचार दिया । उन्होनें कहा कि राजनीतिक एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा गाँव को स्वायत्तशासी आत्मनिर्भर इकाई बनाया जाये । गाँवों का प्रशासन स्वायत्व हो एवं वह अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं हेतु उपलब्ध कच्चे माल से वस्तुयें स्वं निर्मित करें। इससे एक और उनके आय के साधन बढेगें वही बेकारी गरीबी आदि समस्याओं का निदान होगा। कृषि के पूरक लघु उद्योग घंधों के विकास में ही उन्होनें ग्रामीण भारत का उज्जवल भविष्य देखा। आज भी देश की ज्वलंत समस्या ग्रामीण बेरोजगारी है। भारत के गाँवों को आत्मनिर्भर बनानें एवं बेरोजगारी और निर्धनता के दानवों से रक्षा के लिये कृषि के साथ लघु उद्योगों की स्थापना का उनका विचार आज की परिस्थितियों में महत्वपूर्ण है।

विनोबा जी ने राजनीति में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। आज की मूल्यविहीन हिंसाधारित एवं दलगतसत्तात्मक राजनीति के विकल्प के रूप में उनका लोकनीति का

विचार निः संदेह महत्वपूर्ण है। जिसमें आत्मसंयम और आत्मअनुशासन द्वारा नागरिकों को स्वयं अपनी स्वतंत्रता का अभिबावक बनाकर स्वायत्त संस्थाओं द्वारा उनके लोकहित के मार्ग को प्रशस्त किया जाता है। पाश्चात्य प्रणाली पर आधारित लोकतंत्र की खामियों को दूर करने के लिये इन्होनें जो महत्वपूर्ण उपाय बताये उससे लोकतंत्र की वास्तविक गरिमा स्थापित होती है। उनके सहगामी लोकतंत्र का विचार सभी के सर्वागीण विकास की समान दृष्टि, सत्ता का व्यापकतम आधार, मुक्त ज्ञान एवं अल्पसंख्यकों एवं बहुसंख्यकों का हितैक्य को सुनिश्चित करता है। उनकी राजनीति पर लिखी 'स्वराज्य शास्त्र' पुस्तकराजनीति एवं राज्यसत्ता को जनकल्याणकारी एवं प्रतिस्पर्द्धामुक्त बनाने का अद्‌भुत प्रयास है।

विनोबा जी ने संकुचित राष्ट्रवाद को मानवता के विकास में बाधक बताया। उन्होनें कहा था कि विज्ञान के युग में अगर अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में हम नही सोचेगें तो हमारा निर्णय सही दिशा में नही हों सकता। इसी सन्दर्भ में उन्होनें 'विश्व मानव एवं जयजगत' का उद्घोष किया। विश्वमानव के स्वरूप को निर्धारित करते हुये उन्होनें कहा था "हम विश्व मानव है। किसी धर्म विशेष के आग्रही नहीं किसी सम्प्रदाय या जाति – विशेष के बन्दी नहीं। विश्व के सद्‌विचार – उद्यान में विहार करना हमारा स्वाध्याय होगा उन्हें आत्मसात करना हमारा अभ्यास होगा। विरोधों का निराकरण करके और विशेषताओं का विकास करके हमे विश्ववृत्ति का विकास करना होगा।" (1)

एकीकृत मानवता की दृष्टि से उनका 'जयजगत' का विचार महत्वपूर्ण है जिसका उन्होनें व्यापक अर्थ निरूपित किया है कि जयजगत से राष्ट्रों के बीच भय और अविश्वास समाप्त होकर उनमें सच्ची निर्भयता विकसित होती है। इसका मूलभाव यही है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को भयभीत व शोषित करने की दृष्प्रवृत्ति का परित्याग करके 'वसुधैव कुटुम्बकम' के उदात्त आदर्श को ग्रहण करें। इससे मानव समाज में परस्पर, प्रेम विश्वास एवं सद्‌भाव उत्पन्न होगा। आज अणुशक्ति एवं रासायनिक हथियारों की होड़ के फलस्वरूप महाविनाश के कगार पर बैठी हुयी मानवता को निःसंदेह इसे ग्रहण करना चाहिये क्योंकि यही एक मार्ग है जो परस्पर भय, असुरक्षा, एवं अविश्वास की मानसिक वृत्तियों को समाप्त कर सकता है एवं विश्व में स्थाई शान्ति भाईचारा एवं सहयोग की प्रस्थापना कर सकता है। विनोबा जी की एकीकृत मानवता की खोज एवं कल्याणकारी सेवाभाव के कारण 'बरट्रान्ड रसल' ने कहा था कि "You have come to symbolise the role of conscience in human affairs ...." (2)

इस प्रकार विनोबा जी ने अपने निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग के समन्वय से

मानवमात्र के बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान एवं विकास में उत्कृष्ट योगदान दिया। सन् 1958 में विनोबा भावे सामाजिक नेतृत्व के लिये रमनमैग्नै से पुरस्कार दिया गया। इस अवसर पर अमेरिका के भूतपूर्व राजदूत 'एलसवर्थ बंकर ने' विनोबा जी को "अपने छोटे से शरीर और महान आत्मा के अन्दर प्राचीन भारतीय परम्परा के सारतत्व को मूर्तता प्रदान करने वाला सत्पुरूष [3] कहा था। उन्होनें यह भी कहा था कि "यद्यपि भूदान आन्दोलन का विकास भारत के धूलभरे ग्रामीण क्षेत्रों में हुआ है, फिर भी उनके तत्वज्ञान का असर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दूरगामी होगा।" [4] इसी प्रकार इट्ली के प्रसिद्ध कवि, कलाकार, ग्रन्थकार 'लान्जा डेल वास्तो' ने उनके बारे कहा था कि "भारत की सामाजिक और क्रान्ति में विनोबा का भाग महत्वपूर्ण है।" [5] 1983 में अपनी सेवाओं द्वारा देश के प्रति उत्कृष्ट योगदान के लिये इन्हें भारत रत्न दिया गया। सत्य एवं अहिंसा पर आधारित नवसमाज के निर्माण का उनका अद्‌भुत प्रयास अपनी विशिष्टता एवं सार्थकता की प्रतीत (अभास) संसार को आने वाले समय में भी कराता रहेगा। उनकी लोकमंगल की साधना दुःखी संतप्त मानवता के कल्याण की प्रक्रिया को निरन्तर मार्गदशर्न प्रदान करेगी।

(ग) विनोबा जी के विचारों की प्रांसागिकता -

विनोबा जी आदर्श वादी होने के साथ - साथ व्यवहारिक चिन्तन एवं प्रयोगी भी थे। अपने समय की दुष्प्रवृत्तियों एवं समस्याओं के समाधान हेतु उन्होनें जो शाश्वत विचार एवं रचनात्मक कार्यक्रम रखे उनकी उपादेयता निश्चित रूप से आज भी बनी हुयी है। विनोबा जी जीवन पर्यन्त गरीबी - भूखमरी बेरोजगारी, अन्याय-शोषण-असमानता, अनैतिक - प्रतिस्पर्द्धा - एवं भोगवाद इत्यादि नकारात्मक मूल्यों को समाप्त कर नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित अहिंसक शोषणमुक्त, समतामूलक समाज के निर्माण प्रति सचेष्ट रहे। और इसी सन्दर्भ में इन्होने जो मूलभूत आदर्श एवं उस पर आधरित आन्दोलनों एवं रचनाकार्यक्रमों को क्रियान्वित किया, उनका महत्व आज मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं के निदान में निश्चित रूप से हैं। इसके लिये हम सभी को मिलकर ईमानदारी से उनके द्वारा

2. बसन्त नरगोलकर 'क्रीड आफसेन्ट विनोबा' पृष्ठ - 225
3. श्री मन्नारायना 'ऋषि विनोबा जीवन और कार्य' पृष्ठ - 374 से उद्वत
4. पूर्वोक्त पृष्ठ - 375

निर्धारित शाश्वत मूल्यों को अपनाना होगा।

अतएव वर्तमान समय में उनके विचारों की प्रासंगिकता के परीक्षण के लिये आवश्यक है कि इन समस्याओं के सन्दर्भ में उनकी उपयोगिता एवं महत्व को पूर्ण रूप से परखा जायें -

(१) नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन -

आज समाज में बढ़ती हिंसा, अलगाव, शोषण, अत्याचार, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता आदि समस्त समस्याओं के पीछे प्रमुख कारण यही है कि हमारे जीवन से नैतिक मूल्यों का तेजी से ह्रास हो रहा है। आज मानवजीवन का कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ पर इन मूल्यों को बुरी तरह नहीं रौदा जा रहा हो। गलत मूल्यों पर आधारित समाज के स्वस्थ विकास की आशा करना व्यर्थ है। सामाजिक जीवन में प्रेम, दया, क्षमा, करूणा, एवं सहयोग आदि मूल्य कमजोर हो रहे है और उनका स्थान घृणा, द्वेष, कटुता एवं हिंसा आदि ने लिया है। इससे साध्य - साधन का विवेक समाप्त हो गया है।

विनोबा जी के समस्त विचारों एवं कार्यो में नैतिक मूल्यों को व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन प्रेरणा बनाने का प्रमुख संकल्प है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, प्रेम एवं सहयोग एवं त्याग की भावना से उन्होर्ने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की दुष्प्रवृत्तियों, अनैतिकता को समाप्त करने का भागीरथ प्रयास किया। आज नैतिक मूल्यों पर आधारित उनकी यह दृष्टि एंकागी, भटके हुये, हताश, एवं कमजोर व्यक्ति की आत्मशुद्धि करके उसी नयी दिशा प्रदान कर सकती है।

(२) सामाजिक जीवन की विकृतियाँ -

समाज व्यवस्था की अस्वस्थता और विवेकहीनता के कारण अनेक दुष्प्रवृत्तियाँ छुआछूत ऊँच - नीच, जातिवाद, एवं नारी समाज के प्रति अमानुषिक व्यवहार चरम पर है। नारी समाज के प्रति अत्याचार और उनके मानव अधिकारों के हनन के सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या निधि द्वारा प्रकाशित (रिपोर्ट) स्टेट आफ पापुलेशन - 1997 में भारत में महिलाओं की बुरी स्थिति को दर्शाया गया है - भारत में प्रति 54 मिनट पर एक बलात्कार, प्रति 26 मिनट पर एक महिला के साथ छेड़खानी, प्रत्येक 1 घण्टा 42 मिनट पर (अधि सूचित) एक दहेज हत्या एवं प्रति 33 मिनट पर एक महिला साथ हिंसक निर्दयता की घटनायें घटित होती है।[1] विषमता अन्याय और इन बुराइयों क उपरोक्त सभी रूप एक ऐसी समाज व्यवस्था के लक्षण है जिसकी बुनियाद खोखली हो गयी है।

विनोबा जी समाज की उपरोक्त कुरीतियों को दूर करने एवं समरसता एवं समतायुक्त अहिंसक समाज रचना की दृष्टि से जो मूलभूत आदर्श रखें एवं हरिजनोद्वार, स्त्रीशक्ति जागरण अशपृश्यता

निवारण हेतु जो रचनात्मक कार्यक्रम चलायें हमें आज इनके समाधान हेतु एक व्यवहारिक दृष्टि प्राप्त होती है।

(३) साम्प्रदायिकता -

धर्म भारतीय जीवन का अभिन्न अंग रहा है। इसका अर्थ समाज को एकता सूत्र में बांधना है। परन्तु आधुनिक, परिवेश में साम्प्रदायिकता की समस्या इससे जुड़ गयी है। अंग्रेजों की यह फूट डालों और राजकरों की नीति का परिणाम है। उन्होनें समाज को जाति, धर्म, भाषा के आधार पर बांटने का प्रयास किया है। इसमें धर्म के मामले में समाज के विभाजन में उन्हें सर्वाधिक सफलता मिली। इसके परिणामस्वरूप देश स्वतंत्र होने के पूर्व ही विभाजित हो गया। विरासत में मिली इस समस्या ने वर्तमान में भयावह रूप ले लिया है। स्वतंत्र भारत में धार्मिक कट्टरता शनैः - शनैः बढ़ती जा रही है और स्वतंत्रता के बाद धर्म के नाम पर करीब 10,000 से ज्यादा दंगे इस देश की भूमि को रक्तरंजित कर चुके है और इस देश के दो बड़े समुदायों के बीच नफरत, हिंसा, घृणा, और द्वेष का जहर निरन्तर भर रहे है। वास्तव में कोई भी धर्म मानवों के बीच इस तरह की दीवार खड़ी करने की शिक्षा नहीं देता है।

विनोबा जी ने धार्मिक सौहार्द के लिये सर्व - धर्म समानत्व का उदात्त आदर्श दिया था। विनोबा जी का मत था कि सच्चा धर्म सत्य, निष्ठा, श्रद्वा और त्याग पर आधारित होता है, और इस सद्‌गुर्णो का आचरण ही धर्माचरण होता है। लेकिन वर्तमान में केवल अंधश्रद्धा पर आधारित धर्म ही शेष है। इसी कारण समाज में दूसरे धर्मो के प्रति लोगों में आदर कम हुआ है। दूसरे हमने धर्म की व्याख्या, चिंतन एवं आचरण की प्रक्रिया को मन्दिरो, मस्जिदों, गुरूद्वारों एवं गिरजाघरों को सौंप दिया है। और खुद मुक्त हो गये है। अतः धर्म के शाश्वत स्वरूप के प्रत्यक्ष चिंतन और आचरण से स्वयं को मुक्त कर लेने से धर्म का संकुचित स्वरूप ही हमारे मानस में सिमट गया है। अतः यह आवश्यक है कि धर्म हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान, चिंता और सदाचरण पर आधारित हो इसके लिये हमें धर्म को अपनी मानसिक कल्पना से उतार कर बुद्वि की कसौटी पर करना होगा। तभी धर्म का शाश्वत स्वरूप हमें स्वधर्म के शुद्व निर्वाह के साथ अन्य धर्मो के प्रति अपार भावना विकसित करेगा।

---

1. डा० पुष्पिता (लेख) 'स्त्री हिस्सेदारी और हिंसा के बीच की त्रासदी' सर्वोदय जगत नवम्बर 1999 पृष्ठ - 10 से उद्वत

साम्प्रदायिकता की समस्या के निवारण हेतु चार तत्व विनोबा ने प्रस्तुत किये – [2]

(क) स्वधर्म निष्ठा

(ख) अन्य धर्मो का आदर

(ग) स्वधर्म सुधार, इन तीनों का समन्वय से चौथा तत्व निकलेगा वह है

(घ) अधर्म से विरोध,

इसी से मानव धर्म की स्थापना होगी। इस सन्दर्भ में साम्प्रदायिकता के निवारण हेतु कुछ व्यवहारिक सुझाव भी दिये [3]

(1) सर्वत्र इस भावना को प्रोत्साहन दिया जाये कि सब धर्मो के लोग मिल जुलकर रोज मौन प्रार्थना करें। सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत स्थानो पर, जहॉं प्रार्थना आदि के कार्यक्रम होते है, ऐसा वातावरण बनाया जाये।

(2) शिक्षण मे आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश किया जाये। साम्प्रदायिक या मजहबी क्रिया कर्म भिन्न चीज है।

(3) किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र में बहुमत के आधार पर कोई प्रवृत्ति पैदा न की जाये। सारा कार्य ऐसे ढंग से हो कि अल्पसंख्यकों को अपने अल्पसंख्यक होने का भाव ही न रहे।

(4) धर्म विशेष से सम्बन्ध न रखने वाले (सेक्यूलर) व्यक्तिगत और सार्वजनिक उत्सव – प्रसंगों में सब लोग मिल – जुलकर सहयोग करें।

(5) विभिन्न धार्मिक तथा सांस्कृतिक उत्सवों मे सब धर्मो के लोगों को सम्मिलित किया जाये। आपस में विचारो का आदान – प्रदान किया जाये और इस प्रकार एक – दूसरे के प्रति भय के वातावरण को दूर किया जाये।

(6) विभिन्न धर्म वालों को विचार वालों को और विषेशतः मुसलमानों को अध्ययन मण्डल या विचार गोष्ठियां (स्टडी सर्किट) चलानी चाहिये, और उनमें विभिन्न धर्मो के उसूलों (सिद्धान्त) का अध्ययन – चिन्तन हो।

(7) ग्रामदान, शान्तिसेना तथा खादी सम्बन्धी जो त्रिविध कार्यक्रम बना है, वह सारे देश में बिना किसी भेदभाव के फैलाया जाये।

---

2. विनोबा साहित्य – खण्ड – 14 अध्यात्म एवं आश्रम पृष्ठ – 476

3. आचार्य विनोबा भावे 'सर्वोदय सामयिकी' सर्व सेवा संघ, बनारस, पृष्ठ – 35

यदि वास्तव में विनोबा जी द्वारा बताये हुये इन शाश्वत मूल्यों को हम आत्मसात करने की कोशिश करें तो निः संदेह धार्मिक कट्टरता एवमं साम्प्रदायिकता की भावना शनै - शनै समाप्त होने की पूर्ण संभावना हैं

(४) मशीनीकृत केन्द्रित औद्योगिक व्यवस्था की विसंगतियां -

विगत कई शताब्दियों से मानव समाज ने मशीनीकृत केन्द्रित औद्योगिक व्यवस्था के द्वारा आर्थिक विकास की दिशा तय की। जिसका मूल उद्देश्य मुनाफा कमाना रहा है। शुरू यह आशा की गयी थी उत्पादन के विकसित साधन एवं मशीनीकृत औद्योगिक व्यवस्था अपनाने से रोजगार के विपुल अवसर बढ़ेगे लेकिन इसका प्रमाण उल्टा ही हुआ क्योंकि "Industrialisation seeks to substitute the machine for human labour with a view to reduction in costs and a consequent increase in profits In this sense indiscriminate industrialisation has its origion in the unbridled desire for more profits. More profits can only be had if, by enlarging the unity production, large scale economies are made to operate thus. Reducing cost of production. Naturally in such a society the profit motive tends to become the be all and end - all of economic activity and the consequent unemployment is of comparatively little concern to the industrialists. " (4)

इस प्रकार मशीनीकृत उत्पादन की प्रक्रिया से जहाँ एक और मानव श्रम की उपेक्षा हुई वहीं **शोषण को भी बढ़ावा मिला है।** जैसा कि गाँधीजी ने कहा - "I consider it a sin and injustice to use machinery for the purpose of concentrating power and riches in the hands of a few. Today the machines is used in this way.(5) बड़े पैमाने पर आधारित केन्द्रित मशीनीकृत उत्पादन व्यवस्था ने **ग्रामोद्योगों को भी नष्ट किया है।**

साथ ही अर्द्धविकसित और विकासशील देशों में विकसित देशों के समान विकसित उत्पादन **प्रक्रिया और औद्योगीकरण को अपनाया गया** पर उनके सामने दुहरी समस्या है - (क) एक तो उनके **यहाँ पूँजी का अभाव है अतः उद्योगों के** यन्त्रीकरण हेतु उन्होनें विदेशों से ऋण लिया है (ख) औद्योगिक **ढांचा विकसित न होने के कारण** उन्हें रोजगार के अवसरों का सृजन करने में भी कठिनाइयां आयी हैं।

---

4. Adi, H Doctor - Sarvodhya A political and economic study" P - 74
5. Gandhiji - 'Young India' 31 Dec. 1924 .

गांधी जी के समान ही विनोबा जी भी औद्योगीकरण और मशीनीकरण की होड़ से बचाना चाहते थे और इसीलिये उन्होनें विकेन्द्रित औद्योगिक अर्थव्यवस्था का समर्थन किया। भारत के लाखों गाँवों के स्वावलम्बन हेतु उन्होनें गाँवों में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास को आवश्यक बताया। उन्होनें मशीनीकरण का वही तक सर्मथन किया, जहाँ तक वह मानव श्रम की उपयोगिता को प्रभावित न करें निःसंदेह भारत जैसे विकासशील देश जहाँ पूँजी का अभाव, बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्यायें है। यहाँ उनका विचार महत्वपूर्ण सिद्व हो सकता हैं।

(४) वर्तमान लोकतंत्र के दोष -

आज का युग प्रजातंत्र का युग है। लोकतंत्र शासन व्यवस्था की श्रेष्ठता सभी स्वीकार करते है। शायद इसलिये आज दुनिया का हर राज्य लोकतांत्रिक होने का दावा करता है। भारत में 1950 में संविधान द्वारा संसदीय लोकतंत्र की स्थापना हुयी। सैद्धान्तिक श्रेष्ठता के बावजूद हमारी वर्तमान लोकतांत्रिक प्रणाली में कई दोष परिलक्षित होते है -

(1) केन्द्रीयकरण की बढ़ती प्रवृत्ति।

(2) प्रजातंत्र के संचालन उसकी सफलता के लिये राजनीतिक दल अनिवार्य माने जाते है। इन्हें संसदीय लोकतंत्र आधार माना जाता है। लेकिन सत्ता की भूख के कारण "राष्ट्रीय हितों से ज्यादा दलीय हितों को महत्व देतें है। अतः सामाजिक आर्थिक नीति के विशिष्ट प्रश्नों पर वे अन्य दलों से मतभेदो को उजागर करते है। तथा अपनी श्रेष्ठता को सिद्व करने के अर्द्व - सत्यों और कुतर्को का भी आश्रय लेने में कोई संकोच नहीं करते है।" लोकतांत्रिक अपेक्षाओं के यह प्रतिकूल अवस्था है। चुनाव के दौरान मत प्राप्त करने के लिये मतदाताओं को धन एवं बल से प्रभावित करने की कोशिश करते है। जाति, धर्म, संप्रदाय, भाषा एवं प्रान्त के नाम पर समाज में अलगाव पैदा करके 'वोट बैंक' की राजनीति करते है। इससे समाज में संकीर्णता, घृणा, भ्रष्टाचार, व विद्वेष को बढ़ावा मिल रहा है।

(3) देश में आर्थिक प्रजातंत्र का अभाव है। आर्थिक विषमतायें एवं गरीबी प्रजातंत्र के मार्ग मे

अवरोध है।

(4) **नौकरशाही का प्रभुत्व** - प्रजातंत्र में सत्ता एवं प्रशासन के केन्द्रीकरण के कारण नौकरशाही का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है।

विनोबा जी ने संसदीय लोकतंत्र की उपरोक्त बुराइयों को दूर करने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिये उन्होनें लोकतंत्र को सहभागी लोकतंत्र के रूप में प्रस्तुत किया जहां जनता की भूमिका केवल मतदान तक सीमित नहीं होगी वरन् आर्थिक एवं रानजीतिक निर्णयों में उसकी व्यापक साझेदारी होगी इसका प्रयोजन यही है लोकतंत्र में 'लोकमुख्य' बने तंत्र नहीं इसी से सत्ता का व्यापक आधार विकसित होगा एवं सत्ता की वासना खत्म होगी।

नौकरशाही के बढ़ते प्रभुत्व लाल फीताशाही एवं निरंकुशता को दूर करने के लिये उन्होनें लोकतंत्र को सुलभतम तंत्र के रूप में विकसित करने प्रशासनीय संस्थाओं को विकेन्द्रित एवं सुलभ बनाने पर बल दिया ताकि नागरिकों की समस्याओं का समाधान बिना किसी बाधा के सुविधाजनक ढंग से हो सके।

लोकतंत्र में दलों की सत्तात्मक प्रतिर्स्पधात्मक राजनीति को समाप्त करने हेतु कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये -

(1) सभी राजनैतिक दल समाज के विकासपरक कार्यक्रमों में एकजुट होकर रचनात्मक सहयोग करे उनके इस विचार से एक ओर इन विभिन्न दलों की दूरी समाप्त होगी वही समाज से द्वेष घृणा एवं कटुता के वातावरण को समाप्त करने में सहायता मिलेगी।

(2) चुनाव बाद विजयी उम्मीदवार लोकप्रतिनिधि के रूप में लोकसभा एवं विधानसभा में प्रवेश करे तथा मतदान में दल के अनुसार मत का प्रयोग न करके लोकहित की दृष्टि से इसका प्रयोग करें।

(3) मंत्री का चयन दलगत आधार पर न होकर सदस्यों की राय से राष्ट्रहित की दृष्टि से हो एवं मंत्रीगण स्पीकर की तरह तटस्थ रहे।

उनके इन्हीं सभी उपायों से एक ओर इन संस्थाओं के निर्दलीयकरण में सहायता प्राप्त होगी वही दलीय एवं विरोधवादी सत्तात्मक राजनीति का पतन भी होगा।

वर्तमान हिंसाधारी सत्तात्मक राजनीति की जगह उनका लोकनीति का विचार जिसमें सत्ता की स्पर्धा और तत्परता की जगह जनकल्याण और सेवा का भाव है निःसंदेह आज के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है साथ ही लोकशक्ति के रूप में नागरिकों की स्वालम्बी प्रवृत्ति को जागृति करने का विचार ये लोकतंत्र

को जीवन्त एवं सार्थक बना सकता है।

उन्होनें लोकतंत्र में राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ आर्थिक स्वतंत्रता पर बल देते हुये सामान्य रूप से इन दोनों शक्तियों के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। क्योंकि इसी के द्वारा राजनीतिक प्रजातंत्र के साथ आर्थिक प्रजातंत्र की दिशा भी सुनिश्चित हो सकेगी।

इस प्रकार लोकतांत्रिक जीवनशैली की वास्तविक प्रस्थापना की दृष्टि से विनोबा जी के ये व्यवहारिक विचार लोकतंत्र को ठोस बुनियाद प्रदान कर सकते है।

(६) विश्व शान्ति एवं सुरक्षा की समस्या –

आज सम्पूर्ण मानवता हथियारों की होड़ के कारण बारूद के ढ़ेर पर बैठी है। विश्व में आणविक शस्त्रों के इतने विशाल ढ़ेर लग गये कि आणविक युद्व कुछ क्षणों में पूरी दुनिया का विनाश कर सकते है। युद्व और हिंसा से किसी समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकता लेकिन फिर भी यह होड़ जारी है। विनोबा जी ने कहा था कि "आज हम ऐसी सभ्यता के बीच रह रहे है, जिसमें अशांति, उपद्रत और कलह की सभी सामग्रियाँ उपस्थित है। हमारे सामाजिक, राष्ट्रीय, अर्न्तराष्ट्रीय प्रत्येक क्षेत्र में अशांति के विस्फोटक तत्व विद्यमान है। जो समय – समय पर युद्व और क्रान्ति के रूप में धधक उठते हैं जिस युग में शान्ति के विरुद्व निरंतर संघर्ष चल रहे हो जिसकी आत्मा सुप्त हो, जहाँ शक्तिशाली राष्ट्र अपने स्वार्थ में अन्धे हो वहाँ शान्ति कहाँ रह सकती है।" [6]

विनोबा जी ने कहा था कि जब तक राष्ट्रो के बीच भाईचारा सद्भावना, विश्वास और सहयोग नहीं पनपेगा तब तक वह क्षुद्र राष्ट्रवाद के सहारे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को भंग करने का प्रयास करेगें। इसीलिये उन्होनें 'जगजगत' का उद्घोष किया था कि हमारी दृष्टि जागतिक हो मानव समाज में ऊँचे कल्याण के लिये स्वजन, ग्राम, नगर, जाति, धर्म, राष्ट्र की संकुचित भावनाओं से ऊपर उठकर 'सर्वउदय' के आदर्श को ग्रहण करें। मानवतावादी दृष्टि ही विश्व में स्थायी शान्ति की स्थिति सुनिश्चित करेगी। इसी सन्दर्भ में उन्होनें गुजरात और महाराष्ट्र के यात्रा के दौरान अमेरिका के नीग्रों नेता मार्टिन लूथर किंग से कहा था –

6. आर० सी० गुप्ता, कतिपय राजनीतिक विचारक पृष्ठ – 16

"इस युग में मानसिक वृत्तियों के संघर्ष को लेकर हम आगे नहीं बढ़ सकते । अगर हम समय पर सावधान न हुये तो निश्चय ही अणुशास्त्र घोटमोट करके मानव - जाति की सारी समस्याएँ सुलझाकर रख देगा। इसलिये हमारी ऋषियों की भाषा में कहूँ तो इस युग की जरूरत तो यह है कि हम मन के स्तर से ऊपर उठकर अतिमानस - स्तर से सोचें। मन अनेक प्रकार से संघर्ष निर्माण कर देता है। अतिमानस-भूमिका हमको इन संघर्षो से बचा लेगी। मेरा ख्याल है। कि इस अणु- युग के साथ अतिमानस - युग भी आ रहा है। सत्याग्रह का अर्थ है, सत्य को अपना काम करने दो। हम अपने - आपको सत्य और हमारी आत्मा के बीच न आने दें।" (7)

आज हम सभी जानते है कि विज्ञान की संधारक शक्ति ने महाविनाश की स्थिति उत्पन्न कर दी है। विनोबा जी ने 'विज्ञान और अध्यात्म' के समन्वय का विचार दिया जिसका मूलभाव यही है कि विज्ञान का अहिंसा से समन्वय हो। क्योंकि विज्ञान तो नीति निरपेक्ष होता है, इसका विनियोग हिंसा में करके बड़े पैमाने पर अस्त्र शस्त्रों का निर्माण किया गया जिसके द्वारा सम्पूर्ण विश्व के संहार की शक्ति विकसित कर ली गयी। अब हमें विज्ञान को अहिंसा से जोड़कर मानवसेवा में ही उसका एकमात्र प्रयोग करना चाहिये। इससे विज्ञान की हिंसात्मक शक्ति समाप्त होगी।

निःसंदेह विनोबा जी के ये विचार विश्व शान्ति के मार्ग को प्रशास्त करते है।

इस प्रकार विनोबा जी ने मानव की विभिन्न समस्याओं के निराकरण और राष्ट्र के पुर्ननिर्माण हेतु जो विचार - बीज उस समय बोये थे वह आज विशाल वट्वृक्ष बनके दुःखी संतप्त मानवता को छाया प्रदान करने में पूर्ण सक्षम हैं। ऐसा विश्वास उन्होनें स्वयं व्यक्त किया था -

विचार बीज उगेगा ही -

एक विचार बीज बोया गया।

उत्तम बलिदान का खाद दिया गया।

यह विचार - बीज अंकुरित हुये बगैर नहीं रहेगा।

विचार तो अर्ध सुप्त है।

उसे अभी अंकुरित होना है।

---

7. श्री मन्नारायण - ऋषि विनोबा - जीवन और कार्य पृष्ठ - 281

परिपुष्ट होना है।

हिन्दुस्तान भर में उस पर अमल होना है उसके बाद वह दुनिया में प्रवेश करेगा। गीता में 'बीज अव्यवम्' कहा है।

मै मानता हूँ कि अव्यव बीज यानि विचार – बीज।

उसे नित्य नये अंकुर फूटते रहते है

उसकी हिफाजत करनी चाहिये

उसकी उपासना करनी चाहिये।

उसे अपने तप का खाद उसको देना चाहिये।

और वह इस श्रद्धा से देना चाहिये

कि वह बीच उगेगा ही,

और उगने पर विश्व में फैलेगा।" (8)

वास्तव में विनोबा जी के विचार बीच 21 वीं सदीं को नया संदेश दे रहे है। आज तेजी से सामने आ रही कई संकल्पनाये "मानवीय अर्थशास्त्र, मानवीय टेक्नोलोजी, केन्द्रीकरण नहीं वरन् विकेन्द्रीकरण, स्पर्धा नहीं सहयोग, सहभागी लोकतंत्र, मानव स्वभाव की उर्ध्वगामी संभावनाओं की खोज ....।"(9) विनोबा जी के तत्वदर्शन की उपादेयता का समर्थन करती प्रतीत होती है।

---

8. विनोबा (स्वरचित) – कविता "विचार बीज उगेगा ही" उघृत – सर्वोदय जगत पत्रिका नवम्बर 1999
9. कांतिशाह – भूदान आंदोलन : एक मूल्यांकन, गाँधीमार्ग, जनवरी–फरवरी – 1986, पृष्ठ–8

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(BIBLIOGRAPHY)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(BIBLIOGRAPHY)

लेखक	पुस्तक / प्रकाशन / वर्ष
(अ)	
1. अग्रवाल श्री मन्नारायण :	'भारतीय संयोजन में समाजवाद', सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1966
2. अग्रवाल श्री मन्नारायण :	'गाँधीवादी संयोजन के सिद्धान्त', सस्ता साहित्य मण्डल, प्रथम संस्करण, 1961
3. अग्रवाल श्री मन्नारायण :	'विनोबा के साथ सात दिन', सस्ता साहित्य मण्डल, प्रथम संस्करण, 1957
(ब)	
4. भावे, आचार्य विनोबा :	खण्ड - 1, 'वेदचिन्तन' सम्पादक गौतम, परमधाम प्रकाशन, पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान, वर्धा - 1993
5. :	खण्ड - 2, 'वेदान्त सुधा' सम्पादक ऊषा, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा) लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा), 1993
6. :	खण्ड - 3, 'गीतामृतम' भाग-1, सम्पादक ऊषा, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा) लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा),1994
7. :	खण्ड - 4, 'गीतामृतम' भाग-2, सम्पादक ऊषा, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा) लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा),1994
8. :	खण्ड - 5, गीताभागवत्, सम्पादक ऊषा, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा), 1995
9. :	खण्ड - 6, शंकरमनु, सम्पादक गौतम बजाज, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1995
10. :	खण्ड - 7, बुद्ध महावीर (योग और ध्यान मीमांसा सहित) सम्पादक गौतम बजाज, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा) 1995

लेखक		पुस्तक / प्रकाशन / वर्ष
		लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1995
11.	:	खण्ड – 8, बाइबिल कुरान, गौतम बजाज, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा) लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1996
12.	:	खण्ड – 9, सन्त समागम, गौतम बजाज, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1996
13.	:	खण्ड – 10, पन्चामृत, भाग–1, गौतम बजाज, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1997
	:	खण्ड – 11, पन्चामृत, भाग–2, गौतम बजाज, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1997
14.	:	खण्ड – 12, साहित्य और आत्मज्ञान, विज्ञान, गौतम बजाज, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1998
15.	:	खण्ड – 13, पत्र मंजूषा, कालिन्दी, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1995
16.	:	खण्ड – 14, अध्यात्म और आश्रम, कालिन्दी, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1999
17.	:	खण्ड – 15, 'आरोहण', कान्तिशाह, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1996
18.	:	खण्ड– 16, तीसरी शक्ति, मीरा भट्ट परागचोलकर परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा)1996
19.	:	खण्ड–17, 'शिक्षा और स्त्री–शक्ति', गौतम बजाज,परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा)1997
20.	:	खण्ड – 18, 'साम्योगी समाज' पराचोलकर, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1998

लेखक	पुस्तक / प्रकाशन / वर्ष
21.	: खण्ड-19, धर्मामृत और चरितामृतम, कान्तिशाह, परमधाम प्र0 पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा) 1999
(ब)	
भावे, विनोबा –	
22.	: 'लोकनीति', सर्वसेवा संघ, 1999
23.	: 'भूदान योजना', नवजीवन अहमदाबाद, मार्च 1957
24.	: 'डेमोक्रेटिक वैल्यूज – सेलेक्शन्स', सर्वसेवा संघ 1962
25.	: 'फ्राम भूदान टू ग्रामदान' प्रचुरालयम तन्जौर, 1957
26.	: 'सर्वोदय दर्शन', सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1960
27.	: 'त्रिवेणी,' सम्पादन निर्मला देशपांडे, सर्वसेवा संघ, 1956
28.	: 'स्वराज्य शास्त्र' (अनुवादित – कुमारप्पा), पद्मा पब्लिकेशन, बाम्बे, 1963
29.	: 'सेलेक्शन्स फ्रोम विनोबा', (सम्पादन – बी. एन. टण्डन) सर्वसेवा संघ
30.	: 'तीसरी शक्ति', सर्वसेवा संघ, 1969
31.	: 'सर्वोदय के आधार,' सर्वसेवा संघ, 1949
32.	: 'सर्वोदय पात्र,' सर्वसेवा संघ, 1963
33.	: 'मुहब्बत का पैगाम', सर्वसेवा संघ, 1960
34.	: 'सर्वोदय और साम्यवाद,' सर्वसेवा संघ, 1965
35.	: 'भूदान यज्ञ,' सर्वसेवा संघ, 1957
36.	: 'सम्पत्तिदान', प्रचुरालयम, तन्जौर
37.	: 'आचार्य कुल,' वाराणसी सर्वसेवा संघ प्रकाशन, तृतीय संस्करण 1969
38.	: 'शान्ति सेना,' वाराणसी सर्वसेवा संघ प्रकाशन, सातवाँ संस्करण 1965

लेखक		पुस्तक / प्रकाशन / वर्ष
39.	:	"विनोबा-चिंतन" वाराणसी सर्वसेवा संघ प्रकाशन, 1966 अंक - 10-11
40.	:	"विनोबा-चिंतन", वाराणसी सर्वसेवा संघ प्रकाशन, 1968 अंक - 28
41.	:	'विनोबा चिन्तन', वाराणसी सर्वसेवा संघ प्रकाशन, 1969 अंक - 40-41
42.	:	'विनोबा चिन्तन', वाराणसी सर्वसेवा संघ प्रकाशन, अंक - 28
43.	:	'गीताई चिन्तनिका', सर्वसेवा संघ वाराणसी, 1969
44.	:	'अध्यात्म एवं सुधा', सर्वसेवा संघ वाराणसी, 1968
45.	:	आत्मज्ञान और विज्ञान, सर्वसेवा संघ विचार-पोथी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली 1961
46. बसु, डा0 एस0 के0	:	"फाउन्डेशन ऑफ पोलिटिकल फिलोसफी"
47. बारकर, ई0	:	"रिफ्लैक्शन ऑन गवर्नमेंट"
48. बेन्थम, जर्मी	:	"प्रिन्सिपल ऑफ मॉरल्स एण्ड लैजिस्लेशन्स"
49. बेलोफ बिल्फेड	:	गाँधी एक सामाजिक क्रान्तिकारी सर्वसेवा संघ प्रकाशन, तृतीय संस्करण, 1960
50. भट्टाचारजी, एन. सी.	:	'इज नौन-वायलेन्ट स्टेट पोसीबल?' सम्पादित बी. बी. मजूमदार (कलकत्ता एम0 सी0 सरकार एण्ड लिमिटेड 1957
51. बोस, एन. के.	:	'स्टडीज़ इन गाँधीज्म' (कलकत्ता, एसोसिएट पब्लिशिंग कम्पनी लि. 1947)
52. वन्धोपाध्याय जे.	:	'सोशल एण्ड पोलिटिकल थॉट आफ गांधी', बम्बई पब्लिकेशर - 1969

लेखक		पुस्तक / प्रकाशन / वर्ष
53. भंडारी चारूचन्द्र	:	'ग्रामदान क्यों' (अनुवादभवन लाल जैन) वाराणसी सर्वसेवा संघ प्रकाशन 1959 दूसरा संस्करण
54. भंडारी चारूचन्द्र	:	"भूदानयज्ञ क्या और क्यों" सर्वसेवा संघ 1956
55. भावे शिवाजी	:	'श्रमदान' अखिल भारत सर्वसेवा संघ वर्धा 1970
(द)		
56. दासगुप्ता, सुगत	:	"ए ग्रेट सोसायटी आफ स्माल कम्यूनिटीज, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, 1968
57. दास्ताने दत्तोवा	:	'सर्वोदय समाज' (सम्पादित), सर्व सेवा संघ, 1971
58. दुबे नरेन्द्र	:	ट्रस्टीशिप -"सिद्धान्त और व्यवहार", सर्वसेवा संघ प्रकाशन 1973
59. देव शंकर राव	:	लोक राज्य, सर्व सेवा संघ, 1971
60. देशपांडे निर्मला	:	'क्रान्ति की राह पर', (सम्पादित पुस्तक), सर्व सेवा संघ, 1956
61. दीक्षित, गोपीनाथ	:	"गाँधी की चुनौती कम्यूनिज्म को"
62. देसाई नरायन	:	"भूदान-आरोहण", सर्व सेवा संघ प्रकाशन 1955
63. देव शंकर राव	:	"सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र"
64. डाक्टर, अदी. एच.	:	'सर्वोदय ए पालिटिकल एण्ड एकोनोमिक स्टडी', एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई 1967
65. दिवाकर आर. आर.	:	सत्याग्रह इन ऐक्शन, सिगनेट प्रेस, कलकत्ता, 1949
66. दिवाकर आर. आर.	:	'सत्याग्रह : इट्स टेक्नीक एण्ड हिस्ट्री,' हिन्द किताब बम्बई, 1946
67. दिवाकर एण्ड अग्रवाल (सम्पा.)	:	विनोबाः स्पिरिचुअल रिवोल्यूशनरी, गांधी पीस फाउन्डेशन
68. दिवाकर आर. आर.	:	सत्याग्रह : दि पाथवे टू पीस, पुस्तक भण्डार, पटना, 1950

लेखक		पुस्तक / प्रकाशन / वर्ष
(ध)		
69. धर्माधिकारी दादा	:	'सर्वोदय दर्शन, सर्वसेवासंघ, 1957
70. धर्माधिकारी दादा	:	'क्रान्ति का अगला कदम' सर्व सेवा संघ, 1956
71. धर्माधिकारी दादा	:	अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया, सर्व सेवा संघ 1962
72. धर्माधिकारी दादा	:	मानवीय क्रान्ती, सर्व सेवा संघ, 1955
73. धवन, जी0 एन0	:	'दा पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी,' पोप्यूलर बुक डिपो मुम्बई, 1946
(फ)		
74. फडिया, बी0 एल0	:	'भारतीय राजनीतिक चिंतन', साहित्यभवन, आगरा 1990
(ग)		
75. गुप्ता आर0 सी0	:	'कतिपय राजनीतिक विचार' कमल प्रकाशन, इन्दौर
76. गार्ड, जाफ्री आस्टर (लेख)	:	'विनोबा - शासन मुक्ति का अर्धन्यु, गाँधी मार्ग 1984
77. गावा, ओ0 पी0	:	'राजनीति शास्त्र की रूपरेखा' मयूर पेपरबैक्स, नाएडा (1990)
78. गाँधी मोहनदास, करमचन्द्र	:	'सर्वोदय' नवजीवन प्रकाशन, 1951, संपादक भारतन कुमारप्पा' ट्रस्टीशिप - नवजीवन प्र0 1960
79. गाँधी मोहनदास करमचन्द्र	:	मेरा समाजवाद नवजीवन, प्रकाशन 1959
80. गोरा, जी0 रामचन्द्रराव	:	'व्हाई ग्रामराज', विद्या मन्दिर बुक डिपो, हुबली 1977
81. गोखले, बी0 एन0	:	'इन्डियन कल्चर थ्रू आउट द ऐशेज'
82. गुप्ता शांन्ति,एस	:	'दि एकानामिक फिलासफी आफ महात्मा गांधी' अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली
83. झॉ राकेश	:	'गांधीय चिन्तन में सर्वोदय' प्रोईन्टस पब्लिशर्स जयपुर 1995
(क)		
84. केला - भगवानदास	:	'भूदान, श्रमदान, जीवनदान' भारतीय ग्रन्थ माला इलाहाबाद

लेखक		पुस्तक / प्रकाशन / वर्ष
85. केला, भगवान दास	:	'अर्थनीति, सर्वोदय की दृष्टि से भारतीय ग्रन्थमाला हीविट रोड प्रयाग
86. " " "	:	'सर्वोदय, अर्थशास्त्र हीविट रोड, प्रयाग
87. कालेकर, काका	:	'समन्वय संस्कृति की ओर' सर्वसेवा संघ, प्रथम संस्करण 1967
88. कुमारप्पा, जे0 सी0	:	'स्वराज्य फौर दि मासेज' सर्वसेघा संघ तृतीय संस्करण 1958
89. कोकर, फ्रांसिस डब्लयू0	:	'आधुनिक राजनीतिक चिन्तन
90. कुमारप्पा भारतन	:	'कैपीटलिज्म्, सोसलिज्म्' और विलेजिम्म् सर्वसेवा संघ द्वितीय संस्करण, 1965
91. कौशिक, आशा	:	'गाँधी चिंतन (तुलनात्मक परिपेक्ष) भाग-2 प्रिन्ट्वैल जयपुर 1995
92. लोहिया राममनोहर	:	'मार्क्स गांधी एण्ड सोजलिज्म्' नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद, प्रथम संस्करण 1963
(म)		
93. मजूमदार, धीरेन्द्र	:	'ग्रामस्वराज्य की ओर' - सर्वसेवा संर्घ प्रकाशन, 1951
94. " "	:	'क्यों और कैसे' " "
95. " "	:	'लोकगन्ग्रा के तट से' - सर्वसेवा संघ प्रकाशन, 1973
96. " "	:	'शासनमुक्त समाज की ओर' सर्वसेवासंघ प्रकाशन
97. " "	:	'समग्र ग्राम सेवा की ओर' सर्व सेवा संघ प्रकाशन 1960
98. मुखर्जी रवीन्द्रनाथ	:	'भारतीय समाज व संस्कृति' विवेक प्रकाशन नई दिल्ली - 1994
99. मूँदड़ा, दामोदर दास	:	'भूदान गंगोत्री', काशी 1957
100. मंत्री गणेश	:	'मार्क्सगांधी और समसामयिक सन्दर्भ' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1983

लेखक		पुस्तक / प्रकाशन / वर्ष
101. मसानी, आर0 पी0	:	'दि फाइव गिफ्टस' कोलिन्स 1957
102. मशरूवाला, किशोरी लाल	:	घनश्याम लाल : "गाँधी विचार दोहन, नई दिल्ली सस्ता, साहित्य मंडल प्रकाशन 1939
(न)		
103. नारायण, श्रीमन्	:	'वन वीक विद विनोबा', ए0 आई0 सी0 सी0 न्यू दिल्ली
104. नारायण, श्रीमन्	:	विनोबा, हिज लाइफ एण्ड वर्क, पोपुलर प्रकाशन बम्बई 1970
105. नारायण, श्रीमन्	:	'ऋषि विनोबा जीवन और कार्य', सर्वसेवा संघ राजघाट वाराणसी
106. नारायण, जयप्रकाश	:	'मेरी विचार यात्रा', सर्व सेवा संघ प्रकाशन अक्टूबर 1974
107. " "	:	'समाजवाद से सर्वोदय की ओर', सर्व सेवा संघ प्रकाशन 1959
108. जय प्रकाश नारायण	:	'विचार (संग्रह)', लोकभारती प्रकाशन गांधी मार्ग इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1977
109. " " "	:	'ए पिक्चर आफ सर्वोदय', सोशल आर्डर, काशी सर्व सेवा संघ प्रकाशन पेज - 29
110. नारायण, जयप्रकाश	:	'कानसेप्ट ऑफ लोकशक्ति', टूवर्डस ए फिलासफी आफ सोशल वर्क इन इन्डिया', सम्पादित एस0 दास गुप्ता, नई दिल्ली, पोपुलर बुक सर्विस 1967
111. नागर, डा0 पुरूषोत्तम	:	'आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1984
112. नरगोलकर, बसन्त	:	'दि क्रीड सेन्ट विनोबा' भारतीय विद्या भवन बम्बई 1995
(प)		
113. प्यारे लाल	:	'टुवडर्स न्यू होरीजन', नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद 1959

	लेखक		पुस्तक / प्रकाशन / वर्ष
114.	पटेल, झबेर भाई	:	सर्वोदय समाज के लक्षण, ग्राम आयोजन प्रकाशन, किंग्सवे 'नई दिल्ली प्रथम संस्करण जून 1964'
115.	पटबर्धन आपा	:	'टुवर्डस न्यू सोसायटी', सर्वसेवा संघ, प्रकाशन 1961
116.	पाण्डेय डा0 जनार्दन	:	'सर्वोदय राजनीतिक दर्शन', जानकी प्रकाशन, पटना 1986
	(र)		
117.	राम सुरेश भाई	:	'विनोबा एण्ड हिज मिशन', सर्वसेवा संघ काशी 1962 तीसरा संस्करण
118.	राममूर्ति	:	राज्यदान के बाद क्या ? ग्राम दान से ग्राम स्वराज्य वाराणसी सेवा संघ प्रकाशन 1969
	(स)		
119.	शाह, कांति	:	विनोबा - 'जीवन और कार्य' सर्व सेवा संघ प्रकाशन, काशी
120.	शाह, कांति	:	गाँधी : जैसा देखा, समझा विनोबा ने, वाराणसी सर्वसेवा संघ प्रकाशन - 1970
121.	सीतारमइया बी0 पी0	:	'गाँधी एण्ड गाँधीज्म' खण्ड-1, इलाहाबाद किताब भवन1942
122.	सिंह, डा0 दशरथ	:	'गाँधीवाद को विनोबा की देन', बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2000
123.	सिंह, डा0 रामजी	:	'गाँधी दर्शन मीमांसा' बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना
124.	सहस्त्राबुद्धा, अन्ना साहिब	:	'रिर्पोट ऑन ग्रामदान इन कोरापुट' सर्वसेवा संघ वर्धा, 1960
125.	सूद, जे0 पी0	:	"आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास", के0 नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ (1994-95)
126.	स्कार्फ, एलन एण्ड बोन्डी	:	'जयप्रकाश एक जीवनी', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1978
127.	शर्मा, वीरेन्द्र	:	'आधुनिक राजनीतिक विचारधारा'
128.	सिंह, डा0 अमर ज्योति	:	'महात्मा गाँधी और भारत' 1995, वाराणसी

लेखक		पुस्तक / प्रकाशन / वर्ष
(ट)		
129.	टण्डन विश्वनाथ :	'आचार्य विनोबा भावे', पब्लिकेशन डिवीजन, नई दिल्ली 1992
130.	टण्डन विश्वनाथ :	'सोशल एण्ड पोलीटिकल फिलोसफी ऑफ सर्वोदय आफ्टर गाँधी', 1965
131.	तिलक श्रीनिवास :	'दि मिथ ऑफ सर्वोदय', नई दिल्ली 1984
132.	टेनीसन, हेलम :	'सेन्ट आन द मार्च लन्दन', डब्लू० डी० विल्स, बौम्बे 1961
133.	ढढ्ढा, सिद्धराज :	'ग्रामदान काशी' 1958
134.	टिकेकर, इन्दु :	'क्रांति का समग्र दर्शन', वाराणसी, 1972
135.	टंडन, पी० डी० :	'विनोबा भावे : मेन एण्ड मिशन', वोरा एण्ड संस, बम्बई
136.	उम्मेन, टी० के० :	'केरिश्मा स्टेबिलिटी एण्ड चेंज', थोम्पसन प्रेस, नई दिल्ली, 1972
137.	वर्मा, वी० पी० :	'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन', लक्ष्मीनारायण, अग्रवाल, आगरा
138.	वर्मा डा० वी० पी० :	'दि पोलीटिकल फिलासफी आफ महात्मा गाँधी एण्ड सर्वोदय', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 1959
139.	वर्मा, एस० पी० :	'आधुनिक राजनीतिक सिंद्धान्त', विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

लेख एवं पत्रिकायें -

गाँधी मार्ग (मासिक) - गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली का प्रकाशन

गाँधी मार्ग - जनवरी 1983

(1) 'विनोबा का पुण्यस्मरण - राधाकृष्ण

(2) विनोबा की साधना - नारायण देसाई

(3) विनोबा की साधना - आत्रेय

(4) सूर्य की रथ यात्रा - नारायण देसाई

(5) अभिनव क्रांति के लिए - जयप्रकाश

गाँधी मार्ग - अगस्त 1983

(6) ग्राम स्वराज्य : नए भारत की नींव - आचार्य राममूर्ति

(7) स्वराज्य संगम और सर्वोदय समाज - निर्मल

गाँधी मार्ग - नवम्बर 1983

(8) इतिहास में अहिंसा : गाँधी विनोबा की देन - राममूर्ति

(9) 'गाँधी मार्ग लम्बा लेकिन सही मार्ग' - लक्ष्मीकांत जैन

गाँधी मार्ग - जनवरी 1984

(10) सर्वोदय का दिव्य दर्शन - निर्मल

गाँधी मार्ग - 1986

(11) भूदान आंदोलन एक मूल्यांकन - कांतिशाह

Gandhi Marg - Oct. 1986

(12) Sarvodaya and Antyodaya : as social concepts ; Implications for India's future - Tarlok Singh

Gandhi Marg - July' 1987

(13) Vinoba and Marx - Vishwanath Tondon

Gandhi Marg - Nov. -Dec. 1983 Gandhi Marg July' 1987

(14) The spiritual dimension of Vinoba's thought - Iswar Harris

(15) Metaphysical basis of Vinoba's philosophy of life - Geeta Mehta

(16) Vinoba's outlook on spirituality and science - Devendra Kumar

(17) The Bhoodan - Gramdan movement (1951-74) - A review - Vishwanath Tondon

(18) Vinoba's 'Gradualist' versus 'Western Immediatist Anarchism' : Geoffrey Ostergoard

(19) Vinoba and Gandhian tradition - Devdutt

(20) Vinoba and Communist movement in India - Sumanta Banerjee

(21) The quality of Vinoba's leadership - Kanti Shaah

(22) Vinobas' s Consensual Revolution : A critical appreciation - Nageshwar Prasad

गाँधी ज्योति – गाँधी विचार विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय

(23) सर्वोदय का विचार और सिद्धान्त – नागेश्वर प्रसाद शुक्ल

(24) सर्वोदय एक दार्शनिक विश्लेषण – विजय कुमार राय

(25) सर्वोदय : आर्थिक विचारधारा – जे0 एन0 लाल

(26) सर्वोदय दर्शन एवं दार्शनिक मान्यताऐं – कांति शाह

(27) Sarvodaya - Ideology - K. M. Chetty

(28) Principle of Sarvodaya - Dashrath Singh

(29) Sarvodaya - V. Venkata Rao

(30) Sarvodaya movement after Gandhi - Tapash Shankr Dutt

(31) Sarvodaya conception of Socio-economic equality - Shanta Bala

(32) 'Sarvodaya its relevance today : Points to Ponder' - Sudhir Jacob George

(33) 'Sravodaya Society : a critical alternative to the classless society of Marx ' - A. Pushparanjan

(34) Welfare approach of Sarvodaya - R. I. Umarani

गाँधी ज्योति – April - 1989

(35) Sarvodaya Movement after Gandhi - Vasant Nargolkar गांधी ज्योति – jan ' 93

गाँधी ज्योति – Jan. - 1993

(36) Vinoba's Contribution to the 'upliftment of women - Dr. Dashrath Singh

गाँधी ज्योति – Oct. ' 96

(37) 'Economic problem today and Gandhian Insight' - Dr. Ashu Pasricha

मैत्री – ब्रह्म विद्या मन्दिर, पवनार (वर्धा) का प्रकाशन

मैत्री – 12 दिसम्बर 1991

(38) आज की आवश्यकता – विनोबा

(39) विनोबा का योगदान – डा0 रामजी सिंह

(40) चिन्तन पुरुष विनोबा – ऊषा

मैत्री - 12 अगस्त 1991

(41) भौतिक प्रकृति और आध्यात्मिक विकास - विनोबा

(42) वैज्ञानिकों से - विनोबा

मैत्री - 12 मार्च 1992

(43) मन की समाधि श्रेष्ठ योग - विनोबा

(44) क्रांति की गमक - विनोबा

(45) विनोबा का योगदान - कांतिशाह मैत्री - 12, 1992

मैत्री - 12 अप्रेल 1992

(46) भारतीय संस्कृति का अर्थशास्त्र - विनोबा

(47) ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य - सिद्धराज ढड्डा

<u>सर्वोदय जगत : सर्वसेवा संघ, राजघाट वाराणसी</u>

15 सितम्बर 1994

(48) 'सामुदायिक साधुत्व के प्रथम प्रणेता : विनोबा' - विनय भाई

(49) 'विनोबा - एक मौलिक विचारक' - आर० आर० दिवाकर

31 दिसम्बर 1994

(50) विनोबा और लोहिया : मुकुन्द तामदे

नवम्बर 1999

(51) 21वीं सदी के लिए विनोबा का सन्देश - विनयभाई

(52) सत्री : 'हिस्सेदारी और हिंसा के बीच की त्रासदी' - डा० पुष्पिता

16 फरवरी 2000

(53) '21वीं शताब्दी में गाँधी को इतना क्यों याद किया'? - भारत डोगरा

16 मार्च 2000

(54) 'ग्रामदान की जड़ों से फूट रही नई कोपलें' - निर्मलचन्द

(55) Dr. Ramji Singh : (Acharaya Vinoba Bhave - Quest for Non-violence), Ghandian perspectives : A special issue eminent Ghandhian (Ghandhian Instituite of Studies, Rajghat, Varanasi- 1997)